श्री श्री आनन्दमयी प्रसंग

प्रथम खण्ड

एवं

द्वितीय खण्ड

अमूल्यकुमार दत्तगुप्त

एम.ए.बी.एल.

(ढाका विश्वविद्यालय के लॉ विधि विभाग के अध्यापक)

हिन्दी रूपान्तर - विश्वनाथ मुखर्जी

श्री श्री आनन्दमयी संघ

प्रकाशक :
प्रथम संस्करण : 1982
श्री श्री आनन्दमयी चेरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता

द्वितीय संस्करण : 2007
श्री श्री आनन्दमयी संघ, कनखल, हरिद्वार

प्रत : 1,000

मूल्य : 150.00 रुपये

मुद्रक :
मुद्रेश पुरोहित
सूर्या ऑफसेट, आंबली गाम, सेटेलाईट-बोपल रोड,
अमदावाद - 58 दूरभाष : (02717) 230112

निवेदन

श्री श्री मां आनन्दमयी प्रसंग एक सहज, प्रश्नोत्तर और घटनाक्रम में होने से सहजरुप से श्री श्री मां का उत्तर साधक के लिये, आध्यात्मिक पथ पर पथगामी बना सकता है - श्री अमुल्यकुमार दत्त समर्थ गुरु का आश्रित होने से, जीज्ञासु का सर्व प्रश्न करते है - और अनेक निगुढ प्रश्नो का विवरण प्राप्त होताा है - लेखक के जीवित काल में कुछ अंश प्रकाशित हुये थे ।

उनके बारे में मां ने कहा था "पिताजी गृहस्थ होते हुए इस बात की शिक्षा दे गये कि किस प्रकार भोग के भीतर निर्लिप्त रहा जा सकते है - संन्यासी जिस प्रकार कुटिया बनाता है, सत्कार्य के बीच बैठा रहता है, पिताजी उसी प्रकार बैठे थे । सत्कार्य पूर्ण होने के साथ-साथ अपने स्थान पर चले गयें - लज्जा, धृणा, भय तीनो बन्धन से मुक्त हो गये थे - तुम लोग विश्वास करो या न करो, यह शरीर सर्वथा साथ था ।"

सभी इस ग्रन्थ को अध्ययन से लाभान्वित होंगे ।

कार्तिक पूर्णीमा — स्वामी भास्करानन्द

२०६३ (५-११-२००६) — कनखल

आमुख

"श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंङ्ग" एक पठनीय ग्रन्थ है । लेखक ढाका, काशी तथा अन्य अनेक स्थानों में लम्बे अर्से तक घनिष्ठ रूप में मातृसंग करने का सौभाग्य प्राप्त करके धन्य हुए हैं तथा मातृ कृपा से उक्त दुर्लभ सुयोग का सद्व्यवहार करने का सामर्थ्य प्राप्त कर चुके हैं । बाल्यकाल में सद्गुरु का आश्रय प्राप्त करने के कारण आपके चित्त में आध्यात्मिक जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी । माँ के निकट वे नाना प्रकार के भावोद्दीपक प्रश्नों को उठाकर माँ के श्रीमुख से अनेक निगूढ़ बाते सुन चुके हैं । माँ के साथ हुई अनेक कथोपकथनों के यथायथ विवरणों को अपनी डायरी में लिखते रहे । उनके जीवितकाल में डायरी के कुछ अंश ढाका से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए थे । उक्त पुस्तक के दोनों खण्डों के संस्करण आज से ४० वर्ष पूर्व समाप्त हो गये थे ।

अब उन दोनों खण्डों का द्वितीय संस्करण एक साथ प्रकाशित किया जा रहा हैं । ये ग्रन्थ मातृवाणी की अमूल्य संपदा हैं ।

श्री अमूल्य कुमार दत्त गुप्त प्रतिभावान छात्र थे तथा आगे चलकर ढाका में कानून की शिक्षा देने तथा कानूनी पुस्तकों के लेखन कार्य में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे । अपने जीवन के अपराह्न काल में मातृ सान्निध्य में काशीवास करते रहे । सन् १९७३ ई. में अविमुक्त क्षेत्र वारानसी धाम में उनका देहान्त हो गया था ।

सुना है कि उनके सम्बन्ध में माँ ने कहा था - पिताजी गृहस्थ होते हुए इस बात की शिक्षा दे गये कि किस प्रकार भोग के भीतर निर्लिप्त रहा जा सकता हैं । संन्यासी जिस प्रकार कुटिया बनाता है, सत्कार्यों के बीच बैठा रहता, पिताजी भी उसी प्रकार बैठे थे । सत्कार्य पूर्ण होने के साथ-साथ अपने स्थान पर चले गये । लज्जा, घृणा, भय इन तीनों बन्धन से वे मुक्त हो गये थे । तुम लोग विश्वास करो या न करो, यह शरीर सर्वदा साथ था ।" (आनन्द वार्ता, एकविंश वर्ष, प्रथम संख्या, पृष्ठ ७२)

फाल्गुन पूर्णिमा, **स्वामी परमानन्द**

माँ आनन्दमयी आश्रम, वृन्दावन

प्रथम संस्करण की भूमिका

बंगला सन् १३३८ (१९३१) में श्री श्री माँ आनन्दमयी के साथ मेरा प्रथम परिचय हुआ । इस समय से लगभग एक वर्ष तक अविच्छिन्न भाव से उनका संग करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है । नित्य दो-तीन घण्टे हम आपस में बातें करते रहे । उन्हीं दिनों माँ के जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ और अमृततुल्य उपदेश सुनता रहा । लेकिन उन दिनों इन बातों को लिखने का कोई संकल्प मन में उत्पन्न नहीं हुआ था और न उसकी आवश्यकता अनुभव किया था । उन दिनों मैं बराबर यही सोचा करता था कि माँ ढाका में सर्वदा यहीं रहेंगी । उनका उपदेश बराबर प्राप्त करता रहूँगा । लेकिन फजली सन् १३३९ (१९३२) में हुए माँ के जन्मोत्सव के बाद माँ स्वर्गीय ज्योतिष बाबू और भोलानाथ को साथ लेकर अनिश्चितकाल के लिए ढाका नगर से चली गयीं । इन दिनों मैं माँ के अभाव की कमी तीव्र गति से महसूस करने लगा । हम लोगों के लिए उनकी लीला, उपदेश और संग करने का कोई उपाय नहीं रहा ।

इस घटना के दो साल बाद इनकम टैक्स के सहकारी कमिश्नर श्रीयुक्त शचीकान्त घोष महाशय अपने एक रिश्तेदार के यहाँ विवाह के अवसर पर ढाका आये । रमना के आश्रम में उनसे परिचय हुआ ।

उनकी जबानी पता चला कि वे कुछ दिन पूर्व मसूरी गये थे और वहीं माँ के साथ मुलाकात हुई थी । माँ के साथ उनकी यह पहली मुलाकात थी । लेकिन मैंने गौर किया कि वे माँ के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुए हैं । माँ के साथ हुई मुलाकात के बारे में उन्होंने थोडा-सा वर्णन किया । उन्होंने कहा-मैंने माँ का संग करके जिस निर्मल आनन्द का उपभोग किया है और उनके बारे में जो अनुभव किया है, उसे लिखना चाहता हूँ ताकि उसे पढ़कर आप लोग भी उस आनन्द के भागीदार बन सकें । अगर आप लोग भी ऐसा ही करें तो हम परस्पर आपस की अभिज्ञता से लाभ उठा सकते हैं और हमें भी अपने विवरणों के आदान-प्रदान से आनन्द मिलेगा ।

शची बाबू का यह प्रस्ताव मुझे पसन्द आया । तभी से माँ की जबानी जो कुछ सुना था, नोट करने लगा । लेकिन इतने दिनों बाद उन बातों को लिखते समय देखा कि उनमें से अधिकांश को भूल गया हूँ । केवल जिन घटनाओं तथा उपदेशों ने मुझे प्रभावित किया था, उनकी स्मृति बनी है । इसमें कुछ गलतियां रह सकती हैं, यह सोचकर अपने मित्र श्रीयुक्त भूपतिनाथ मित्र की सहायता से माँ को सारी पाण्डुलिपि हृषिकेश में पढ़कर सुनायी । माँ ने इस रचना में कुछ परिवर्तन और सुधार करवाया । श्री शचीकान्त घोष महाशय के

उत्साह और सहयोग से बंगला सन् १३३८ से १३४१ तक श्री श्री माँ के सम्बन्ध में जिन घटनाओं और उपदेशों को, अपनी स्मृति पटल में उतार सका हूँ, वही इस पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में हैं । १३३८ सन् बाद फिर लम्बे अर्से तक माँ का संग नहीं कर पाया था। बीच-बीच में लम्बे अवकाश के समय कई दिनों के लिए उनसे मुलाकात होती रही । इन दिनों जो कुछ बातें होती रहीं, उसे डायरी में नोट करता रहा और वे सारी बातें इस पुस्तक में प्रकाशित हैं । माँ के सभी उपदेशों को यथासम्भव उनकी भाषा में ही प्रकाशित हैं । उनके अतीत जीवन की जिन कहानियों को सुन चुका हूँ, उसे अतिरंजित बनाकर अलौकिकत्व आरोपित करने का एक भी प्रयत्न नहीं किया है । फिर भी पाठक यह अनुभव अवश्य कर लेंगे कि पुस्तक में वर्णित श्री श्री माँ की जीवनी में अधिकांश कुछ-कुछ अलौकिकत्व है । यह एक प्रकार से अनिवार्य है । जिनकी अनुभूति, स्थूल तथा सूक्ष्म की चिरन्तन सीमारेखा बिलकुल लुप्त हो गयी है, जो निस्त्रैगुण्य, नित्य निरंजन पद पर आरूढ रहकर अद्वय, अखण्ड चैतन्य स्थिति प्राप्त कर चुकी हैं, उनके कार्यकलाप हमारी स्थूल बुद्धि में अलौकिक तथा दुर्बोध ज्ञात हों तो इसमें आश्चर्य क्या है ? कारण मानव-शरीर त्याग करने पर कैवल्यधाम का अधिकार प्राप्त नहीं होता, इसीलिए माँ को मैंने

जितना देखा है ठीक उसी प्रकार का वर्णन किया है ताकि दूसरे लोग भी माँ की जीवनी और उपदेशों से अपना-अपना सिद्धान्त ग्रहण कर सकें । मेरा सिद्धान्त अन्य कोई ग्रहण करें, ऐसा आमन्त्रण भी नहीं दे रहा हूँ और न ग्रहण करने के लिए अपनी ओर से कोई तर्क पेश कर रहा हूँ। लोकोत्तर चरित्र स्वतः दुर्ज्ञेय होता है । श्री श्री माँ का चरित्र विशेष रूप से इतना सर्वतोमुख है, उसमें प्राकृत और अप्राकृतों का ऐसा समावेश है कि उसे कोई भी समग्र भाव से ग्रहण करके दूसरों के लिए बोधगम्य बना सकते हैं, ऐसा मेरा प्रत्यय नहीं हैं । माँ कौन हैं तथा क्या हैं, यह सवाल हमेशा अव्यक्त रह जायेगा । पर कुछ दिनों तक माँ का संग करने तथा उनमें ज्ञान, कर्म और भक्ति का सहजात समन्वय देखकर मेरे मन में यह दृढ विश्वास उत्पन्न हो गया है कि द्वापर के अन्त में कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्धकामी राजन्यवर्ग द्वारा महा प्रलयंकर युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व जो महती वाणी भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निःसृत हुई थी, आज इतने दिनों बाद कलि के प्रदोष के कारण, वही वाणी जैसे मातृमूर्ति परिग्रह कर विश्व के कल्याण के लिए धराधाम में आविर्भूत हुई है ।

१ वैशाख, १३४५ सन् — ***श्री अमूल्य कुमार दत्तगुप्त***
६/१, बक्शी बाजार, ढाका.

प्रथम खण्ड

श्री श्री माँ आनन्दमयी

श्री श्री माँ का कलकत्ते में आगमन

- श्री अमूल्यकुमार दत्तगुप्त

जीवन कथा और उपदेश

बंगला सन् १३३८ (१९३१, जून–जुलाई) के आषाढ या श्रावण मास में माँ के साथ मेरी पहली मुलाकात हुई थी । अनेक दिनों से श्री श्री माँ आनन्दमयी के बारे में तरह–तरह की बातें सुनता आ रहा था । कुछ लोग इनके एकान्त अनुगत भक्त थे, और कुछ ऐसे भी थे जो इनके सम्बन्ध में अश्लील कटूक्ति करने में द्विधा बोध नहीं करते थे । इस प्रकार परस्पर विरोधी बातें सुनकर विशेष आग्रहवश माँ के साथ मुलाकात करने नहीं गया । लेकिन भेंट करने की इच्छा काफी पहले से थी । समय न आने पर कुछ नहीं होता समझकर ही विलम्ब करता रहा । इसी बीच श्रीयुक्त जगदीश वसु[१] महाशय से मेरा परिचय हुआ । वे माँ के एक भक्त हैं । माँ के सम्बन्ध में इनसे दो–एक प्रशंसासूचक बातें सुनने में आई । लेकिन उन तथ्यों में कोई विशेषता नहीं थी । उन बातों को सुनने के बाद माँ के साथ मुलाकात करने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गई, ऐसी बात भी नहीं हुई ।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन जगदीश बाबू ने मुझसे कहा– 'अगर आप माँ से मुलाकात करना चाहें तो मैं आपको वहाँ ले जा सकता हूँ ।'

१. श्रीयुक्त जगदीश वसु कृषि विभाग में कार्य करते थे ।

मैंने यह मौका छोड़ना उचित नहीं समझा । कारण मैंने यह सोच लिया था कि अकेले जाकर मुलाकात करना मेरे लिये संभव नहीं होगा। विशेष रूप से एक महिला के साथ । फलतः जगदीश बाबू के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के बाद एक दिन निश्चित कर लिया। याद है, उस दिन रविवार था । भोर के वक्त एक बार जोरों से वर्षा हुई थी। सबेरे आकाश मेघाच्छन्न था । रह-रहकर सूरज दिखाई दे जाता था । सड़क पर बहुत कम लोग आ-जा रहे थे । रमना का मैदान एक तरह से जनशून्य था । मैंने सोचा कि पानी का बरसना ठीक ही हुआ । शायद माँ के निकट भीड़-भाड़ नहीं होगी और मुझे बातचीत करने का अवसर मिलेगा । हमलोग बातचीत करते हुए रमना के मैदान तक आ गये । आश्रम कहाँ पर है, यह मैं नहीं जानता, सुनकर जगदीश बाबू जरा चकित हुए । होने की बात भी है । विस्तीर्ण श्यामल मैदान के मध्य आरक्तशीर्ष उन्नत मन्दिर अनायास लोगों की दृष्टि आकर्षित करता है । जब कि मैं इतना अनुसंधित्सा-शून्य हूँ कि यह किसका मंदिर है, किसने बनवाया है, इस सम्बन्ध में मेरे मन में कभी कोई जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई और न उसे दर्शन करने की आकांक्षा उत्पन्न हुई । बहरहाल, हम दोनों थोड़ी देर बाद आश्रम में आ गये ।

आश्रम का प्रवेश द्वार पूर्व दिशा की ओर है । आश्रम में प्रवेश करते ही पश्चिम दिशा में टीन की छतवाला एक बृहत् नाट मन्दिर दिखाई देता है । बाद में पता चला कि इसका निर्माण श्रीयुक्त विनयसेन (मुंसिफ) महाशय ने अपनी कन्या की स्मृति में कराया था और माँ ने उसका नामकरण किया है – नाम घर । उत्सवादि के अवसर पर उक्त मन्दिर में कीर्तनादि होता है। उसके उत्तर दिशा में छोटी सी गुफा की तरह ईंटों से निर्मित एक कोठा है। उसमें श्री श्री माँ का पादपद्म स्थापन किया है । इस कोठा से सटा उत्तर की ओर आश्रम का मंदिर है । मंदिर में कई विग्रह स्थापित हैं । वेदी के ऊपर विष्णु, अन्नपूर्णा और काली मूर्ति एक ही आसन पर स्थित हैं। वेदी के नीचे

काली मूर्ति का एक फोटोग्राफ है । अन्यान्य विग्रहों के साथ इनकी भी पूजा होती है । उक्त फोटोग्राफ जिस मूर्ति की है, वह वेदी के नीचे एक गुफा में स्थापित है। वर्ष में जब माँ का जन्मोत्सव होता है तब एक बार उक्त मूर्ति के दर्शन होते हैं । शेष समय गुफा का द्वार बन्द रहता है ।

इस मन्दिर के उत्तर पूर्व ओर एक चौकोर साफ–सुथरी फूस की झोपड़ी है । इसका फर्श और बरामदा ईंट से पक्का बनाया गया है । इसी कमरे में माँ रहती हैं । हम लोग जब आश्रम पहुँचे तब उस समय माँ उक्त कमरे के बरामद के उत्तर–पूर्व दिशा की ओर बैठी थीं । पास ही एक प्रौढ़ा विधवा बैठी थीं । मैंने सोचा कि शायद यह महिला माँ की परिचारिका हैं । बाद में पता चला कि वे भी हम लोग की तरह आगंतुक हैं ।

जगदीश बाबू ने माँ का चरण–स्पर्श कर प्रणाम किया । मैंने दूर से ही प्रणाम किया । माँ ने जगदीश बाबू को देखकर कहा – 'पिताजी, मजे में हो तो ?'

जगदीश बाबू ने कहा – 'हाँ, माँ, एक तरह से मजे में हूँ ।'

माँ ने जगदीश बाबू से उनकी लड़कियों का कुशल मंगल पूछा। इसके बाद कुछ देर तक सभी नीरव रहे । बाद में जगदीश बाबू माँ को बातचीत करने की ओर प्रवृत्त करने के लिए बोले – 'माँ, कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।'

माँ ने कहा – ''अच्छा न लगने की बात ही है । क्योंकि तुम लोग तो आनन्द की मूर्ति हो । खण्ड आनन्द तुम लोगों को अपने में कैसे रख सकता है ? अखण्ड आनन्द का आस्वादन तुम लोगों के भीतर मौजूद है । देखो, बाजार जाते समय तुम लोग अक्सर कहते हो कि वहाँ से यह तरकारी लाना, वह तरकारी लाना । इसका कारण यह है कि उन तरकारियों को तुम लोगों ने खाया है और उनके स्वाद

से परिचित हो गये हो, इसीलिए पुनः भोग करने के लिए उसे खरीदने को कहते हो । इसी प्रकार तुम लोगों के प्रत्येक में सच्चिदानंद का आस्वादन है और संसार में उसी आनन्द की तलाश में चक्कर काट रहे हो । कभी सोचते हो कि आनन्द शायद धन में है, कभी सम्मान में, कभी बेटा–बेटी में – इसी प्रकार एक न एक धारणा लेकर चक्कर काट रहे हो। लेकिन कोई भी चीज उस सच्चिदानन्द का आनन्द नहीं दे रही है । इसीलिए शान्ति प्राप्त नहीं कर पा रहे हो । कुछ भी स्थायी रूप में अच्छा नहीं लगता ।''

जगदीश बाबू ने पूछा – 'तब उपाय क्या है ?' माँ ने कहा – 'नाम लेते रहो । सर्वथा नाम लो, इससे सब पाओगे । शान्ति, मुक्ति सब कुछ नाम से प्राप्त होता है ।'

मैंने पूछा – ''अगर शान्ति–मुक्ति नाम से प्राप्त हो जाय तो गुरु की कोई आवश्यकता नहीं है ?''

अब तक माँ जगदीश बाबू की ओर देखती हुई बोल रही थीं। मेरा प्रश्न सुनकर मेरी ओर देखती हुई बोलीं – ''ठीक पिताजी, तुम अगर यह सोचते हो कि गुरु के बिना तुम्हारा काम हो जायगा तो इसमें दोष क्या है ? तुम यों ही नाम करते जाओ, उससे हो जायेगा। जगत् में कोई चीज व्यर्थ नहीं जाती । यह जो पेड़ से पत्ता गिर रहा है, यह भी वृथा नहीं हैं । तुम लक्ष्य करो या न करो, यह भी तुम्हारे ऊपर अपना छाप रखता जा रहा है । शायद समय पर यह पुनः जाग उठेगा । इसलिए नाम करने पर फल प्राप्त करोगे ही । हाँ, यह ठीक है कि जैसे रोगी काफी दिनों से बीमार रहने पर दुर्बल और सामर्थ्यहीन होकर सोचने लगता है कि अगर कोई उसके बिछौने के पास बैठता तो वह उसे पकड़कर उठ पाता । अकेले उठना–बैठना उसके लिए असंभव हो जाता है । इसी प्रकार कोई–कोई स्वयं साधना करते–करते क्लांत और निराश होकर सोचता है कि अगर कोई एक गुरु रहता तो उसके सहारे वह और आगे बढ़ सकता था ।

मनुष्य उपलक्ष्य के बिना चल नहीं पाता, इसीलिए गुरु की आवश्यकता होती है इसका मतलब यह नहीं कि गुरु के बिना भगवान् को नहीं बुलाया जा सकता।'

इस तरह की अनेक बातें हुई । सभी बातें मधुर लगी, माँ तो सर्वदा हँसमुख रहती हैं । बीच-बीच में हँसी की लहर बिखर जाती है । यह हँसी अभिनव है । हम लोगों की हँसी की तरह दुःख और निराशा मिश्रित नहीं है। यह गोमुखी निःसृत गंगा की पावन धारा की भाँति अनाविल उद्दाम है। इसकी पुण्य धारा मन-प्राण को मानो प्लावित कर देती है ।

इस घटना के बाद मैं बहुत दिनों तक माँ से मुलाकात नहीं कर सका। इसके बाद मुझे पूजा के अवसर पर छुट्टी मिली । हवा-पानी बदलने के लिए सपरिवार काशी आया । काशी में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के अध्यक्ष महामहोपाध्याय श्रीयुक्त गोपीनाथ कविराज एम. ए. महाशय स्वनामधन्य व्यक्ति हैं । बचपन से ही वे मुझसे स्नेह रखते आये हैं । वे अगाध पण्डित तथा साधन-भजन में उन्नत हैं । आप श्रीमत् विशुद्धानन्द परमहंस के शिष्य हैं। एक दिन उनके कमरे में श्री श्री माँ आनन्दमयी के कई फोटो देखे । वे सब गुरुदेव के फोटो के बगल में थे । गोपीनाथ जी में संकीर्णता जरा भी नहीं हैं । सभी महापुरुषों के प्रति वे श्रद्धान्वित हैं । माँ का फोटो गोपीनाथजी के कमरे में हैं, देखकर मैंने पूछा – 'आपको ये फोटो कहाँ से प्राप्त हुए ? क्या माँ के साथ आपका परिचय हैं ?'

उन्होंने कहा – 'हाँ, हरिद्वार में माँ मेरे यहाँ ७-८ दिन थीं। इसके अलावा उन्हें काशी में भी देख चुका हूँ ।'

मैंने प्रश्न किया – 'अच्छा, माँ को देखने पर आपको कैसा लगता है ? वे किस स्टेज की हैं ?'

गोपीनाथ बाबू ने दार्शनिक परिभाषा में एक स्टेज का नाम बताया जिसे मैं समझ नहीं सका ।' उत्तर में उन्होंने कहा – फिर 'किस स्टेज' की हैं, यह क्यों पूछ रहे हो ?'

अज्ञ होकर प्रज्ञावानों की तरह प्रश्न करने के कारण मैं जरा लज्जित हो गया । मेरे लिए लज्जित होने के लिए कोई कारण नहीं था । क्योंकि गोपीनाथ बाबू के आगे पाण्डित्य प्रदर्शन करने का दुस्साहस करने की इच्छा मेरे मन में नहीं थी । बहरहाल, मैंने उनसे कहा – 'आप साधारण रूप में मुझे बताएँ कि माँ की क्या स्थिति है ?'

गोपीनाथ बाबू ने कहा – 'माँ की बातें सुनने और उनके भावों पर गौर करने के बाद मैंने शास्त्रों से उसे मिलाया तो इस निश्चय पर पहुँचा कि माँ में पूर्णज्ञान की स्थिति है ।'

इस बात के अर्थ को मैं ठीक समझ गया; ऐसा नहीं है; पर मुझे लगा माँ उन प्राचीन मंत्र द्रष्टाओं के समान हैं जिन्होंने कभी उदात्त कंठ से घोषणा की थी–

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

पूजा की छुट्टी के बाद मैं जब ढाका वापस आया तब से दोनों वक्त माँ के पास जाने लगा । सवेरे कालेज का कार्य समाप्त कर माँ के पास २–१ घण्टा जाकर रहता था । तीसरे पहर पत्नी और लड़कियों को लेकर जाता था । मुझे सवेरे का समय अच्छा लगता, क्योंकि उस समय विशेष भीड़ नहीं होती थी। माँ के श्रीमुख से अनेक बातें सुनने में आती । कभी वे अपने जीवन की घटनाएँ सुनातीं तो कभी उपदेश देतीं । कभी–कभी बातें करते समय ऐसा लगता जैसे वे भावावेश में आ गईं हैं । मुख मण्डल ईषत् रक्तिमाभ दोनों नेत्र उज्ज्वल, ज्योतिर्मय, स्थिर, किसी बाह्य वस्तु से आबद्ध नहीं है। सारगर्भित बातें निर्झरिणी की स्त्रोत की तरह अनायास निकलती चली आ रही हैं और ये बाते शक्तिमन्त हैं, उसे स्पष्ट ककिया जा सकता है । जिन लोगों ने प्रत्यक्ष किया हैं, उसे वही समझ सकते हैं । तीसरे पर माँ साधारणतः महिलाओं

के घिरी रहती थीं । हम लोग के लिए दूर थी । लेकिन जब कभी वे मैदान में आकर बैठती थीं, तब एक ओर महिलाएँ रहती तो दूसरी ओर हम लोग रहते थें ।

एक दिन सवेरे बातचीत के सिलसिले में माँ अपने जीवन के बारे में कहती रहीं । बोलीं – "एक दिन ऐसा भी था जब मैं पर्दानशीन घर की बहू थी । सर्वांग ढांककर लगभग एक हाथ का घूँघट काढ़ती थी । कहीं कोई देख न ले, इसलिए घर के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द रखती थी । जिस कमरें में रहती थीं, उसे साफ–सुथरा रखती थीं । कूड़े का एक कण भी नहीं छोड़ती थी । भोजनादि के पश्चात् शयन घर में प्रवेश करते समय हाथ–पैर धोकर पवित्र भाव से प्रवेश करती थीं । और आज–कल लज्जा नहीं, शर्म नहीं, सभी के साथ बातें कर रही हूँ, शुचि–अशुचि के बारे में ख्याल नहीं करती । न जाने मैं क्या हो गई हूँ ।

उन दिनों हम लोग शाहबाग में रहते थे । यहाँ रहते समय जब मैं भोजन बनाने लगती तब अक्सर एक स्थान की तस्वीर मेरी आंखों के सामने तैर जाती थी ! वह तस्वीर और कुछ नहीं, वह तो ढाका के सिद्धेश्वरी मंदिर की होती थी । लेकिन उस समय मैं यह नहीं जानती थी । उस चित्र को देखने पर मुझे ऐसा लगता जैसे वह सिद्धेश्वरी तला का है । मैं अक्सर भोलानाथ[१] से पूछती कि 'सिद्धेश्वरी तला' कहाँ

१. आप श्री श्री माँ आनन्दमयी के पति हैं । आपका वास्तविक नाम है – श्रीयुक्त रमणी मोहन चक्रवर्ती । 'भोलानाथ' नाम माँ ने रखा हैं । इन्हें 'रमा पगला' भी कहा जाता है । आप भी एक महापुरुष हैं। ढाका, सिद्धेश्वरी, तारापीठ, उत्तरकाशी, ज्वालामुखी आदि स्थानों में आप कठोर तपस्या कर चुके हैं । भारत में ऐसा कोई भी तीर्थस्थान नहीं हैं जहाँ आप न गये हों । बाबा भोलानाथ को करुणा का अवतार कहने पर कोई अत्युक्ति नहीं होगी । श्री श्री माँ के हजारों भक्तों को आप पुत्रवत् स्नेह करते हैं । रोग–शोक से पीड़ित अनेक व्यक्तियों को भोलानाथ के निकट शरणापन्न होते देखा है ।

है ? भोलानाथ मेरे प्रश्न का जवाब नहीं दे पाते थे । एक दिन वे सिद्धेश्वरी तला याद करके मुझे एक जगह ले गये, पर मैंने देखा कि जहाँ का चित्र मैं देखती हूँ, यह वह स्थान नहीं हैं ।

"इसी समय बाउल बाबू[२] अक्सर भोलानाथ के यहाँ आते थे। जब उससे उस स्थान के बारे में पूछा तो वह कुछ बता नहीं सका। शाम के समय हम लोग रमना की कालीबाड़ी में आरती देखते तब मुझमें न जाने कैसा भाव होता । घण्टों बीत जाते, पर मैं समझ नहीं पाती थी । कुछ दिन इस तरह बीत जाने पर एक दिन पुजारी ने भोलानाथ से कहा – 'आप लोग इस तरह यहाँ इतनी रात गये बैठे रहते हैं, इससे हम लोगों को बड़ी असुविधा होती है, क्योंकि हम लोग मंदिर का दरवाजा बन्द करके अन्यत्र काम से नहीं जा पाते ।' उस दिन यह बात सुनकर आरती के बाद से मैं वहां नहीं ठहरती थी। घर चली आती थी । हम लोगों के साथ बाउल बाबू भी कालीबाड़ी जाया करते थे । हम लोग जब अपने घर की ओर लौटते तब वे अक्सर पूर्व की ओर चले जाते थे । उन दिनों उधर के इलाके में भयंकर जंगल था, पर बाउल बाबू बहुत साहसी थे । उस जंगल के भीतर घने अंधकार से गुजरते समय जरा भी भयभीत नहीं होते थे।

एक दिन भोलानाथ ने उससे पूछा कि वे इतनी रात को जंगल के रास्ते कहाँ जाते हो ? इस पर उसने कहा कि वह सिद्धेश्वरी बाड़ी जाता है । सिद्धेश्वरी बाड़ी की चर्चा चलने पर मैंने पूछा – "क्या यहाँ सिद्धेश्वरी बाड़ी हैं ?" उसने उत्तर दिया – 'हाँ, है । एक दिन तुम लोगों को ले जाऊँगा ।' इसके बाद एक दिन रात को वह भोलानाथ और मुझे सिद्धेश्वरी बाड़ी ले गया । वहां पहुँचते ही मैंने देखा कि जिस स्थान को छाया चित्र की भाँति मैं देखती आयी हूँ, यह वही

---

२. श्रीयुक्त बाउल बसाक । आप बाबा भोलानाथ के बचपन के मित्र हैं । ढाका वकील इंस्टिट्यूट में अध्यापक हैं । श्री श्री माँ के प्राचीन भक्तों में अन्यतम हैं ।

स्थान है । वही मन्दिर, वही बरगद का वृक्ष, सब कुछ वही । मैंने आगे बढ़कर बरगद के वृक्ष को स्पर्श किया। इस प्रकार सिद्धेश्वरी बाड़ी दर्शन करने के पश्चात् हम लोग शाहबाग वापस आये ।

"एक दिन दोपहर को कहाँ जाऊँगी सोचकर मैं सामान ठीक कर रही थी । कहाँ जाऊँगी, यह मैं भी नहीं जानती थी । घर के सामानों को सजाती रही । साथ ले चलने वाली सामग्रियों की गठरी बना रही थी । ठीक इसी समय भोलानाथ ने आकर पूछा–'यह क्या हो रहा है ?'' मैंने उत्तर दिया– 'चलो, आज हमलोग सिद्धेश्वरी बाड़ी चलें ।' भोलानाथ ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की । हम लोग तीसरे पहर सिद्धेश्वरी बाड़ी आये । वहाँ जाते ही ख्याल हुआ कि यहाँ मुझे तो सात दिन रहना है । भोलानाथ से प्रस्ताव करने पर उन्होंने कहा– 'यह कैसे हो सकता है ? मैं तो तुम्हारे पास नहीं रह सकता। तुम अकेली कैसे रहोगी ?' उन दिनों भोलानाथ शाहबाग की देखरेख किया करते थे । कुलियों को सबेरे कामकाज बताना पड़ता था । फलस्वरूप उनके लिए वहाँ से हटकर रहना संभव नहीं था । मैंने उनसे कहा– 'मैं अकेली रहूँगी, इससे क्या ? मैं तो माँ[1] के पास रहूँगी, इसमें डरने की क्या बात है ?'' इस पर भोलानाथ राजी हो गये । वे शाम को जाकर भोर में कुलियों को क्या–क्या करना है, यह समझाकर चले आते और रात को सिद्धेश्वरी बाडी की भोगवाली कोठरी में सो जाते थे । सिद्धेश्वरी मन्दिर में माँ की मूर्ति के पीछे एक छोटी सी कोठरी थी, उसे में मैं सोती थी । तुम यह मत समझ लेना कि मैं यहाँ बहुत साधन–भजन करती थी। साधन–भजन कुछ भी नहीं करती थी । सिर्फ उस कमरे में पड़ी रहती थी। पता नहीं, एक अजीब आनन्द में मेरे दिन–रात गुजर रहे थे ।

"बाउल बाबू को जब इस बात का पता लगा कि मैंने सिद्धेश्वरी मन्दिर में सात दिनों के लिए आश्रय लिया है तब उसने सोचा कि यहाँ जरूर कोई अप्राकृत घटना होगी । यह सोचकर वह मन्दिर के द्वार के

पास नन्दी की तरह पहरा देने लगा । उद्देश्य यह था कि उसकी अजानकारी में कोई अलौकिक घटना न हो जाये । इस प्रकार छः दिन छः रात बीत गये । सातवें दिन रात के समय मुझे ख्याल हुआ कि मुझे इस मन्दिर से अभी चले जाना चाहिये । मैं उठकर बाहर आई । देखा कि भोर हो गया है । आश्चर्य की बात यह रही कि बाउल बाबू इतने दिनों तक रात भर पहरा देते रहे, इस समय वे गहरी नींद में बेहोश पड़े थे । भोर के वक्त एक बार जमकर पानी बरसा था । इस वक्त हल्की वर्षा हो रही थी । एक भी प्राणी जागृत नहीं है । सिर्फ भोलानाथ जाग रहे थे । मैंने उनसे अनुसरण करने का इशारा किया। उन्होंने मेरा अनुसरण किया । मैं मन्दिर से बाहर आकर मन्दिर के पीछे स्थित जंगल के भीतर से चलने लगी । कुछ दूर जाने पर एक जरा साफ–सुथरा स्थान मिला । पहले उस स्थान की प्रदक्षिणा की और तब वहीं बैठ गई । भोलानाथ मेरे बगल में आकर बैठ गया । उस समय वर्षा थम गई थी । मैं जिस जगह बैठी थी, उस स्थान पर बैठे–बैठे दाहिने हाथ से मिट्टी दबाने लगी । जमीन कड़ी थी, पर ज्यों–ज्यों दबाव बढ़ाती गईं, त्यों–त्यों मेरा हाथ काफी दूर तक प्रवेश करता गया । यह आश्चर्य देखकर भोलानाथ डर गये और मुझे पकड़कर बोले– 'चलो, यहाँ से चलें।'[१] यह सुनकर मैंने हाथ बाहर निकाल लिया । हाथ के बाहर निकालते ही जहाँ गड्ढा हो गया था, वहाँ से फौवारे की तरह पानी निकलने लगा । यह बरसाती पानी

---

१. सिद्धेश्वरी के मन्दिर में काली विग्रह है । यह स्थान निर्जन है । यहाँ पंचमुण्डी का एक आश्रम है और एक आसन है । प्राचीनकाल से ही इस स्थान को सिद्धपीठ माना जाता है ।

१. इस घटना को मैं बाबा भोलानाथ की जबानी भी सुन चुका हूँ । उन्होंने कहा था – जब मैं इन्हें सीता की तरह पाताल प्रवेश करते देखा तब जल्दी से आकर इन्हें पकड लिया और कहा – यहाँ ठहरने की जरूरत नहीं हैं । चलो, यहाँ से चल दें ।

नहीं था, क्योंकि पानी गर्म और लाल रंग का था । लाल पानी के कारण मेरे हाथ का शंख–कंगन लाल हो गया । यह रंग सात दिनों तक कंगन पर बना रहा । इस घटना को भोलानाथ के अलावा अन्य किसी ने नहीं देखा । एक भैरवी ने दूर से हमें जंगल में बैठे रहते देखा था । उसने सोचा कि शायद हमें कोई गुप्त धन का पता लगा है। लेकिन पास आकर जब उसने देखा कि कहीं कुछ नहीं है तब वह चुपचाप चली गयी ।''

इस कहानी को सुनते समय खुकुनी दीदी[२] वहाँ मौजूद थीं ।

मैंने उनसे कहा – 'आप लोगों ने क्यों नहीं पूछा कि माँ आप क्यों उस जगह बैठी थीं और क्यों उस गड्ढे से गरम पानी का स्रोत

---

२. आप श्रीयुक्त शशांक मोहन मुखोपाध्याय की कन्या हैं । बाल्यकाल से ही गृहस्थी के प्रति अनासक्ता और धर्मभावापन्न हैं । माता–पिता ने अपनी लड़की के इस भाव को न समझकर, उसकी इच्छा न रहते हुए, उसका विवाह एक संभ्रांत और सम्पन्न परिवार में कर दिया । यह विवाह निष्फल हो गया । कारण विवाह के बाद जब इन्हें ससुराल ले जाया गया तब इन्होंने एक दिन भी साधारण महिला की भाँति दाम्पत्य–जीवन का निर्वाह नहीं किया । अक्सर आप इस तरह रोने लगती कि हृदय की क्रिया बिगड़ जाती थी । डाक्टरों ने राय दी कि इससे मृत्यु हो सकती है अतएव उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य न करें । इसके बाद से आप अपने नैहर में रहने लगीं और मन–प्राण से पिता–माता की सेवा करने लगीं। इसके अलावा और भी संसार में अन्य चीजों की आवश्यकता है, इसकी जानकारी इन्हें नहीं थी । श्री श्री माँ आनन्दमयी का जब ढाका आगमन हुआ तर शशांक बाबू जिस दिन इन्हें माँ के पास ले गये, उसी दिन से माँ के साथ इन्होंने ऐसा व्यवहार शुरू किया जैसे चिरपरिचिता और अन्तरंग सखी हैं । उसी दिन से आप माँ की प्रधान सेविका बन गयीं । इनके जीवन–चरित्र का अवलोकन करने पर ऐसा लगता है जैसे अब तक श्री श्री माँ के लिए प्रतिक्षा करती रहीं। इनके धार्मिक–जीवन का निर्माण माँ ने स्वयं अपने हाथों से किया है । ब्राह्मण कन्या होने पर भी माँ ने इन्हें यज्ञोपवित धारण करने और वेदाध्ययन करने का अधिकार दिया है । इनका नाम माँ ने रखा है – 'गुरुप्रिया' । हाल में आपने श्री श्री माँ की एक जीवनी लिखी है ।

बह निकला?' दीदी ने कहा – 'आपका क्या विचार है कि वकीलों की तरह उलट–तपास करने पर माँ से बातें मालूम होती है ? असली बात आते ही माँ चुप हो जाती हैं । इन्होंने उस स्थान को घेर देने की आज्ञा दी; लेकिन उस स्थान के बारे में अन्य बातें नहीं बतायीं ।' कुछ दिनों तक उक्त स्थान को घेरकर रख दिया गया । श्रीयुक्त प्राण गोपाल वसु[१] के खर्च से उस स्थान को घेरा गया था । बाद में श्रीयुक्त शंशांक मोहन मुखोपाध्याय (वर्तमान समय में अखण्डानन्दजी) ने उस स्थान को बन्दोबस्त लेकर एक आश्रम बनवाया था । ढाका में यहीं माँ का आदि आश्रम है । सुना कि जिस स्थान पर माँ ने गड्ढा किया था, आश्रम बनने पर भी उक्त स्थान को यथावत् रखा गया था । माँ वहां बैठकर अधिक समय तक भावावस्था में रहती थीं। आजकल वहां शिव मंदिर बनवाया गया है ।

यह आश्रम सिद्धेश्वरी मंदिर के पीछे हैं । स्थान बहुत निर्जन है और साधन–भजन करने के लायक है। जो लोग इस स्थान के इतिहास से परिचित हैं, वे लोग इस स्थान का माहात्म्य एव यहां आकर माँ ने जितना अद्भुत आचरण किया था, उन सबके कारणों का किंचित् अनुमान लगा सकते हैं। अगर इस स्थान से माँ का संबंध न रहता तो वे इस स्थान का चित्र अपनी दिव्य दृष्टि में न देखती एवं रात के अन्त में मन्दिर से चलकर उस दुर्योग में इस जंगलाकीर्ण स्थान में आश्रय न लेतीं, वर्ना कोई इसका कोई अर्थ नहीं होता है । यह सब व्यर्थ के विचार हैं, कहकर उड़ा नहीं दिया जा सकता । कारण इस ख्याल में अतीत का कोई सम्बन्ध स्पष्ट रूप से हैं। उसका स्पष्ट रूप क्या है, यह निश्चय करना असाध्य है इस दिशा में मां नीरव रहती हैं ।

---

१. आप ढाका के D.P.M.G. थे, आप वैद्यनाथधाम के स्व. बालानन्द स्वामी के शिष्य हैं ।

एक दिन सवेरे मां के पास जाते समय मार्ग में दीदीमाँ के यहां उन्हें देखकर वहीं जाकर प्रणाम किया । कुछ देर बाद शाहबाग देखने की इच्छा से माँ रवाना हुई । मैं भी पीछे–पीछे चल पड़ा । मार्ग में देखा कि एक व्यक्ति रस्सी बँधे एक छोटे बकरे को ढाकेश्वरी मन्दिर भवन में खींचते हुए ले जा रहा है । बकरा प्राणपण से चिल्ला रहा है । माँ ने उसकी ओर देखते हुए कहा– "तुम्हें अधिक देर तक चीत्कार नहीं करना पड़ेगा ।" मैंने माँ से पूछा–'माँ, क्या बिना बलि दिये पूजा नहीं होती ?'

माँ ने कहा– 'क्यों नहीं होगी ?' मैंने पूछा– 'तब लोग क्यों बलि देते हैं ?' माँ ने जवाब दिया– 'इसे कितने लोग समझ पाते हैं ?' इस तरह की बातें करते हुए हम लोग शाहबाग आ गये ।

शाहबाग कभी ढाका के नवाबों का विलास निकेतन था । यह स्थान रमना के घुड़दौड़ मैदन के पश्चिम दिशा में विशाल भूमि खण्ड में है । इस बाग में फल–फूल के अनेक पौधे और वृक्ष हैं । भीतर ईंटों से बने कई छोटे–छोटे कमरे हैं । पत्थरों से निर्मित नाचघर बहुत सुन्दर हैं ।उसके बगल में एक तालाब है । तालाब के चारों ओर देशी–विलायती अनेक फूलों के उद्यान हैं । इसके अलावा बेगमों के स्नान के लिए नीचे से ऊपर तक पक्का एक तालाब है जिसे कृत्रिम जल से भरा जाता है । इस पानी के निकासी की भी व्यवस्था है। तालाब के चारों ओर ऊँची दीवारें हैं । यह बाग इतना बड़ा है कि इसका अधिकांश भाग सफाई के अभाव में जंगल बना हुआ है । केवल छोटा–सा भाग वर्तमान नवाब द्वारा संरक्षित है । इस बगीचे की देखरेख एक मुसलमान कर्मचारी करता है । आम लोगों को इस बाग में जाने नहीं दिया जाता । लेकिन माँ के लिए सर्वत्र खुला आमन्त्रण है । क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी माँ को जानते हैं । सभी माँ को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं । माँ के साथ रहने के कारण बाग में प्रवेश

करने में कोई कठिनाई नहीं हुई । माँ मुझे विभिन्न जगह घूम–घूमकर दिखाने लगीं । कभी इस बाग की देखरेख बाबा भोलानाथ करते थे। उन दिनों माँ इस बाग में ही रहती थीं । वे जिस कमरे में रहती थीं, उसे भी दिखाया । काली–पूजा का भी एक इतिहास है जिसके बारे में माँ ने एक दिन वर्णन किया था ।

शाहबाग में एक मुसलमान फकीर की कब्र है । उक्त कब्र को माँ ने दिखाया । कब्र एक दालान में है और दालान का दरवाजा बाहर से ताला लगाकर बन्द किया गया है । दालान के कुछ हिस्से में जाली लगी है, इसलिए बाहर से झांककर देखा जा सकता है । इस फकीर के बारे में माँ ने बताया– "मैं जिन दिनों बाजितपुर में रहती थी, उन दिनों पहले पहल इस फकीर से मेरी मुलाकात हुई थी । शाहबाग में आने के बाद भी मेरी उनसे मुलाकात हुई थी । मानो फकीर साहब मुझे यहाँ बुला लाने के लिए बाजितपुर गये थे ।" यद्यपि जिस समय की बात माँ कह रही थीं, उसके बहुत पहले ही फकीर साहब का शरीरान्त हो गया था । फलतः माँ के साथ उनकी जो मुलाकात हुई थी, वह अशरीरी अवस्था में हुई थी ।

माँ कहने लगी– 'पहले पहल जब पिताजी से मुलाकात हुई थी, तब मुझे ऐसा लगा जैसे वे अरब देश के कोई महापुरुष हैं । उस समय तक मैं यह नहीं जानती थी कि अरब नामक कोई देश है या नहीं और है तो कहाँ है ? मैंने जब भोलानाथ से कहा कि मैंने अरब देश के एक महापुरुष को देखा तो भोलानाथ आश्चर्य के साथ बोले– 'तुम हिन्दू देवी–देवता के बदले यह सब क्या देखने लगी ? इसका अर्थ मैं नहीं समझा ?' बाद में शाहबाग आने पर जब इस कब्र को देखा तब पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि अरब देश के एक फकीर यहाँ आकर कुछ दिनों तक थे । बाद में इसी बाग में उनका शरीरान्त हो गया । नवाब परिवार के लोग फकीर साहब को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, इसलिए उनकी कब्र बाग में बना दी गई । पिताजी के

साथ एक शिष्य भी था और ढाका में शिष्य के साथ पिताजी से मुलाकात हुई थी । मैंने पूछा–'ढाका में कितनी बार आपसे मुलाकात हुई थी?'

माँ ने कहा–'सिर्फ एक बार ।' जिस स्थान पर उनसे मुलाकात हुई थी, वह स्थान उन्होंने दिखाया । इसके अलावा एक झाड़ी दिखाती हुई बोलीं–'अक्सर इस झाड़ी से धूप की महक निकलती थी ।' यह सब देखकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि शाहबाग विलास–व्यसन का स्थान होने पर भी महापुरुष का आवास–स्थल है । अगर किसी स्थान से धूपादि सुगन्ध अकारण निकले तो वहाँ महापुरुष का सान्निध्य होता है । बहरहाल, माँ फकीर से युक्त कब्र के समीप खड़ी होकर एक कहानी सुनाने लगीं–

''एक दिन नाचघर में कीर्तन हो रहा था । कीर्तन के बीच मुझमें भावावेश हो गया । मैं भावावेश हालत में कमरे से बाहर निकल आई । कुछ दूरी पर एक मुसलमान को खड़ा देखकर मैंने अपने साथ आने का इशारा किया । वह बिना किसी प्रश्न के पीछे–पीछे चल पड़ा । उसे साथ लेकर मैं कब्र के समीप आयी । इस मुसलमान के जरिये घर का ताला खोला गया । भीतर जाकर मैं कब्र की दाहिने ओर खड़ी हो गयी । इधर मेरी ऐसी हालत हो गई कि हिलने–डुलने की शक्ति से हीन हो गई । नमाज पढ़ते वक्त मुसलमान जिस प्रकार आंगिक क्रियाएँ करते हैं, ठीक उसी प्रकार अपने आप मेरी आंगिक क्रियाएँ होने लगीं और मुँह से एक प्रकार की ध्वनि निकलने लगी जिसका एक वर्ण भी समझ नहीं सकी । कुछ देर बाद सब कुछ रुक गया और मैं घर से बाहर निकल आयी । इस घटना के कुछ दिनों बाद जब इस बात का प्रचार हो गया तब नवाब के यहाँ से नवाबजादी परीबानू का पुत्र, पुत्रवधू, लड़की और दामाद आकर मुझसे कहने लगे कि हमें भी नमाज पढ़ने के कायदे दिखाइए । मैंने उनसे कहा कि मैंने अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं किया । वह तो अपने आप हो

गया । अपनी इच्छा से मैं वैसा नहीं कर सकती । लेकिन वे मानने को तैयार नहीं हुए । मुझे साथ लेकर पुनः कब्र के पास आये । आश्चर्य की बात यह हुई कि यहाँ कुछ देर रहने के बाद पहले वाले दिन की तरह मुझे पुनः भावावेश हुआ और अपने आप आंगिक क्रियाएँ होने लगीं । मुँह से वैसी ध्वनि निकलने लगी । उसे सुनकर नवाबजादी परीबानू की पुत्रवधू बोल उठीं–ये तो कुरान की आयतें पढ़ रही हैं ।''

इस कहानी को सुनने के बाद माँ उक्त महापुरुष के शिष्य की कब्र दिखाने ले गयीं इस कब्र के ऊपर कोई कमरा नहीं है । यह कब्र कई वृक्षों के नीचे है और वृक्ष समूह कब्रिस्तान की रक्षा कर रहे हैं। मैंने भक्ति के साथ गुरु–शिष्य की कब्रों को प्रणाम किया। इसके बाद हम बगीचे से बाहर चले आये । अब मुझे लगा कि इन पुण्य स्थानों का दर्शन कराने के लिए मां मुझे शाहबाग ले गयी थीं। अन्यथा वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

एक दिन मां स्वयं गड्ढे के भीतर सुरक्षित काली मूर्ति के बारे में कहानी सुनाने लगीं । उक्त कहानी की सारी बातें स्मरण नहीं हैं। अपनी स्मरण–शक्ति के आधार पर लिख रहा हूँ–

मां जिन दिनों शाहबाग में थीं, तभी से दो–एक करके भक्त वहां आते थे । नाना प्रकार के लोग नाना प्रकार की बातें कहा करते थे । बेगम परीबानू के इलाके के मैनेजर श्रीयुक्त योगेशचन्द्र घोष और उनके दामाद बसु महाशय अन्य सम्पत्तियों के साथ शाहबाग की देखरेख किया करते थे । इनके द्वारा नियुक्त हुए थे–बाबा भोलानाथ जो इस बाग के रक्षक थे । इन्हीं दिनों भोलानाथ के परिचित और अपरिचित लोग वहां आते और मां से मिलते तथा कीर्तन आदि में भाग लेते थे ।

इस बाग में सर्व साधारण का प्रवेश निषिद्ध था, फिर भी लोग वहां आते–जाते थे । इस बात को जानकर भी योगेश बाबू ने लोगों का आना–जाना बन्द नहीं किया ।

एक दिन योगेश बाबू का पुत्र श्री प्रफुल्लचन्द्र घोष महाशयने कुछ लोगों को इस बाग में देखकर अपने पिता से शिकायत की कि आम लोग इस बाग में आकर हल्ला–गुल्ला करते हैं और पेड़–पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं । ऐसी हालत में जिस व्यक्ति को रक्षक के रूप में रखा गया है, उसे हटा दिया जाय ।

प्रफुल्ल बाबू ने इस बारे में भोलानाथ जी से भी शिकायत की थी । इस शिकायत को सुनकर भोलानाथ जी इतने नाराज हो गये कि नौकरी छोड़ देने के लिए तैयार हो गये । केवल माँ के अनुरोध पर उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

माँ ने कहा–"देखा जाय, क्या होता है ? नौकरी तो किसी भी समय छोड़ सकते हो ।" प्रफुल्ल बाबू की शिकायत के बाद एक दिन योगेश बाबू और भूदेव बाबू जांच करने के लिए आये । योगेश बाबू ने भोलानाथ से प्रस्ताव किया कि वे माँ को अपने घर ले जाना चाहते हैं । क्या आपको इस पर कोई आपत्ति है ?

भोलानाथ ने माँ से पूछकर कहा–"कोई आपत्ति नहीं है ।"

फलतः योगेश बाबू माँ को अपने घर ले गये और वहाँ अनेक विषयों पर प्रश्न किये । माँ के उत्तरों से वे इतने प्रसन्न हुए कि उसी समय माँ के भक्त बन गये । इसके बाद से शाहबाग में होनेवाले कीर्तनों के प्रति कोई आपत्ति नहीं की गयी ।

इधर प्रफुल्ल बाबू नवाब के स्टेट में जहां नौकरी करते थे, वह पद समाप्त हो गया । जिस दिन समाप्त हुआ, उसी दिन उन्होंने माँ से पूछा–'माँ, मेरी नौकरी समाप्त हो गयी । अब क्या करूँ ?' माँ ने जवाब दिया–'तुम्हारा समय ठीक नहीं है ।' प्रफुल्ल बाबू ने पूछा–'कब ठीक होगा ?' माँ ने जवाब दिया–'आठ महीने बाद ।'

सचमुच यह देखा गया कि ठीक आठ माह बाद प्रफुल्ल बाबू को कुमिल्ला के कोर्ट आफ वार्ड में नौकरी मिली । इस कारण उनका माँ के प्रति भक्ति-विश्वास बढ़ गया । आगे चलकर योगेश बाबू और भूदेव बाबू दोनों ही परिवार माँ के विशिष्ट भक्त बन गये । इन दोनों परिवारों के प्रति माँ की विशेष कृपा रही ।

जब शाहबाग में सर्व साधारण के प्रवेश का झंझट समाप्त हो गया तब कुछ उत्साही भक्तों ने शाहबाग में काली-पूजा का प्रस्ताव रखा । शायद यह पूजा दीपावली के उपलक्ष्य में हुई थी । माँ से अनुमति मांगने पर मिल गयी । काली-पूजा के चार दिन पहले माँ गाड़ी से श्रीयुक्त शशांक मोहन मुखोपाध्याय के यहाँ निमंत्रण पर जा रही थीं। उस गाड़ी में माँ, भोलानाथ, शशांक बाबू और उनकी कन्या खुकुनी दीदी थीं । गाड़ी जब पल्टन के मैदान में नवाब साहब के बाग के तालाब के पास पहुँची तब देखा गया कि माँ तालाब की ओर मुँह करके ऊपर की ओर न जाने क्या देख रही हैं । ऊपर की ओर देखते समय लोग जैसे आँखों के ऊपर हाथ रखकर देखते हैं, माँ भी ठीक उसी प्रकार देख रही थीं। पलक हीन आंखें, मुँह पर दिव्य ज्योति। कुछ देर इस तरह देखने के बाद माँ पुनः प्रकृतिस्थ हो गयीं। उन्होंने क्या देखा, प्रश्न करने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला । बाद में शशांक बाबू के घर पर माँ जब भोजन करने बैठीं तब भोजन करते-करते पुनः बांया हाथ ऊपर उठाकर निस्पन्द दृष्टि से ऊपर की ओर देखने लगीं। सभी लोग अवाक् होकर माँ की ओर देखते रहे । जब यह भाव समाप्त हो गया तब माँ ने दो बार ऊपर की ओर न जाने क्या देखा, यह जानने के लिए लोग अनुरोध करने लगे । लेकिन उस समय माँ ने कुछ न बताया ।

कुछ दिनों बाद माँ ने जरूर बताया था कि उन्होंने दो बार शून्य से काली मूर्ति को कूदते देखा था । आश्रम के मंदिर में वेदी पर

अन्नपूर्णा मूर्ति के बगल में जो काली मूर्ति है, वही उल्लेखित काली मूर्ति की अनुरूप है । इसे भी शून्य में स्थापित किया गया है, इसके पैरों के नीचे महादेव की मूर्ति नहीं है ।

बहरहाल, शशांक बाबू के यहाँ भोजन समाप्त करने के बाद माँ जब शाहबाग वापस आयीं तब समाधिस्थ हो गयीं । इधर काली–पूजा का समय हो रहा था । माँ समाधिस्थ हैं, कितनी बड़ी मूर्ति तैयार होगी, यह आदेश न पाने के कारण भक्तगण विचलित हो रहे हैं । तभी बाबा भोलानाथ के दिमाग में एक विचार आया । उन्होंने कहा–'उस दिन भावावस्था में जिस तरह हाथ उठाकर बैठी थीं, उसी प्रकार इनका हाथ उठाकर बैठाओ और नाप ले लो । उसी नाप के अनुसार मूर्ति बनवाओ।'

माँ को उसी तरह बैठाया गया । एक हाथ ऊपर उठाकर जिस तरह वहाँ बैठी थी और ऊपर की ओर देख रही थीं, उसी तरह करके, कमर से हाथ तक की लम्बाई नापी गयी । बाद में नाप लेकर यह देखा गया कि अगर इस नाप के अनुसार मूर्ति बनाने का आदेश दिया जायगा तो निर्दिष्ट दिन पूजा नहीं हो सकेगी । अब लोग बाजार की ओर इतनी बड़ी मूर्ति मिल सकेगी या नहीं, खोजने के लिए चल पड़े। दीपावली के उपलक्ष्य में अनेक तैयार मूर्तियाँ बाजार में बिकती हैं । काफी खोज करने के बाद एक दुकान में आठ मूर्तियाँ देखने में आयीं जिसमें एक मूर्ति मिली जो नाप के अनुरूप थी । मूर्ति का रंग घोर कृष्णवर्ण नहीं है । हरा और नीला दोनों का सम्मिश्रण करने पर जो रंग बनता है, वैसा है । सुना गया कि कारीगर ने अपनी इच्छा के अनुसार इतनी बड़ी मूर्ति बनायी है । सभी मूर्तियाँ बिक गयी हैं, सिर्फ यही मूर्ति अभी तक बिकी नहीं है । इस मूर्ति को खरीदकर शाहबाग में ले आया गया । इस पूजा के उपलक्ष्य में माँ की अनेक विभूतियाँ प्रकट हुई थीं । चूँकि उन विभूतियों की माँ के श्रीमुख से न सुन पाने के कारण लिख नहीं पा रहा हूँ । इस मूर्ति को विसर्जित

नहीं किया गया । और इस काली-पूजा के उपलक्ष्य में जो होमाग्नि प्रज्ज्वलित की गयी थी, उसे बुझाया नहीं गया ।

इस मूर्ति को माँ के साथ टीकाटुली, उत्तमा कुटीर और सिद्धेश्वरी आश्रम में स्थानान्तरित किया गया था ।

आगे चलकर जब रमना में आश्रम की स्थापना हुई तब इस आश्रम में यह मूर्ति स्थापित कर दी गयी । उन दिनों के आश्रम का मतलब यह था कि माँ के लिए फूस की एक झोपड़ी और मूर्ति के लिए टीन का छाजन वाला कमरा । इन्हीं दिनों मूर्ति के स्वर्णाभूषण की चोरी हुई । जब चोरी हुई, उस समय माँ कॉक्सबाजार में थीं। सुना जाता है कि जिस दिन अङ्ग हानि कर अलंकार की चोरी हुई, ठीक उसी समय कॉक्सबाजार में माँ का हाथ टूट गया, कहकर चीख उठी थीं । यह कहानी कई लोगों की जबानी सुन चुका हूँ । इस घटना की सत्यता के सम्बन्ध में मुझे सन्देह नहीं है । यह इसलिए लिखा कि इस बारे में माँ ने मुझे कभी कुछ नहीं बताया । ढाका वापस आने के बाद माँ मूर्ति के संस्कार के लिए प्रयत्न करने लगीं । आगे चलकर वर्तमान मन्दिर तैयार होने पर वेदी के नीचे गुफा में उक्त मूर्ति की स्थापना की गयी ।

एक दिन कालेज से रमना के आश्रम में आकर देखा कि वहाँ और अन्य भक्त हैं । माँ उन सभी से बातें कर रही हैं । माँ की बातें सुनते-सुनते काफी समय गुजर गया । ठीक इसी समय एक भक्त ने बातचीत के सिलसिले में साँपों के बारे में इशारा किया । मैं उसका इशारा न समझ पाने के कारण माँ से इस बारे में प्रश्न किया । माँ ने कहा-'साँपों के बारे में अनेक कहानियाँ हैं । फिर कभी सुनाऊँगी। इस वक्त देर हो गयी है, घर जाओ ।'

बाद में एक शनिवार को सबेरे माँ का दर्शन करने के लिए सिद्धेश्वरी आश्रम गया । उस समय स्वतः प्रवृत्त होकर साँपों की कहानी

सुनाने लगीं । माँ ने कहा–"कुंजबाबू[1] के एक लड़के की जन्म पत्रिका में लिखा था कि 'दन्ताघात' से उसकी मृत्यु होगी । कुंजबाबू उस बालक को मेरे पास रखना चाहते थे । मैंने उनसे कहा–'मेरे पास रखने की जरूरत नहीं । उसे अपने पास ही रखो ।' इसके कुछ दिनों बाद मेरे बाहर जाने की चर्चा हुई । भोलानाथ भी बाहर जाने के लिए तैयार थे । उन दिनों हमलोग शाहबाग में रहते थे । उनके साथ एक शर्त हुई कि घर से स्टेशन पहुँचने तक अगर किसी परिचित व्यक्ति से मुलाकात हो जायगी तो हम लोग कहीं नहीं जायेंगे । शाहबाग वापस चले आयेंगे ।

"एक दिन भोर के वक्त भोलानाथ को साथ लेकर रवाना हुईं । उस दिन ऐसा हुआ कि मार्ग में एक भी परिचित आदमी नहीं मिला । जो लोग सबेरे बाग में काम करते थे, वे भी उस दिन अनुपस्थित थे । ज्योतिष बाबू[1] शाहबाग के समीप एक छोटे से मकान को किराये पर लेकर रहते थे । उन दिनों वे बीमार थे । वे नित्य सबेरे अपने घर के बरामदे में टहलते थे । हम लोग उनके मकान के निकट से गये, लेकिन उस दिन ज्योतिष बाबू भी दिखाई नहीं दिये । इस प्रकार बिना किसी को कोई सूचना दिये, हम लोग विंध्याचल आ गये । कुंज बाबू उन दिनों सपरिवार विंध्याचल में थे । एक दिन उनकी पत्नी,

---

१. श्रीयुक्त कुंज बिहारी मुखोपाध्याय । आप श्रीयुक्त शशांक मोहन मुखोपाध्याय के भाई हैं । आप भी संन्यासी हैं । माँ ने इनका नाम तुरीयानन्द रखा है । आजकल पुरी में रहते हैं ।

१. श्री ज्योतिषचन्द्र राय (भाईजी) । आप डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर में पर्सनल असिस्टेण्ट थे । माँ जिस दिन की चर्चा कर रही हैं, उन दिनों तपेदिक से पीड़ित होकर रमना में निवास करते थे । इस भयंकर रोग से उन्हें माँ की कृपा से मुक्ति मिली थी, इसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है । बंगला १३४४ में ज्योतिष बापू, माँ और बाबा भोलानाथ के साथ कैलास गये थे । वहाँ से वापस आते समय उनका शरीरान्त अलमोड़ा में हो गया था । "सत्वाणी", "मातृ–दर्शन" आदि कई ग्रन्थ इनकी कृतियाँ हैं । मातृ–दर्शन में इन्होंने श्री श्री माँ के बारे में अपनी अभिज्ञता का उल्लेख किया है । यह पुस्तक उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई थी ।

बच्चे और भोलानाथ को लेकर मैं विंध्याचल के देव मंदिरों का दर्शन करने के लिए चल पड़ी । हमलोग पहाड़ी सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहे थे। सीढ़ी संकरी थी । मैं सबसे आगे–आगे चल रही थी । मेरे पीछे भोलानाथ और उनके पीछे कुञ्ज बाबू की पत्नी तथा बच्चे थे । मैं अनमने भाव से सीढ़ियों–पर चढ़ रही थी । कहाँ पैर पड़ रहे हैं, इस पर गौर नहीं कर रही थी । पहाड़ पर मेरी हालत ऐसी हो जाती है । इसी प्रकार चलते–चलते मेरा पैर एक साँप पर पड़ गया । ठंढा लगने के कारण तुरंत पैर हटाकर दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा। पैर हटाने के साथ ही साँप ने मेरे पैर को काट खाया और जहाँ था, वहीं से फन फैलाकर मेरी ओर देखने लगा । मैं भी उसे एक टक देखने लगी । इधर लोग "साँप–साँप" कहकर चीखने लगे । सभी की दृष्टि साँप पर पड़ी । भोलानाथ मेरे और साँप के पीछे थे । उन्होंने व्यस्तभाव से पूछा कि मुझे साँप ने काटा तो नहीं और इसे मार दिया जाय या नहीं । मैंने कहा–'नहीं मारने की जरूरत नहीं ।' भोलानाथ ने जब यह प्रश्न किया कि साँप को मार दिया जाय या नहीं तब साँप ने एक बार पलटकर उनकी ओर देखा था । ठीक इसी समय कुञ्ज बाबू के छोटे पुत्र ने अपनी माँ से कहा–'माँ, दादा को जो साँप काटने की बात थी, उसे माँ ने ले लिया ।' इतना छोटा बालक अचानक ऐसी बात कैसे कह बैठा, कौन जानता है ?

"इसके बाद विभिन्न स्थानों का चक्कर काटने के बाद हमलोग डेरे पर वापस आ गये । इस दिन हम लोगों के यहाँ सभी के खाने के लिए खिचड़ी बनी थी । मैं सारी खिचड़ी अकेली खा गयी । पुनः नये सिरे से खिचड़ी बनाकर सभी को खिलाया गया । तीसरे पहर ख्याल के कारण कुञ्ज बाबू के बच्चों के साथ दौड़ती हुई पहाड़ के नीचे आ गयी । वहाँ विश्राम करते समय दाहिने पैर के अंगूठे के नीचे सूई की छेद की तरह चोट के निशान देखा जहाँ नीला हो गया था । साँप गेहुँअन था । काटने के कुछ देर बाद जहर का असर

भी हुआ था । शाम के समय जब डेरे पर वापस आयी तब कुञ्ज बाबू के लड़के से मैंने कहा–'मुझे काटा साँप ने और मैंने खाया भात।'

इस घटना के कुछ दिनों बाद हम शाहबाग वापस लौट आये। एक दिन बाउल बाबू आदि के निकट उक्त साँप की कहानी कहती हुई बोलीं कि साँप चला गया, इसलिए मैं रोने लगी । फिर अपने को यह कहकर सान्त्वना देने लगीं कि उसके साथ पुनः मुलाकात होगी।

"इस घटना के कुछ दिनों बाद हम लोग विद्याकूट में गये । वहाँ कुछ दिनों तक रहने के बाद जिस डेरा से नाव द्वारा स्टेशन रवाना हो रही थीं, ठीक उसी दिन चलते समय मुझे रोना आ गया। जो लोग मेरे पड़ोसी थे, उनके गले से लिपटकर मैं रोने लगी । लड़कियाँ बाप के घर से ससुराल जाते समय जिस प्रकार रोने लगती हैं, ठीक उसी तरह । क्यों बेकार रो रही हूँ, मैं स्वयं समझ नहीं पाई । यह रोना पिता–माता के लिए तो नहीं था, क्यों पिता–माता तो मेरे साथ ही थे। जो लोग मुझे देखने आये थे, वे भी मेरा रोना देखकर रोने लगे । इसके बाद हमलोग नाव पर आकर बैठे । मेरे साथ माँ, पिताजी, शशांक बाबू, खुकुनी, खुकुनी के दादा[१] थे । हम लोग जब नाव द्वारा एक सँकरे मार्ग से गुजरने लगे तब हम लोगों ने देखा कि एक साँप फन उठाये हमारी नाव की ओर आ रहा है । आश्चर्य की बात यह रही कि उक्त साँप नाव से दस–बारह हाथ दूरी का व्यवधान रखते हुए आ रहा था । न कम और न अधिक । मैं अपलक दृष्टि से उसकी ओर देखती रही । दूसरी ओर आँखें नहीं घूमा पा रही थी। मेरे एक ओर खुकुनी और दूसरी ओर खुकुनी के दादा बैठे थे । अब तक साँप हमारे साथ चला आ रहा है, इस दृश्य को किसी ने नहीं देखा । अन्त में साँप ने जब नाव के करीब आकर मेरे मुँह

---

१. श्रीयुक्त वीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय । आप आगरा कालेज के अध्यापक हैं। यह कहानी उन्होंने सुनायी थी ।

के सामने फन उठाया तब माँझी ने डाँढ़ से साँप को मारा । डाँढ़ से साँप को आघात नहीं लगा । वह चल गया, पर डाँढ़ से उछलकर इतना पानी ऊपर छलका कि मैं भींग गई । लोगों ने कहा कि कपड़े बदल लीजिए मैंने कहा–"नहीं, यह पानी शरीर में सुखाना ठीक है।" जब लोगों ने परेशान करना शुरू किया कि यह साँप कौन था, बताइए। तब मैंने कहा–विन्ध्याचल का साँप है । वास्तव में ये एक महापुरुष हैं । साथ में शिष्य को लेकर आये हैं ।"

इसी समय मैंने कहा–'माँ तुमने तो एक साँप की चर्चा की । इसमें शिष्य कहाँ से आ गया ?' माँ ने कहा–'उक्त महापुरुष के पीछे एक शिष्य को देखा था । महापुरुष कभी शिष्य को छोड़कर नहीं आते। वे लोग जन्म लेने के साथ ही शिष्य को लेकर आते हैं । हाँ, तुम्हें इस बात का संदेह हो सकता है कि विंध्याचल का साँप विद्याकूट में कैसे आ गया ?' मैंने कहा–'नहीं, इस विषय पर मुझे संदेह नहीं है । लेकिन वह साँप अगर महापुरुष था तो तुम्हें उसने काटा क्यों ?' माँ ने जवाब दिया–'काटा कहाँ था ? तुम लोग बच्चों का हाथ–पैर पकड़कर प्यार नहीं करते ? यह भी वही रूप था । मैं दुलारी बेटी हूँ न, इसलिए पिताजी ने पैर पकड़ कर दुलार किया था । उसी समय से पिताजी मेरे साथ हैं ।' मैंने कहा–माँ जिस समाधि[1] के ऊपर तुमने शिवमन्दिर की स्थापना की है, वह इस महापुरुष की समाधि तो नहीं ? अगर यह बात न होती तो तुम मन्दिर के शिखर पर एक साँप बनवाने को क्यों कहतीं ?" यह बात सुनकर माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोलीं–'मैं इतनी बातें नहीं बता सकती ।'

---

१. रमना के आश्रम में अन्नपूर्णा मन्दिर के पीछे एक पक्की जमीन है । पहले–पहल जब आश्रम में गया था तब उसी हालत में मैंने उसे देखा था । कुछ भक्तों से प्रश्न करने के बाद पता चला कि वह एक महापुरुष की समाधि है, इसलिए पक्का बनाया गया है । आगे चलकर माँ ने उसके ऊपर शिव मन्दिर की स्थापना कर मन्दिर के चारों ओर शिखर पर एक साँप बनाने का आदेश दिया था ।

आगे माँ ने कहा–"एक दिन निरंजन बाबू[1] के यहाँ कीर्तन हो रहा था । मैं दोतल्ले के एक कमरे में थी । वे लोग मुझे कीर्तन में ले जाने के लिये बुलाने आये । लेकिन उस समय मुझमें एक भाव आ गया था जिसके कारण उठकर जा नहीं सकी । कुछ देर बाद साँप–साँप की आवाज आयी । इस शोरगुल को सुनकर मैं नीचे जाने के लिए तैयार हो गयी । लोग उस समय इस कमरे में तो कहीं उस कमरे में साँप खोज रहे थे । मैं झूमती हुई सीढ़ी के नीचे उतर रही थी । ठीक इसी समय साँप के ऊपर मेरे पैर पड़ गये । साँप भागने के लिए मेरे पैर के नीचे छटपटा रहा था । भोलानाथ मेरे पीछे थे। भोलानाथ को हटाकर मैंने साँप पर से पैर हटा लिया । साँप सीढ़ी के नीचे जाकर लम्बे रूप में सो गया । देखने में पतला और घोर काला था । उसे मारने के लिए लोग मुझसे अनुमति माँगने लगे । मैंने कहा–अगर हिम्मत हो तो मारो ।' लोग लाठी लेकर मारने आये, पर इसी बीच वह न जाने कहाँ गायब हो गया । फिर कुछ पता नहीं चला । चारों ओर प्रकाश है, घर में इतने लोग हैं । कैसे सबकी नजर बचाकर वह अदृश्य हो गया, लोग समझ नहीं पाये ।"

एक दिन माँ से मैंने पूछा–'माँ, रमना में जहाँ तुमने आश्रम बनवाया है, सुना कि तुम अक्सर वहाँ साँपों को दूध–केला खिलाया करती थीं ?'

माँ ने कहा–'दूध–केला साँपों को आज दिया जाता है ।' आश्रम की स्थापना के पूर्व यहाँ जंगल था । जहाँ सियार, साँप आदि जंतु रहते थे । यहाँ एक टूटा देवालय भी था । जानते ही हो कि मैं स्वयं कुछ नहीं करती । एक दिन अचानक ख्याल हुआ कि दूध–केला दे आऊँ । रात को आकर दूध–केला रख गई । सात दिन बाद अचानक

---

१. आप ज्योतिष बाबू के मित्र थे । नाम निरंजन राय । आप इनकम टैक्स विभाग के कमिश्नर थे । दोनों ही माँ के भक्त रहे ।

पुनः एक रात को ख्याल हुआ कि देख आऊँ आखिर दूध–केला का क्या हुआ। भोलानाथ और कुछ लोगों को लालटेन सहित लेकर आई। आकर देखा कि जिस जगह दूध–केला रख गई थी, वह वहीं उसी हालत में रखा है। जंगल के जीवों ने उसे स्पर्श तक नहीं किया था। यहाँ तक कि उस पर कूड़ा–करकट का एक टुकड़ा भी नहीं गिरा है। दूध की हालत देखकर ऐसा लगा जैसे अबतक किसी ढक्कन के नीचे रखा था। अभी–अभी ढक्कन खोलकर देख रहे हैं। इस दूध को देखकर मैं बोल उठी–'आओ, हम लोग प्रसाद ग्रहण करें।' लेकिन साथ आये लोगों ने आपत्ति की। उन लोगों ने कहा–'इस दूध को नहीं पीना चाहिए। मुमकिन है जहर हो। ऐसी हालत में जो खायेगा, मरेगा।' मैंने कहा–'मैं पहले पीऊँगी। इतना कहकर हाथ से थोड़ा दूध उठाकर पी गई। इसके बाद सभी लोगों ने पान किया। बाकी दूध छोड़ दिया। दूसरे दिन आकर देखा कि छोड़ा गया दूध पता नहीं कौन पी गया है। मुझे लगा जैसे इतने दिनों तक वे सब मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। बाद में उक्त स्थान का बन्दोबस्त लेकर वहाँ आश्रम बनाया गया।'

इस स्थान की प्रशंसा माँ कई बार कर चुकी हैं। एक दिन कहती रहीं–"यहाँ इतने यज्ञादि हो चुके हैं कि यहाँ कुछ भी अपवित्र नहीं है। यहाँ का प्रत्येक कण पवित्र है।"

एक दिन और कहती रहीं–"इस स्थान पर पहले जितने महापुरुष साधना कर गये हैं, उनकी इच्छा से ही यहाँ आश्रम की स्थापना हुई है।" भक्तों को माँ हमेशा आश्रम में आकर नाम जपने का उपदेश देती हैं।

जिन दिनों माँ शाहबाग और सिद्धेश्वरी आश्रम में रहती थीं, उन दिनों अनेक लोग माँ की अलौकिक शक्ति प्रत्यक्ष रूप में देख चुके हैं। लेकिन मैंने जिस समय से आना–जाना प्रारम्भ किया,

उस समय माँ अपनी समस्त विभूतियों को संवरण कर स्थिर, धीर, प्रशान्त सागर की तरह रहती थीं । मुझे माँ की कोई विभूति दर्शन करने का अवसर नहीं मिला । इसके पूर्व माँ के श्रीमुख से, भावावेश के समय अनेक संस्कृत के स्तोत्र निकलते काफी लोग सुन चुके हैं । माँ हँसते–हँसते उन स्तोत्रों की बातें मुझे बताती रहीं ।

माँ कहती रहीं–'यह आश्चर्य की बात है कि जो शब्द जिस रूप में उच्चारण होना चाहिए जीभ अपने आप ठीक जगह पर वही शब्द उसी रूप में उच्चारण करती रही ।'

यह सब सुनकर एक दिन मैंने माँ से कहा–'माँ, तुम्हारे मुख से संस्कृत शब्द सुनने की बड़ी इच्छा है ।' माँ ने कहा–'मैं अपनी इच्छानुसार स्तोत्र वगैरह कह नहीं पाती । कभी–कभी अपने आप मुँह से निकल जाता है । इस पर मेरा कोई हाथ नहीं है ।'

एक दिन माँ से पूछा–'माँ, सुना है कि आपने अपने किसी भक्त को दस महाविद्या रूप दिखाया था ?'

माँ हँसकर बोलीं–''मैंने कुछ भी नहीं दिखाया । वे लोग कहते हैं कि उन लोगों ने ऐसा देखा है ।''

स्पर्श के द्वारा रोग अच्छा करने के प्रश्न पर माँ ने इसी प्रकार का जवाब दिया था । उन्होंने कहा था–'यह सब कुछ भी मेरी इच्छा से नहीं होता ।' सब कुछ भगवान की इच्छा से होता है । ऐसा भी देखा गया है कि रोगी जब मेरे पास आया और मेरे हाथ ने अपने आप उसे स्पर्श किया, बस उसका रोग दूर हो जाता है । दूसरी ओर कुछ रोगी ऐसे भी आये जिनके शरीर पर हाथ फेरने की इच्छा नहीं होती । शाहबाग में रहते समय एक बार एक रोगी को मेरे पास लाया गया और उसे स्वस्थ करने के लिए मुझसे अनुरोध किया गया । मैंने कहा–'मेरे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिसके माध्यम से रोग दूर कर सकूँ । तुम लोग डाक्टर कविराज के पास जाओ ।' लेकिन भोलानाथ

बार-बार कहने लगे-'इसे तुम स्वस्थ कर दो ।' 'वर्ना मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं ।' इतना कहने के बाद उन्होंने शाहबाग में रोगी के ठहरने की व्यवस्था की । उस समय मैं कुछ नहीं बोली । तीसरे पहर कीर्तन प्रारम्भ हुआ । मैं भावावेश में आकर बोल उठी-'रोगी को जाकर कह दो कि वह कीर्तन में आकर लोटपोट करे ।' रोगी कीर्तन स्थल पर आया, पर काफी कोशिश करने पर भी वह लोटपोट नहीं लगा सका। जबकि इतना कमजोर नहीं था कि वह इतना न कर सकता हो। आश्चर्य की बात यह हुई कि उसके साथियों में से कोई भी उसे जमीन पर जबर्दस्ती लिटा नहीं सका। बाद में सुना कि वह रोगी घर पहुँचने के पहले ही मार्ग में मर गया। इसीलिए कहती हूँ कि बिना ईश्वर की इच्छा के कुछ होता नहीं ।'

उस दिन शायद शिव चतुर्दशी थी । मैं आश्रम में सबेरे के समय पहुँच गया था । देखा कि वहाँ कुछ भक्त लोग आकर नाम कीर्तन कर रहे हैं । कुछ देर कीर्तन होने के बाद माँ के साथ बातें होने लगीं ।

मैंने माँ से पूछा-'माँ, लोगों का मुँह देखकर उसका स्वभाव और उसके मन का भाव बता सकती हो या नहीं ?'

माँ ने हँसकर जवाब दिया-"मैं यह सब नहीं बता पाती ।"

यह जवाब मेरे मन के लायक नहीं था । मैंने पुनः प्रश्न किया-"माँ, मैंने सुना है कि योगी लोग मुँह देखकर, यहाँ तक कि व्यक्ति द्वारा प्रयोग किये सामानों को देख या स्पर्श कर, उसका चेहरा, स्वभाव और वह कहाँ है, किस स्थिति में है, सब कुछ बता देते थे ।"

माँ ने कहा-यह मैं भी कह सकती हूँ, पर यह समझो कि अगर इतने व्यक्तियों के सामने तुम्हारे स्वभाव के बारे में कहना प्रारम्भ करूँ तो शर्म से तुम गड़ जाओगे ।

मैंने हँसते हुए कहा–"मैं तो तुम्हें मेरे स्वभाव के बारे में बताने को नहीं कह रहा हूँ । तुम यह सब बता सकती हो या नहीं, यह जानना चाहता हूँ । लेकिन तुमने पहले अस्वीकार क्यों किया ?" माँ मुस्कराने लगीं । मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला ।

इसी दिन एक उल्लेखनीय घटना हुई जिसमें माँ की अलौकिक शक्ति प्रकट हुई । उस समय दिन के ११ या ११–३० बजे होंगे। बड़ी कड़ी धूप थी । ठीक उसी समय कुछ महिलाएँ आश्रम में आयीं। शिव चतुर्दशी होने के कारण वे सब प्रत्येक मन्दिर के विग्रहों का दर्शन कर रही थीं। सभी देवताओं का दर्शन करने के पश्चात् वे लोग माँ के पास आयीं। लगभग १५–२० महिलाएँ थीं ।

अचानक एक महिला की ओर देखती हुई माँ हँसती हुई बोल उठीं–"तुम्हारे कान की बाली बहुत सुन्दर है । आजकल ऐसी बाली लोग पहनते हैं ?" माँ बार–बार इसी बात को दुहराती रहीं । माँ ने जिस महिला को लक्ष्य करके यह बात कही, मैंने अबतक उसकी ओर देखा तक नहीं और न देखने की इच्छा हुई थी । मैं सिर्फ माँ के हास्योज्ज्वल मुख की ओर देखता रहा और उनकी कौतुक भरी दृष्टि पर मेरी नजर थी । माँ के हावभाव देखने पर ऐसा लगता था जैसे वे एक अबोध बालिका हैं । अत्यन्त मामूली बात पर आनन्दित हैं ।

ठीक इसी समय माँ उक्त महिला को लक्ष्य करती हुई बोलीं– "तुम्हारी दोनों आँखें बहुत सुन्दर हैं । तुम्हारी बाली की सुन्दरता देखकर ही आँखें देख सकीं ।"

यह बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । तब मैंने उक्त महिला की ओर देखा । देखते ही मुझे अपार विस्मय हुआ । उक्त महिला की उम्र ३०–३५ के लगभग थी । शरीर का रंग घोर कृष्णावर्ण था। चेहरा बहुत ही खराब । दोनों आँखें लाल और अस्वाभाविक रूप से बड़ी थीं। विभीषिका दर्शन करने पर जिस तरह लोग भयातुर दृष्टि

से देखते हैं, ठीक उसी तरह की थीं । वह महिला माँ की ओर देखते-देखते गों-गों आवाज करती हुई गिर पड़ी ।

यह देखकर मैं डर गया । इस वक्त क्या करना चाहिए, नहीं समझ पा रहा था । सभी के चेहरों पर उद्वेग दिखाई देने लगे । जब माँ की ओर देखा तो उन्हें हँसते-हँसते लोटपोट होते देखा । यह दृश्य देखकर मैं हत्बुद्धि सा हो गया । इस परिस्थिति में माँ क्यों हँस रही हैं, समझ नहीं पाया । मुझे लगा कि इस महिला को इस हालत के लिए माँ जिम्मेदार हैं । यह महिला जिस ढंग से माँ की ओर देख रही थी, उससे ऐसा अनुभव हुआ कि उसने माँ के भीतर कुछ ऐसा देखा जिसके कारण बेहोश हो गयी । माँ जब ऐसी स्थिति में हँस रही हैं तब डर की कोई बात नहीं है । माँ ऐसी निष्ठुर नहीं हैं कि इस महिला के प्राण संकट की स्थिति उत्पन्न हो और ऐसी खतरनाक हालत में वे हँसती रहें । इधर उक्त महिला के साथ आयीं अन्य महिलाएँ इस परिस्थिति को देखकर परेशान हो गयीं ।

अचानक माँ हँसना बन्द करके बोलीं-"यह जब बेहोश हो गयी है तब तुम सब इसे आश्रम में रखकर चली जाओ । बाद में स्वस्थ होने पर चली जायगी ।"

माँ की बातें उन लोगों को पसन्द नहीं आयीं । उनके हावभाव से समझा कि इस घटना के लिए वे माँ को जिम्मेदार समझ रही हैं और उनके चेहरे पर विरक्ति की भावना उमड़ चुकी है । उनमें से एक बोलीं-"यह अक्सर बीच-बीच में इस तरह बेहोश हो जाती है।"

माँ ने कहा-"ठीक है । अगर इसे इस तरह की बीमारी है तो इसे आश्रम में छोड़ देने पर तुम लोगों को कोई एतराज है ?"

इसी बीच वह महिला होश में आ गयी और अपने साथ आयी एक महिला के सहारे उठकर धीरे-धीरे आश्रम से बाहर चली गयी। लेकिन जबतक वह बाहर नहीं चली गयी तबतक वह माँ की ओर

एकटक देखती रही । जब वह चली गयी तब उपस्थित भक्तों में से प्रमथ बाबू[1] ने पूछा–"माँ, तुमने यह कर्म किया है ?"

माँ ने कहा–"मैंने क्या किया ? मैं तो उसकी आँखों की प्रशंसा करती रही । तुमने सुना नहीं, उसके साथ आयी महिलाएँ कहती रहीं कि अक्सर उसे इस तरह की बीमारी हो जाती है ।"

माँ ने वास्तव में उसे बेहोश किया या उक्त महिला को हिस्टीरिया की बीमारी है, यह समझ में नहीं आया । लेकिन यह गौर करने की बात है कि आनेवाली महिलाओं में केवल इसी महिला का निर्वाचन क्यों किया ? क्या इसमें कोई विशेषत्व भी था ? कान की बाली में भी ऐसी कोई विशेषता नहीं थी जिसकी वजह से यह घटना हुई। इस तरह की बालियाँ देहाती औरतें प्रायः पहनती हैं । इस घटना के कुछ देर पहले माँ से मैंने यह जरूर पूछा था कि आप व्यक्ति की आकृति देखकर उसके स्वभाव को जान लेती हैं या नहीं ? पता नहीं इस घटना के माध्यम से माँ ने अपनी शक्ति का परिचय दिया हो । यद्यपि योग–विभूति आदि जिसे हम आमतौर पर समझते हैं, मैंने उन बातों को माँ में कभी नहीं देखा, यद्यपि एक बात पर हमेशा गौर करता आ रहा हूँ कि अगर मेरे मन में कोई चिन्ता उत्पन्न होती है तो माँ उसे तुरन्त समझ लेती हैं । शायद अन्य भक्तों को भी मेरी तरह यह अभिज्ञता हुई हो ।

आश्रम में भक्तों का दल 'माँ–माँ' नाम कीर्तन करते हैं । मैंने जबसे आश्रम में आना–जाना प्रारम्भ किया है तब से प्रत्येक शनिवार को सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक अविश्रान्त रूप से 'माँ–माँ' कहते हुए एक न एक भक्त नाम करता रहता है । आज भी उसी प्रकार से बराबर नाम होता है । लेकिन अब समय में परिवर्तन हो गया है।

---

१. श्रीयुक्त प्रमथनाथ बसु । आप ढाका के वकील एवं माँ के पुराने भक्त हैं ।

अब सूर्यास्त से सूर्योदय काल तक होता है । 'माँ' किसी देवी का नाम है या इसके पूर्व 'माँ' नाम से मैंने कहीं कोई कीर्तन नहीं सुना था । फलतः जब भक्तगण अविकल गति 'माँ–माँ' चिल्लाते तब मुझे हँसी आती थी, क्योंकि मुझे ऐसा लगता जैसे वे सब बिल्ली की 'म्याऊं–म्याऊं' कह रहे हैं । लेकिन अपने मन की बात मैंने कभी किसी के सामने प्रकट नहीं की । सच तो यह है कि यह प्रकट करने की बात भी नहीं है । एक प्रकार से यह रुचि का परिचय होता ।

एक दिन प्रातःकाल मैं आश्रम में गया तो देखा – एक भक्त 'माँ–माँ' कीर्तन कर रहा है । माँ के निकट कोई नहीं है । माँ के पास बैठकर मैं कीर्तन सुनने लगा । अचानक माँ कह उठीं–"देखो, तुम्हारे नाम के साथ इनका (अर्थात् आश्रमवासी भक्त) नाम नहीं मिलता, इसलिए अश्रद्धा मत करना । सभी भगवान् के नाम हैं । किसी भी नाम से पुकारने पर उन्हें पुकारा जाता है ।" मैंने गौर किया कि माँ ने मेरी गलती को समझाया । इससे मैं लज्जित हो उठा । आगे माँ ने कुछ नहीं कहा ।

एक बार मेरी पत्नी ने माँ को तसर की साड़ी देकर प्रणाम किया । उसकी इच्छा थी कि माँ कम से कम एक दिन पहन लें । लेकिन माँ ने उसे स्पर्श तक नहीं किया । खुकुनी दीदी ने उस साड़ी को उठाकर रख दिया । उसके बदले माँ द्वारा व्यवहृत एक नयी धोती दी । हमारे द्वारा दी गयी साड़ी को माँ ने स्पर्श तक नहीं किया, यह देखकर हमें कम दुःख नहीं हुआ, पर हम कर क्या सकते थे । इस घटना के २–३ माह बाद माँ का जन्मोत्सव प्रारम्भ हुआ । उस समय सभी लोग माँ को साड़ी देने लगे । इन्हीं दिनों ढाका के वकील स्व. विभूति चरण गुह ठाकुरता की पत्नी ने माँ को एक लाल रंग

की साड़ी दी । लेकिन अन्य लोगों की तरह भेंट देकर संतुष्ट नहीं हुई । माँ को पहनायी भी । माँ स्वयं ही देखने में देवी की तरह हैं तिसपर रक्ताम्बरा होने के कारण साक्षात् भगवती तरह दिखाई देने लगीं । माँ जिस वक्त लाल साड़ी पहने बैठी थीं, वहाँ से कुछ दूरी पर मेरी पत्नी भी बैठी थीं । रक्तवसना माँ को देखकर वह मन–ही–मन कह रही थी कि जिसने माँ को यह साड़ी दी है, वह धन्य है । माँ ने मेरी साड़ी को छुआ तक नहीं । ज्योंही यह चिन्ता उसके मन में उत्पन्न हुई त्योंही माँ ने उसकी ओर देखते हुए कहा–"तुम्हारी दी साड़ी मैं पहन चुकी हूँ । उसके बाद जिसके भाग्य में थी, उसे दे चुकी हूँ ।" यह बात सुनकर मेरी पत्नी शर्म से गड़ गयी ।

सन् १९३२ को माँ के जन्मोत्सव के समय खूब धूमधाम के साथ अन्नपूर्णा पूजा हुई । एक सौ आठ प्रकार के व्यञ्जनों का भोग लगाया गया । इस भोग के उपलक्ष्य में दो–चार भक्तों को कुछ भोग सामग्री देने का आदेश हुआ था । यह आदेश माँ की इच्छानुसार बाबा भोलानाथ के मार्फत हुआ था । जिन लोगों को यह आदेश दिया गया था, उनसे छिपाने को कहा गया था । बात छिपी नहीं रहती। अन्नपूर्णा पूजा के बाद ही मैंने दो–चार लोगों की जबानी सुन लिया। अन्य लोगों की बात तो मैं नहीं जानता, पर जिन दो व्यक्तियों को यह आदेश दिया गया था, वे दोनों सरल प्रकृति, सच्चरित्र और धर्मप्राण थे। मन–ही–मन समझ गया कि माँ ने उपयुक्त व्यक्तिओं को आदेश दिया था । इसके साथ ही मैं अपने को धिक्कारने लगा । मुझे लगा जैसे मैं अशुद्ध चरित्र और भक्तिहीन हूँ । शायद इसीलिए माँ ने मुझे आदेश नहीं दिया । लेकिन अपने मन की यह बात मैंने प्रकट नहीं की । उत्सव समाप्ति के बाद मैंने कलकत्ता जाने का निश्चय किया और माँ को प्रणाम करने के लिए आश्रम गया ।

माँ ने मेरी पत्नी से कहा–'पिताजी से कहना कि कलकत्ता से अच्छे किस्म का चन्दन लाकर मंदिर में पूजा के लिए दे ।'

अपनी पत्नी की जबानी यह बात सुनकर मुझे समझते देर नहीं लगी कि इस आदेश का क्या अर्थ है । देवी–पूजा के समय मैं कुछ नहीं दे सका था । इसका कष्ट मुझे था, यह आदेश देकर माँ ने मेरे मन की मुराद पूरी कर दी । मैं मन–ही–मन माँ को शत बार प्रणाम करते हुए गाड़ी पर बैठ गया । दो महीने बाद जब मैं वापस आया तो देखा कि आश्रम में चन्दन का अभाव नहीं हुआ था ।

एक दिन सबेरे सिद्धेश्वरी आश्रम की ओर रवाना हुआ । इच्छा थी कि माँ का दर्शन करूँगा और उनके निकट बैठकर कुछ देर भगवान का नाम करूँगा । रास्ते में गणेश बाबू से मुलाकात हुई । वे भी सिद्धेश्वरी आश्रम जा रहे थे । उन्हें देखते ही मैंने सोचा कि जिस उद्देश्य को लेकर माँ के पास जा रहा हूँ, वह शायद सफल नहीं होगा, क्योंकि मैं जब अकेला रहता हूँ तब माँ कोई बात नहीं कहतीं ! बिना प्रश्न किये माँ कोई जवाब नहीं देतीं । लेकिन गणेश बाबू[1] चुप रहनेवाले आदमी नहीं हैं । वे प्रश्न के बाद प्रश्न कर माँ को परेशान कर डालते हैं । बहरहाल, हम लोग सिद्धेश्वरी आश्रम में आ गये । माँ को प्रणाम करने के बाद ज्योंही हम लोग बैठे त्योंही माँ बोल उठीं–'पिताजी, तुम लोग बैठो, मैं जरा सो लूँ ।'

इतना कहकर माँ सो गयीं । खुकुनी दीदी सिरहाने बैठकर पंखा डुलाने लगीं । कमरे में हम चार थे, पर सभी चुपचाप । शशांक बाबू ध्यान मग्न । माँ निद्रा लाने का प्रयत्न कर रही थीं, खुकुनी दीदी पंखा डुलाती हुई झूमने लगीं । कमरे की नीरवता को भंग करने का साहस हम दोनों में से किसी को नहीं हुआ । मन–ही–मन नाम जपने लगा ।

---

१. श्रीयुक्त गणेशचन्द्र सेन, बी. ए. बी. टी. । आप ढाका स्थित नवकुमार स्कूल में अध्यापक हैं ।

इस प्रकार दो घण्टे बीत गये । समय अधिक हो गया । मैं घर जाने के लिए व्याकुल हो उठा । इधर माँ हमें बैठने को कहकर स्वयं सो गयी हैं । उन्हें बिना बताये कैसे चल दूँ । इसी तरह ऊहापोह कर ही रहा था कि माँ तुरंत उठकर बैठ गयीं और बोलीं–'पिताजी, समय काफी हो गया है, घर नहीं जाओगे ?'

हम लोग फिर बिना कोई प्रश्न किये, माँ को प्रणाम करने के बाद चल पड़े । मार्ग में मन–ही–मन कह उठा–'मेरी माँ अन्तर्यामिनी है । मुँह से कुछ कहना नहीं पड़ता । मन–ही–मन प्रार्थना करने पर वे सब कुछ समझ लेती हैं ।' इस तरह की अनेक घटनाओं को मैंने अनुभव किया है जिससे यह ज्ञान हो जाता है कि वे गुह्यातिगुह्य चिन्ता को स्पष्ट रूप से समझ लेती हैं ।

यह पहले बता चुका हूँ कि कालेज का कार्य समाप्त करने के बाद मैं सवेरे अकेला माँ के पास जाता था । बाद में तीसरे पहर सपरिवार जाता था । माँ से बातचीत सबेरे ही हो पाती थी । यह ठीक है कि नित्य बातचीत नहीं होती थी । पहले मैं माँ से तरह–तरह के सवालों को पूछता जिनका कोई आधार नहीं होता था । बाद में सवाल पूछने की इच्छा समाप्त हो गयी । कभी–कभी कुछ देर तक बैठे रहने के बाद चला आता था ।

एक दिन सवेरे जाकर देखा कि माँ अपनी कुटिया के उत्तर की ओर बरामदे में अकेली बैठी हैं । प्रणाम करने के बाद मैं खड़ा हो गया। माँ बिना कुछ बोले चुपचाप बैठी रहीं । इस प्रकार एक घण्टा समय गुजर गया । बाद में माँ ने स्वतः प्रश्न किया–"पिताजी, आम के पेड़ से मधु गिर रहा है, देख रहे हो ।"

मैंने कहा–"हाँ माँ, देख रहा हूँ । लेकिन वह क्यों गिरता है?"

माँ ने साधारण भाव से उत्तर दिया–"आम के वृक्ष में मुकुल होता है । इन्हीं मुकुलों में मधु रहता है । शायद उसी से झरता है।" मैंने स्व. विजय कृष्ण गोस्वामी महाशय के गेण्डारिया आश्रम के एक आम वृक्ष के बारे में बताया कि उसमें से मधु गिरता था । गोस्वामीजी ने कहा था कि अगर किसी वृक्ष के नीचे कोई साधु दीर्घकाल तक साधन–भजन करता रहे तो उनके प्रभाव से वृक्ष भी सात्त्विक प्रभाव सम्पन्न हो जाता है । सात्त्विक प्रभाव सम्पन्न वृक्षों से ही मधु वर्षण होता है ।

माँ ने कहा–"यह असम्भव नहीं है । वृक्षों के भी प्राण होते हैं । मनुष्य का चरित्र अगर सत्संग के कारण उन्नत होता है तो वृक्षों का क्यों नहीं होगा ?" इसके बाद माँ ने अपनी कुटिया के उत्तर एक वृक्ष की ओर इशारा करते हुए बताया कि उस वृक्ष से एक बार टप–टप कर मधु गिरता रहा । पेड़ के नीचे थाली रखकर हमने संग्रह किया था ।"

मैंने माँ से पूछा–"माँ, गोस्वामी महाशय ने कहा है कि आधी रात ही साधन–भजन का वास्तविक समय है, क्योंकि इसी समय महापुरुष गण गमनागमन करते हैं । अगर इस वक्त कोई भक्त जप–तप करता है तो उसकी सहायता करते हैं ।"

माँ ने इसे अस्वीकार नहीं किया, पर इनके बदले जो कुछ कहा उसका भाव यों है–"प्रत्येक समय का एक विशेष भाव है और ये भाव पात्र भेद के अनुसार कार्य करते हैं । जैसे सवेरे एक भाव तो शाम को एक दूसरा भाव । शाम के वक्त आमतौर पर मन शून्य रहता है और काफी स्थिर हो जाता है । फलतः इस समय नाम जप करने का विधान है । इसी प्रकार मध्य रात्रि का एक विशेष भाव है जो साधन–भजन के लिए अनुकूल होता है । इसके अलावा इन भावों के आविर्भावों को अनुभव किया जा सकता है । विशेष गन्ध

या नाम में विशेष आनन्द की उपलब्धि से महापुरुषों का सान्निध्य या उनकी साधु प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है । अक्सर ऐसा होता है कि साधक जब अपने बच्चों को लेकर सोता रहता है तब महापुरुषों के आविर्भाव से बच्चे अचानक चौंक उठते हैं । पर साधकों के लिए डरने की कोई बात नहीं है, कारण साधक के मन की स्थिति अगर भयभीत होने लायक रहती है तो महापुरुष दर्शन नहीं देते । जगत का विधान इतना सुन्दर है कि भगवान का कृपाभांड सर्वदा उन्मुक्त रहता है । पात्रानुसार वह कृपा संचारित होती है । जिसका जितना अधिकार है, उतना ही वह ग्रहण करता है ।''

माँ से मैंने पुनः प्रश्न किया–'माँ, मेरे गुरुदेव समय–समय पर उपदेश दिया करते थे कि माला फेरना भी एक तरह का बन्धन है। साधन राज्य में किसी प्रकार के बन्धन में नहीं फँसना चाहिए । माला फेरना भी बन्धन है, इसका क्या अर्थ है, समझ नहीं सका ।''

माँ ने कहा–''यह उपदेश सभी के लिये नहीं है । अधिकार भेद के अनुसार भिन्न होता है । अगर माला जप प्रारम्भ किया गया तो माले को भी उपवास नहीं कराना चाहिए । अर्थात् नित्य माला–जप करना चाहिए । इस अर्थ के अनुसार माला भी एक प्रकार बन्धन है।''

आगे माँ ने कहा– ''आज जिस स्थान पर खड़े होकर तुमने माला के बारे में प्रश्न किया, कल तीसरे पहर ठीक इसी जगह पर खड़े होकर एक और व्यक्ति ने माला के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। इससे लगता है कि इस स्थान का कोई महत्त्व है ।'' इतना कहने के बाद मां हँसने लगीं । इसके बाद माला के बारे में एक कहानी सुनाने लगीं ।

माँ ने कहा–''एक बार मैं नवद्वीप गयी थी । वहाँ यतीश बाबू तुलसी की एक माला शोधन करने के लिए बार–बार अनुरोध करने लगे । मैंने उनसे कहा कि मैं यह सब कुछ नहीं जानती । इस पर उसने

कहा कि ठीक है । अगर आप शोधन नहीं करना चाहती तो एक बार स्पर्श कर दें । मैंने माला हाथ में ले ली । माला हाथ में लेते ही मुझे लगा कि यह माला तुलसी की नहीं है । लेकिन मैंने अपने मन के भावों को प्रकट नहीं किया । इसके बाद हम लोग पुरी चले गये । वहाँ भोलानाथ बाजार से चन्दन की एक माला खरीद लाये और कहा कि मैं इसका स्पर्श कर लूँ । ज्योंही उस माले को हाथ में ली तभी पूर्व सन्देह मन में उत्पन्न हुआ जब कि माला से चन्दन की सुगन्ध निकल रही थी । अपने सन्देह को दूर करने के लिये माला के तागे को तोड़कर उसके प्रत्येक दाने को देखा तो ज्ञात हुआ कि वह लकड़ी की माला है । ऊपर से चन्दन पोत दिया गया है । इसके बाद काशी से विंध्याचल गयी । यहाँ ढाका स्थित दोलईगंज आश्रम के त्रिपुरलिंग बाबाजी के एक शिष्य ने शुद्ध तुलसी की एक माला देते हुए बताया कि उसने स्वयं एक सूखे हुए तुलसी की माला बनाई, पर उसे आवश्यकता नहीं थी, इसलिये उसने मुझे दे दी । तब मैंने वह माला यतीश को दी । वह अपनी माला के बारे जान गया था कि वह असली तुलसी की माला नहीं है । अपने सहज विश्वास के आधार पर वह उस माला को तुलसी की माला समझते हुए जप करता रहेगा, शायद इसीलिए भगवान ने उसे असली तुलसी की माला दिलायी ।''

मैंने कहा–''अब ज्ञात हुआ कि आपसे स्पर्श करा लेने से असली वस्तु प्राप्त हो जाती है ।''

मां ने हँसते हुए जवाब दिया–''यह सब सरल विश्वास का पुरस्कार है । दीक्षा के बारे में भी यही बात होती है । जब किसी नयी सामग्री के लिये जिद्द करते हैं तब माँ अन्य कोई चीज उसे देकर झूठी बातों से सांत्वना देती है । बच्चा जो चाहता था, उसे पा लिया सोचकर प्रसन्न होता है । लेकिन माँ इससे प्रसन्न नहीं होती । बाद में जब असली चीज मिल जाती है तब उसे देकर वे निश्चिन्त होती

हैं । इसी प्रकार लोग जब सरल विश्वास के साथ कोई भी मंत्र जप करते है तब भगवान् स्वयं ही उसे सही मंत्र देने का प्रबन्ध कर देते हैं । यही है सरल विश्वास का पुरस्कार ।''

एक दिन माँ से मैंने कहा–माँ, हम लोग ठहरे गृहस्थ । अगर हम लोग भगवान्–भगवान् करते हुए सांसारिक कार्यों को छोड़ दें तब हमारी गृहस्थी कैसे चलेगी ? कौन नौकरी करेगा ? कौन बच्चों का पालन–पोषण करेगा ?

माँ ने कहा–सब वे करते हैं । देखो, जिन दिनों मैं बाजितपुर थी तभी से मेरी स्थिति ऐसी हो गयी कि मैं स्वयं अपने हाथ से कोई काम नहीं कर पाती थी जब कि घर में अन्य कोई व्यक्ति नहीं था। बारह वर्ष की एक नौकरानी थी जो घर का सारा कार्य करती थी। मेरे यहाँ के अलावा अन्यत्र भी वह काम करती थी ! मेरे यहाँ आकर काम करती है, कहीं यह बात लोग जान जाँय; इस डर से वह भोर में आकर काम कर देती थी । दिन को अन्य लोगों के यहाँ करती थी। उसे अधिक कार्य करने के लिए नहीं कहा जाता था । अपने मन से जितना करना होता, उतना कर देती थी । बरतन इस तरह माँजती थी कि चमचम चमकता रहता । एक दिन उसने बरतनों को मांज कर रखा तब मुझे ऐसा लगा जैसे ठीक से साफ नहीं हुए हैं। मुझे ख्याल हुआ कि इन बरतनों को पुनः साफ करूँ । मैं उन बरतनों को माँजने लगी । अन्य मनस्क भाव से मांजते–मांजते सभी बरतन खूब साफ हो गये । यह देखकर उसने सोचा कि वह जिस ढंग से साफ करती है, शायद इन्हें पसन्द नहीं है । इसके बाद से वह खूब अच्छी तरह से मांजने लगी । बाद में उसका विवाह हो गया और वह ससुराल चली गयी। भगवान की लीला देखो, उधर वह गयी और इधर कई दिनों बाद हम लोग ढाका चले आये । कहने का मतलब भगवान का नाम लेते रहने पर वे कोई–न–कोई सूरत निकालकर काम चला देते हैं ।''

मैंने कहा–"मां, तुम्हारी बात अलग है । हम लोगों के बारे में ऐसा नहीं भी हो सकता ।"

माँ ने कहा–"भगवान के नाम में मग्न रहने की अवस्था आने पर गृहस्थी की बातें याद नहीं आतीं । तुम लोगों को यह मालूम ही है कि जिन दिनों चैतन्य ने गृह त्याग किया था, उन दिनों उनकी माँ और पत्नी जीवित थी । क्या चैतन्य ने इस बारे में सोचा था ? तुम नाम करते जाओ, देखोगे कि तुम्हारा सारा कार्य अपने आप होता जा रहा है । भगवान की परीक्षा लेने के लिए कुछ छोड़ मत देना, वर्ना कुछ नहीं होगा । उन्हें सब दे देना । वे तुम्हारी जिम्मेदारी स्वयं उठायेंगे।"

माँ की साधना के बारे में कभी कोई प्रश्न नहीं किया था । स्वयं उन्होंने अपने बारे में जो कुछ कहा था, उससे ऐसा लगा जैसे उनकी सारी स्थिति अपने आप होती गयी है । जैसे कोई अदृश्य महाशक्ति अपने हाथ से इनका निर्माण करती आयी है । कभी मां मौन रहती थी, पर स्वेच्छा से नहीं । मां कहती–'मेरा वाक्रोध हो गया था, इसलिए बातचीत नहीं कर पाती थी । लेकिन जिसे जैसा इङ्गित करती, वह उसे समझ लेता था । यहाँ तक कि अगले दिन क्या–क्या करना है, यह भी इशारे से बता देती थी ।

नाम के सम्बन्ध में माँ बराबर जोर देती रहती है । उस नाम के बारे में भी माँ ने बताया था–"नाम मुझसे अपने आप हो जाया करता था । उसे करने के लिए मुझे कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता था । भीतर ही सर्वदा नाम चला रहता था । अगर कभी किसी से काम की बातचीत करनी पड़ती तो ज्यों ही बात समाप्त हो जाती त्यों ही तुरत नाम चलता रहता था ।"

मां ने अपने आपको सम्पूर्ण रूप से भगवान की इच्छा पर रख छोड़ा है । कर्तृत्वबोध तो उनमें नहीं है । अपने आपको भगवान के हाथ का यन्त्र मात्र समझती हैं । अक्सर वे कहा करती हैं–'भगवान इस शरीर

को लेकर न जाने कितना खेल खेल चुके हैं ।' कभी किसी प्रश्न का उत्तर देती हुई कहती–'''उत्तर मैं नहीं देती हूँ । मेरे मुँह से सिर्फ निकल जाता है । यह प्रश्न भी तुम्हारा है और उत्तर भी तुम्हारा है ।'

माँ से एक दिन मैंने कहा–था–''माँ, शास्त्रों में लिखा है कि वासना से ही लोगों का जन्म होता है । तुम अक्सर कहा करती हो कि बचपन से ही तुममें कोई कामना–वासना नहीं है । ऐसी हालत में तुमने जन्म ग्रहण क्यों किया और इतने मंदिर–आश्रम का निर्माण क्यों कराया ?''

माँ हँसकर बोली–''इतने दिनों के बाद आज तुमने प्रश्न की तरह प्रश्न किया है ।'' लेकिन मां ने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ ने कहा–''तुम लोगों की जिस तरह दीक्षा होती है, उस तरह मेरी दीक्षा नहीं हुई थी । मुझे केवल आभास मात्र मिला था ।'' कैसा आभास और किस तरह मिला था, इस बारे में कोई प्रश्न मैंने नहीं पूछा था । इस गुह्यातिगुह्य विषय पर कौतूहल प्रकट करना, देवालय में अनधिकार प्रवेश करने की तरह अशोभन सा अनुभव हुआ था ।

माँ जन साधारण को जो उपदेश देती हैं, उसका मुख्य तत्त्व यों हैं–''नाम किये जाओ । देखोगे कि सभी बातें अपने आप स्पष्ट होती जा रही हैं । मेरे साथ ऐसी बात हुई है, इसलिए दृढ़ता पूर्वक कह रही हूँ । आसन, मुद्रा, प्राणायाम सब कुछ नाम से होता है । क्या तुम लोगों ने इस पर गौर नहीं किया है कि जब किसी गम्भीर विषय पर चिन्तन करने लगते हो तब तुम लोगों की अजानकारी में सांस रुक जाती है । बाद में जब गहरी सांस लेते हो तब ज्ञात होता है कि सांस रुक गयी थी । चिन्तन के साथ श्वास–प्रश्वास का गहरा सम्बन्ध है । नाम करते–करते एक ऐसा अवसर आता है जब प्राणायाम अपने आप हो जाता है । उसके लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता।''

किसी विशेष नाम पर मां जोर नहीं देती । उनका कहना है–''जिसे जो नाम अच्छा लगे, उसी का जप करने पर अभीष्ट सिद्ध हो जाता है ।'' इस ''अच्छा लगे'' शब्द के प्रति मां के कुछ इशारे है कोई स्पष्ट उक्ति नहीं है । अक्सर मां कहा करती हैं–पूर्व सम्बन्ध न रहने पर एक दूसरे के पास नहीं जाता । जिसके साथ जिसका जितना सम्बन्ध है, उसका साथ करने के लिए उसे लोग खोजते रहते हैं । यही वजह है कि जब कोई आश्रम में आता है तब उसे बैठने या चले जाने के लिए नहीं कहती, क्योंकि मैं जानती हूँ कि पूर्व जन्म में इस आश्रम के साथ जिनका सम्बन्ध था, सिर्फ वे ही लोग यहाँ आयेंगे । जिनका सम्बन्ध गहरा होगा, वे अधिक आयेंगे । कोई एक बार आने के बाद फिर नहीं आयेगा या कुछ दिन आने–जाने के बाद चला जायेगा । दूसरी ओर कोई एक बार आने के बाद फिर वापस जाना नहीं चाहेगा । इन लोगों का आना–जाना पूर्व जन्म के सम्बन्ध के कारण होता है । मैं कहूँगी तो आयेंगे और मेरे कहने पर चले जायेंगे, ऐसा नहीं होता ।''

माँ आश्रम यात्रिकों के सम्बन्ध में जो बातें बताती हैं, वे सब शायद नामों के बारे में भी प्रयोजन हैं । जिन नामों की साधना लोग कई जन्मों से करते आ रहे हैं, उन्हीं नामों के प्रति अनुराग रहना सम्भव है । शायद इसलिए मां 'अच्छा लगे, के बारे में जोर देती है। किसी विशेष नाम का उल्लेख नहीं करती । दीक्षा या गुरुतत्त्व के बारे में मां स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहतीं । इस बारे में प्रश्न करने पर भी स्पष्ट उत्तर नहीं पा सका । माँ सर्वदा नाम जपने का उपदेश देती है ।

वे कहती है–''कुछ भी बेकार नहीं जाता । सभी चीजों की आवश्यकता होती है । मान लो, रेल से कहीं तुम जानेवाले हो । गाड़ी पर सवार होने के लिए तुम नाव द्वारा ढाका आये । नाव से उतरकर स्टेशन तक जाने के लिए लाठी के सहारे घोड़ागाड़ी पर सवार

हुए। तुम्हारा उद्देश्य है–रेलगाड़ी पर सवार होना, पर नाव, लाठी, घोड़ागाड़ी आदि को तुम बेकार नहीं समझ सकते । ठीक इसी तरह भगवान की प्राप्ति के लिए जो कुछ तुम कर रहे हो, इसे याद रखना कि उनमें से प्रत्येक की आवश्यकता है । कुछ भी बेकार नहीं है । किसी भी नाम से भगवान को बुलाओ, कार्य सिद्ध होगा । जरूरत है सिर्फ हमेशा नाम करने की ।''

एक दिन माँ से पूछा–''माँ, नाम करते समय मन एक मुहूर्त के लिए स्थिर नहीं रहता । इस प्रकार के अस्थिर मन से नाम करने पर क्या फल प्राप्त होगा ?''

माँ ने कहा–''ठीक कह रहे हो । गुरु ही सब करते हैं । तुम उनके भरोसे रहो । देखना, सब ठीक हो जायेगा । पर तुम भरोसा कर कहाँ पा रहे हो ?''

भगवान के निकट सम्पूर्ण रूप से आत्म समर्पण करने की बात माँ अक्सर कहती रहती हैं । एक दिन उन्होंने कहा – ''साधु भाव से जीवनयापन करने पर मुक्ति मिल जाती है । चोरी या इसी तरह के पापकर्म करने वालों को भी मुक्ति मिल जाती है । दरअसल सत् या असत् नाम का कुछ भी नहीं है । डूब जाना ही असली बात हैं।''

माँ की बातों से यह स्पष्ट हुआ कि हम लोगों के दुःखों का मूल अहंकार है । ज्ञान समाप्त होने तथा अपने कर्तृत्वज्ञान को भूला देने पर ही मुक्ति मिल सकती है ।

मेरे एक मित्र की १०–१२ वर्ष की एक लड़की पानी में डूबकर मर गयी । जिस दिन मुझे यह समाचार मिला, मैं रात भर सो नहीं सका। दूसरे दिन शोकातुर मित्र को साथ लेकर माँ के पास गया। उस समय माँ चहलकदमी कर रही थीं । माँ के निकट जाकर मैंने अपने मित्र का परिचय दिया और दुर्घटना की कहानी सुनायी । यह भी कहा कि इसे सांत्वना देने की कृपा करें ।

माँ ने मेरे मित्र से कहा–"अपने को कर्ता समझने के कारण तुमने इस दुःख को स्वीकार किया है । अगर 'मेरा लड़का–मेरी लड़की' यह भावना नहीं रहती, अगर स्त्री–पुत्र आदि को भगवान् का धन समझते तो कष्ट पाने का कोई कारण नहीं रहता । जिसका धन है, उसे लौटा देने पर हमें दुःख नहीं होता, बल्कि एक जिम्मेदारी से मुक्त हो गया समझकर शान्ति प्राप्त करते हैं । अगर तुम वास्तव में लड़की से स्नेह रखते रहे तो रोने–गाने की जरूरत नहीं है बल्कि भगवान के निकट प्रार्थना करो ताकि उसकी सद्‌गति हो जाय । जब कभी तुम अपनी लड़की के लिए रोने–गाने का प्रयत्न करोगे तब वह तुम्हारे निकट आने का प्रयत्न करेगी । लेकिन वह आ नहीं सकेगी, क्योंकि जिस पर्दे के कारण वह तुमसे अलग हुई है, उसे फाड़ देने की ताकत उसमें नहीं है । इस प्रकार के प्रयत्न उसके लिए कष्टकारक होंगे । अगर तुम अपनी लड़की के लिए रोना–धोना जारी रखोगे तो उसका कष्ट बढ़ता जायगा । इसे स्नेह नहीं कहा जा सकता । इसलिए उसके कल्याण के लिए, शान्ति के लिए भगवान के निकट प्रार्थना करते रहो ।"

इस तरह की अनेक बातें माँ कहती रहीं । मैंने माँ से कहा–माँ लड़की तो निष्पाप रही तब क्यों उसकी अकाल मृत्यु हुई ।"

माँ ने कहा–"पिता–माता के पापों का भोग संतान को भोगना पड़ता है । इसके अलावा प्रायः जन्मपूरण के लिए भी आते हैं । उदाहरण के लिए उमा[१] की बात लो । वह भी तो फूल की तरह निष्पाप लड़की थी । वह फिर अचानक क्यों मर गयी ? इसका उत्तर यह है कि कुछ दिन उसे भोगना था, इसलिए उसे भोग गयी ।"

कभी–कभी माँ साधारण विषयों के सम्बन्ध में नैतिक और आध्यात्मिक उपदेश देती रहती हैं । ऐसे उपदेश अपनी गरिमा के माधुर्य

---

१. उमा श्री युक्त विनय भूषण सेन महाशय की कन्या थी । बहुत ही कम उम्र में उसका देहान्त हो गया । उसकी स्मृति में विनय बाबू ने आश्रम में नाम घर बनवाया है ।

से हृदयग्राही बन जाते हैं । एक दिन आश्रम में बैठा था । इसी समय आश्रम की दो गायों को चरने के लिए रस्सी खोलकर छोड़ दिया गया। दोनों ही उछलती हुई मैदान की ओर दौड़ गयीं । उन दोनों को कूदते-फाँदते देख माँ हंसती हुई बोलीं-"बन्धन से मुक्ति पाने पर जीव को ऐसा ही आनन्द मिलता है ।"

एक दिन आश्रम में माँ के पास प्रमथ बाबू[1], नगेन बाबू, भोलानाथ बाबा और मैं बैठे थे । ठीक इसी समय एक फरवीवाला आश्रम के भीतर आया । फरवी का बोझा देखने में बड़ा होने पर भी वजन में हल्का होता हैं । बोझा हल्का होने के कारण लावावाला प्रसन्न भाव से चारों ओर देख रहा था । उसे इस तरह देखते देख माँ हंसकर बोलीं- "लावावाला जिस प्रकार अपने बोझ को ढो रहा है, संसार का बोझा इसी तहर तुम लोगों को ढोना चाहिए । देखो, उसके सिर इतना बड़ा बोझा है, पर कितनी हंसी खुशी भाव से देख रहा है । तुम लोगों को भी इसी तरह आनन्द करते हुए संसार का बोझ उठाना चाहिए ।"

"इस फरवीवाले के साथ एक घटना हो गयी जिसका उल्लेख कर रहा हूँ । फरवीवाला को देखकर माँ प्रमथ बाबू से बोलीं-'पिताजी, मुझे लाई खिलाओ ।'

प्रथम बाबू ने कहा-"ठीक है, इसमें सोचना क्या ? तुम जितनी लाई खा सकती हो खा लो ।"

माँ ने कहा-"इसकी सारी फरवी खरीद लो ।"

फरवीवाला दो या अढ़ाई रुपये में सारा माल बेचने को राज़ी हुआ। प्रथम बाबू रुमाल से रुपये निकालकर देने लगे तो माँ बोलीं-"पूरी कीमत तुम्हें देने की जरूरत नहीं । आधी तुम दो और आधी नगेन दे ।"

---

१. श्रीयुक्त नगेन्द्रचन्द्र राय । आप एक कंट्राक्टर है ।

प्रमथ और नगेन के अलावा तीसरा व्यक्ति मैं था । माँ ने मेरा नाम नहीं लिया देखकर मैंने सन्तोष की सांस ली, क्योंकि उस समय मेरे पास एक भी पैसा नहीं था । अगर मुझे भी फरवी की कीमत देने में हिस्सा बँटाना पड़ता तो शर्म से गड़ जाता । एक कहावत है– 'जहाँ बाघ का डर रहता है, वहीं रात आ जाती है ।'

"नगेन बाबू ने माँ से कहा–"माँ, तुमने हम दोनों की कीमत देने के लिए कहा, पर अमूल्य बाबू को कुछ नहीं कहा ।"

माँ ने कहा–"ठीक है । तुम तीनों ही मिलकर कीमत चुका दो। मुझे आपत्ति नहीं है ।" फिर मेरी ओर देखती हुई मां नगेन बाबू से बोलीं–"तुमने अमूल्य बाबू को कीमत देने को कहा । जरा उससे पूछो कि उसके पास पैसे हैं ?"

भोलानाथ बाबा अब तक चुपचाप बैठे थे । शायद उन्हें यह विश्वास था कि मैं यहाँ खाली हाथ नहीं आया हूँ । उन्होंने माँ के अनुमान को गलत साबित करके आनन्द लेने के लिए मुझसे पूछा– "क्या आपके पास पैसे नहीं हैं ?"

मैंने कहा–"नहीं ।"

भोलानाथ ने पुनः पूछा–"रुपया है शायद ?"

मैंने कहा–"नहीं, कुछ भी नहीं है ।"

इधर मं हंसती हुई लोटपाट होती जा रही हैं । जब मैंने यह कहा कि मेरे पास कुछ भी नहीं हैं तब सभी हंस पड़े । भोलानाथ बाबा अप्रतिभ हो नीरव रह गये ।

एक दिन सुबह आश्रम जाने पर देखा कि एक सज्जन अपनी पत्नी, विधवा पुत्री के साथ माँ के पास बैठे हैं । माँ पुत्री की ओर देखती रहीं । लड़की की उम्र १५–१६ वर्ष के लगभग है । इस बाल विधवा को देखकर मुझे कष्ट हुआ । उसकी आँखो में ऐसी करुणा थी कि जिसे देखकर हृदय अपने आप रो उठा । पता नहीं, माँ उसे

क्या कह रही थीं और वह किंचित् मुस्करा रही थी । लेकिन वह हंसी इतनी म्लान थी कि आकृति पर स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हो पा रही थी ।

ज्यों ही मैंने जाकर माँ को प्रणाम किया त्योंही माँ ने मेरी ओर देखते हुए कहा–"इस लड़की का वेष देखकर मुझे खूब आनन्द मिल रहा हैं ।"

इस कथन का अर्थ मैं समझ नहीं सका, क्योंकि लड़की अलंकारशून्या, महीन किनारीदार साड़ी पहने, उदास चेहरा बनाये बैठी थी । इसकी शक्ल देखकर आनन्द के विपरीत भाव मन में उत्पन्न होते हैं । माँ की बातों का अर्थ समझ न पाने पर मैंने पूछा–"तुम्हारी बातों का अर्थ समझ नहीं सका ।"

माँ ने कहा–"क्यों, इसका विधवा वेश नहीं देख रहे हो ? भगवान ने इसे संसार के मोह–माया, यंत्रणा–ममता आदि से मुक्ति दिलाकर योगिनी बना दिया है । पति–पुत्र, गृहस्थी को चिंता अब नहीं करनी पड़ेगी । संसार के सभी बंधनो से मुक्त कराकर भगवान् ने इसे संपूर्ण रूप से अपना लिया है । इस योगिनी वेष को देखकर क्या आनन्द नहीं मिलता ?"

इतनी देर बाद माँ की बातों का अर्थ समझ पाने के बाद में नीरव हो गया । मां अक्सर अत्यन्त साधारण उदाहरण द्वारा आध्यात्मिक जगत् के गंभीर रहस्य को समझाने का प्रयत्न करती हैं । एक दिन मैंने माँ से प्रश्न किया–"माँ, ब्राह्मीस्थिति किसे कहते हैं ?"

माँ हंसती हुई बोली–"उससे हमारा क्या वास्ता ?"

माँ ने इस ढंग से अपनी बातें कहीं कि मैं स्वयं भी हँस पड़ा। इसके साथ ही लज्जित हो उठा । साधना के क्षेत्र में अभी तक क–ख–ग भी नहीं सीख सका और इधर एक महत्वपूर्ण सवाल कर बैठा। मैं अपने प्रश्न के कारण लज्जित हो गया हूँ, यह माँ से छिपा नहीं रहा ।

माँ ने मुझसे पूछा–"क्यों पिताजी, अगर कोई एम. ए. पास कर चुकने के बाद छोटे–छोटे बच्चों को पढ़ाने आये तो क्या उसकी विद्या ह्रास हो जायगी या और कुछ सम्भव है ?"

समझते देर नहीं लगी कि माँ ब्राह्मीस्थिति की व्याख्या कर रही हैं। एम. ए. पास करने के बाद छोटे बच्चों को पढ़ाते रहने पर जिस प्रकार उस व्यक्ति की विद्या का ह्रास या वृद्धि नहीं होती । उसका ज्ञान, उसकी वाणी और चिन्तन में रह जाता हैं, उसी प्रकार ब्रह्म में जिसकी एकबार स्थिति हो गयी है, वे गृहस्थी का कोई कार्य करे या न करे, उसका ब्रह्म ज्ञान से स्थान च्युत नहीं होता । माँ का प्रश्न सुनकर कहा–"माँ, ब्राह्मीस्थिति समझ गया ।"

माँ ने संक्षेप में बताया–"भाषा द्वारा जहाँ तक संभव हुआ, समझ सके ।"

अर्थात् ब्राह्मीस्थिति अनुभूति की वस्तु है, भाषा द्वारा उसे समझाया नहीं जा सकता । केवल आभास दिया जा सकता है । भाषा के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभूतियाँ व्यक्त नहीं की जा सकतीं, इसे मां अनेक बार विभिन्न भावों में प्रकट कर चुकी हैं । जिसे हम लोग ब्रह्मानन्द कहते हैं, वह भी वास्तव में आनन्द नहीं हैं ।

मां कहती हैं–"आनन्द के रहने पर उसके पीछे निरानन्द भी रहेगा। ब्रह्मानुभूति आनन्द और निरानन्द के बाहर की स्थिति एक जैसी है । जिस प्रकार भींगा कलश देख पाने पर दूर से ही कलश है, समझ लेते हो, क्योंकि जलपूर्ण कलश ही भींगा दिखाई देता है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञ व्यक्तियों के हावभाव आनन्दमय नहीं है । वह भाव क्या है, यह भाषा के बाहर की बात है ।"

एक दिन माँ से मैंने प्रश्न किया–"मां, जातिस्मर बनने के लिए क्या भिन्न साधना करनी पड़ती है या ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग के जातिस्मर हो जाते हैं ?"

माँ ने पूछा–"जातिस्मर किसे कहते हैं ?"

मैने कहा–"अपने पूर्व जन्मों के बारे में जो ज्ञान रहता है, उन्हें जातिस्मर कहा जाता हैं ।"

माँ ने कहा–"साधन–भजन के द्वारा ही अपने को जानना चाहिए। अपने को विशेष रूप से जानने के लिए कि मैं क्या था, क्या हो गया हूँ और आगे क्या होऊँगा, यह जानना चाहिए । साधन–भजन के माध्यम से लोग इस आत्मज्ञान को प्राप्त करते हैं । इसलिए पूर्वजन्म की स्मृति कहो या जातिस्मर बनना कहो, सब कुछ नाम करते–करते हो जाता है। इसके लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता । नाम करते–करते और भी अनेक आश्चर्यजनक बातों, शक्तियों से परिचय होता है और लाभ उठाया जा सकता है । यह सब साधना के मार्ग में मिलते हैं। जब ये सब शक्तियां सामने आती हैं तब उसे सिर्फ देखते रहना चाहिए। अगर उनसे खेलते रहने पर साधन गन्तव्यस्थल तक नहीं पहुँच पाता। बीच ही में आबद्ध हो जाता है । कुछ देर के लिए सोचो कि तुम इस आश्रम से स्टेशन जाओगे। मार्ग में घर, मकान, कालेज आदि न जाने क्या–क्या देखोगे । अगर उनकी ओर बिना देखे चलते रहोगे तो स्टेशन पहुँच जाओगे । अगर राह चलते तुम्हारी यह इच्छा हुई कि कालेज के भीतर जाकर देखूँ, वह कैसा बना है तब तुम कालेज के भीतर ही आबद्ध रह जाओगे । फिर कब, किस समय स्टेशन पहुँच पाओगे, इसका कोई ठिकाना नहीं ।"

उपदेश प्रदान करते या किसी गूढ़ विषय की व्याख्या करते समय माँ हम लोगों को दैनन्दिन जीवन के उदाहरण प्रस्तुत कर विषय को प्रांजल बनाने का प्रयत्न करती है, फिर ऐसी घटनाएँ हुई हैं जब माँ की बातों को ठीक से हृदयंगम नही कर सका हूँ । एक दिन माँ ने कहा था–"वही देखना तो देखना, जिसे देखा, देखने की इच्छा हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है । वही सुनना ही सुनना जिसे सुना, सुनने की इच्छा बिलकुल गायब हो जाती हैं ।"

यह सुनकर मैंने कहा–"माँ, ऐसा क्यों होगा ? मैंने तो सुना है कि साधक को उत्साहित करने के लिए और उसके आग्रह की वृद्धि के लिए भगवान् बीच–बीच में क्षणिक दर्शन देते हैं । यह जो दर्शन है, क्या इसे प्रकृत दर्शन नहीं कह सकते ?"

माँ ने जवाब दिया–"अभी–अभी मैंने कहा कि जो दर्शन किया, फिर दर्शन करने को कुछ नहीं रहता । यहाँ तक कि दर्शन की इच्छा तक लुप्त हो जाती है, वही यथार्थ दर्शन है ।"

माँ की यह उक्ति पूर्वोक्ति की पुनरावृत्ति मात्र है । इसकी व्याख्या उन्होंने विशेष रूप से नहीं की । मैं अक्सर माँ से अपने गुरुदेव के बारे में कहा करता था । एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ ने कहा–"तुम शिष्य नहीं हो, शिष्य बनने की चेष्टा मात्र कर रहे हो ?"

मैंने कहा–"क्यों माँ ? मैंने तो यथारीति गुरु से मन्त्र ग्रहण किया है, ऐसी हालत में शिष्य बनने में बाकी क्या रह गया ?"

माँ ने शिष्य शब्द के बारे में ऐसी व्याख्या की जिसे मैं ठीक से समझ नहीं सका । एक दिन राम ठाकुर महाशय से बातचीत के सिलसिले में माँ की गूढ़ बातों का अर्थ समझ पाया । राम ठाकुर महाशय से गुरु–शिष्य के बारे में प्रश्न करने पर उन्होंने जो जवाब दिया, उसे पहले पहल समझ नहीं सका । बाद में मैंने पुनः अच्छी तरह से समझने के लिए पूछा–"बाबा, आपने जो कुछ बताया उसे मैं ठीक से समझ नहीं सका । मैं यह जानना चाहता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति आपके निकट नामप्रार्थी होकर आये और आप कृपापूर्वक उसे कोई नाम दें तो ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति के साथ आपका कौनसा रिश्ता जुड़ेगा? वह व्यक्ति आपका शिष्य बना या नहीं ?"

उन्होंने जवाब दिया–"शिष्य कहां बना । गुरु वाक्य का पालन जो व्यक्ति सर्वान्तकरण से करता है, वही शिष्य है । तुम क्या आरुणी की कहानी नहीं जानते ? गुरु ने उसे खेत से बह जानेवाले जल

को रोकने की आज्ञा दी । आरुणी ने जी जान से पानी रोकने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता नहीं मिली । अन्त में जहाँ से पानी प्रवाहित हो रहा था, वहीं वह सो गया । तब गुरु ने आकर उसे उठने का आदेश दिया। आरुणी की तरह अपने को जबतक लिटा नहीं दिया जाता तबतक शिष्य बना नहीं जा सकता ।''

इतने दिनों बाद बात साफ समझ में आयी कि माँ ने किस अर्थ में कहा था–तुम शिष्य नहीं हो, शिष्य बनने की चेष्टा मात्र कर रहे हो। सर्वतोभाव से गुरु के निकट आत्म समर्पण करना ही शिष्यत्व के लक्षण है । जबतक ऐसा आत्म–निवेदन न हो जाय, शरणागति की भावना न उत्पन्न हो, जबतक पुरुषाकार का अवशेष रह जाय तबतक शिष्य को यथार्थ शिष्यत्व प्राप्त नहीं होता ।

अक्सर माँ कहती हैं–''तुम लोग जितने प्रश्न करते हो, उनका उत्तर मैं नहीं देती । प्रश्न भी तुम्हारा और उत्तर भी तुम्हारा । सिर्फ मेरे मुँह से निकल भर जाता है ।'' फिलहाल ये बातें पहेली सी नहीं लगती। माँ के प्रति अविश्वास करने की हिम्मत नहीं होती। वे प्रायः कहती है–''मैं जो कुछ कहती हूँ, वह मिथ्या नहीं होता, क्योंकि मैं तो कुछ नहीं कहती । वे ही सब कुछ कहलवाते हैं ।''

माँ जिस ढंग से इन विषयों पर कहती हैं, उसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं रहती । जो अपने व्यक्तित्व, अपने खण्ड चैतन्य को धो–पोंछकर अद्वैत विराट् चैतन्य के साथ ओतप्रोत भाव से युक्तावस्था में विराज रही हैं, उनकी प्रेरणा के मूल को अनुधावन करना या उनकी वाक्यावलियों की सम्पूर्ण रूप से उपलब्धि करना हमारी सीमा के बाहर की बात हैं ।

अक्सर मैंने गौर किया कि माँ सम्भवतः भक्तों के संस्कारों को गौर करती हुई, एक ही प्रश्न का उत्तर विभिन्न भक्तों को भिन्न–भिन्न ढंग से देती हैं । एक दिन की घटना है । माँ के पास मैं और

गणेश बाबू बैठे थे । ठीक इसी समय गणेश बाबू ने माँ से पूछा– "माँ, शिष्य और भक्त क्या एक ही होते हैं ?"

माँ ने कहा–"हां, एक ही होते हैं ।"

मैंने कहा–"माँ, भक्त और शिष्य में मेरी समझ से कुछ अन्तर हैं । भक्त गुरु का हाथ पकड़ना चाहता है और गुरु तो शिष्य का हाथ पकड़े रहते हैं ।"

माँ ने कहा–"हां, यही ।"

माँ ने एक ही जवाब से हम दोनों को सन्तुष्ट किया । माँ के इस साधारण उपदेश का उल्लेख यहाँ किया गया और इसका वर्णन जिस ढंग से किया गया, वह रक्त–मांस हीन कंकाल जैसा हुआ । जिन लोगों को माँ के श्रीमुख से उपदेश सुनने का अवसर मिला है, वे उसके माधुर्य को समझ सके होंगे । माँ के कहने के ढंग को भाषा द्वारा स्पष्ट करना असंभव हैं । इसके अलावा माँ के मुख–मण्डल और दृष्टि में ऐसे भावों का समावेश रहता है जिसका विश्लेषण करने के प्रयास को उपहास करता है । कभी–कभी ऐसा लगता है जैसे माँ अनासक्ता, निर्लिप्ता, सुख–दुःखातीता मर्मर मूर्ति है और कभी ऐसा लगता है जैसे हमारी माँ दुःखहारिणी, विश्वपावनी, करुणारुपिणी जगज्जननी हैं ।

बंगला सन् १९३१ । शिव चतुर्दशी के दूसरे दिन माँ सवेरे आश्रम के बाहर बैठी थी । इसी समय मैं आश्रम में जाकर उनके निकट बैठ गया । कुछ देर बाद खुकुनी दीदी, बेबी दीदी और एक महिला माँ के निकट आयी । सुना कि ये लोग कल रात भर सिद्धेश्वरी आश्रम में नाम करने के बाद इस वक्त माँ को प्रणाम करने आयी हैं । इन लोगों ने माँ को प्रणाम किया । बेबी दीदी दुलारी भाषा में हंसती हुई बोलीं–"माँ, कल हम लोग रात भर जागते हुए नाम करती रहीं । अब आगे से तुम हम लोगों को अधिक प्यार करोगी न ?"

माँ बिना कोई जवाब दिये मैदान की और स्मितानन से देखती रहीं। जब ये लोग चली गयीं तब मैंने माँ से कहा–"माँ, बेबी दीदी ने तुमसे यह कहा कि तुम उसे अधिक प्यार करोगी न, तब मुझे यह कहने की इच्छा हुई कि मां किसी को अच्छा या बुरा नहीं समझती हैं । माँ से कोई बात कहना वैसा है, जैसे किसी पाषाण मूर्ति के सामने कुछ कहना ।"

मेरी बात सुनकर माँ हँस पड़ीं । बोलीं–"हाँ, यह बात सच है कि मैं किसी को अच्छा या बुरा नहीं समझतीं । लेकिन यह भी सत्य है कि मैं जितना प्यार करती हूँ, उतना संसार में कोई नहीं कर सकता।"

सन् १९३२ को माँ के जन्मोत्सव के पूर्व आश्रम में एक नलकूप बैठाने की बात थी । इसी उपलक्ष्य में एक दिन दोपहर को तारक बाबू[१] तथा प्रफुल्ल बाबू[२] आश्रम में आये थे । नलकूप कहाँ लगाया जाय, यह प्रश्न माँ से पूछने पर माँ ने कहा–"मुझे क्या मालुम ? मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ । तुम लोग मुझे पानी दोगे तब पीऊँगी। तुम लोग जो कुछ दोगे, वही लूंगी । अगर तुम लोग गंदला पानी दोगे तो उसे भी मुझे साफ कर लेना पड़ता है ।"

पंकिल विषयावर्त में निमज्जमान जीवों के लिए मां की ये बातें आशा की वाणी हैं । हम लोग भी कहते हैं–"वही हो माँ, हम लोगों के कामना कलुषित हृदय तुम्हारे पावन स्पर्श से देव–सेवा के योग्य हो जाँय ।"

---

१. श्रीयुक्त डाक्टर तारकचन्द्र दत्त । आप ढाका मेडिकल स्कूल में सहायक सुपरिटेण्डेण्ट थे ।

२. श्री प्रफुल्लचन्द्र घोष । आप श्रीयुक्त योगेशचन्द्र घोष के पुत्र हैं । इनके बारे में आगे बताया गया हैं ।

मातृ दर्शन के निमित्त देहरादून में

सन् १९३२ के जन्मोत्सव के बाद स्वर्गीय ज्योतिष बाबू और भोलानाथ को लेकर श्री श्री माँ अनिर्दिष्ट काल के लिए अचानक ढाका शहर से चल दी । लौकिक भाव में पहले से ही कार्यक्रम निश्चित करके जाना, माँ का स्वभाव नहीं है । संकल्प–विकल्प का द्वन्द्व उनमें नहीं है । वारिधि वीचिविक्षेप की भाँति माँ के चिदाकाश में कभी–कभी संकल्प अपने–आप जाग उठता है और ज्योंही जाग उठा त्योंही उसे कार्यरूप में परिणत कर देती हैं । इसीलिए श्री श्री माँ का कार्यकलाप एक ओर दुर्बोध्य है तो दूसरी ओर दुर्निवार ।

उत्सव के दूसरे दिन सभी लोग थककर आश्रम में विश्राम कर रहे थे । उस समय रात्रि के १० बजे थे । अचानक इसी समय माँ कह उठीं कि वे अभी ढाका नगरी से चल देना चाहती हैं । तुरंत–ज्योतिष बाबू को उनके घर से आश्रम में बुलाया गया और रात १२ बजे वाली गाड़ी से माँ रवाना हो गयीं । ज्योतिष बाबू को इतना भी मौका नहीं दिया कि वे घर जाकर अपनी पत्नी, बच्चों से मुलाकात कर लें या अपने लिए कपड़ा वगैरह ले लें । ये लोग गोरखपुर, लखनऊ आदि स्थानों में घूमते हुए देहरादून पहुँचे । बाद में देहरादून से ४–५ मील दूर रायपुर नामक एक गांव में स्थित शिव मन्दिर में जाकर ठहरे । इसी स्थान पर बाबा भोलानाथ कठोर तपस्या करने लगे । वे मौन होकर दिन–रात शिव मन्दिर में साधन–भजन करने लगे । ज्योतिष बाबू कुछ दिनों तक साथ रहने के बाद पुनः ढाका में अपने कार्यालय में आ गये । लेकिन अधिक दिनों तक नौकरी नहीं कर सके। अवकाश ग्रहण करने के बहुत पहले ही अवकाश ले वे श्री श्री माँ की सेवा में चले आये । बाबा भोलानाथ कुछ दिनों तक रायपुर

में रहने के बाद उत्तरकाशी चले गये और उग्र तपस्या में निमग्न हो गये। इधर माँ ज्योतिष बाबू को लेकर मसूरी, देहरादून, हरिद्वार आदि स्थानों में घूमने लगीं ।

लगभग दो वर्ष तक उत्तरकाशी में साधन–भजन करने के बाद बाबा भोलानाथ ने वहां एक मन्दिर बनवाया और विग्रह की स्थापना की । उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय ढाका कलकत्ता से अनेक भक्त वहां गये थे । मन्दिर की स्थापना के बाद बाबा भोलानाथ उत्तरकाशी से चलकर इधर–उधर घूमते हुए' ज्वालामुखी' नामक स्थान पर जाकर तपस्या करने लगे । इन्हीं दिनों माँ ज्योतिष बाबू को साथ लेकर बैजनाथ आदि स्थानों में भ्रमण करती हुई देहरादून में आकर रहने लगीं ।

श्री श्री माँ को ढाका से गये तीन साल व्यतीत हो गये थे । इस लम्बे अर्से में माँ को न देख पाने के कारण मैं जरा चंचल हो गया । बंगला १९३५ की पूजा की छुट्टियों में माँ का दर्शन करने के लिए देहरादून रवाना हो गया ।

२५ आश्विन को देहरादून एक्सप्रेस से पत्नी एवं छोटी लड़की सती को लेकर देहरादून रवाना हुआ । ज्योतिष बाबू ने एक पत्र में लिखा था कि अगर मैं हरिद्वार होते हुए देहरादून जाऊँ तो नानकीबाई की धर्मशाला में श्री श्री माँ के बारे में जानकारी प्राप्त कर लूँ । श्री श्री माँ हरिद्वार में ही हो सकती हैं, यह अनुमान लगाकर देहरादून का टिकट न लेकर मैंने हरिद्वार तक का ले लिया । २७ आश्विन को हरिद्वार पहुँचा, पर वहां भी माँ को न पाकर उसी दिन ९ बजे देहरादून रवाना हो गया । दोपहर को १२ बजे देहरादून पहुँचने पर एक नयी मुसीबत का सामना करना पड़ा । ज्योतिष बाबू ने हरिद्वार का पता तो दे दिया था, पर देहरादून में माँ कहा हैं, यह नहीं लिखा था । फलतः एक तांगा लेकर माँ की तलाश में चल पड़ा । काफी चक्कर काटने के बाद राजपुर रोड स्थित ५९ नम्बर के मकान में

माँ को पाया । मकान काफी बड़ा था । इसके एक हिस्से में कुछ गृहस्थ लोग रहते हैं और कुछ दूरी पर बना हिस्सा संन्यासियों के लिए आश्रम का रूप दिया गया है । इसका नाम कृष्णाश्रम है । माँ कृष्णाश्रम में ठहरी हुई थीं ।

मकान में प्रवेश करते ही देखा कि बरामदे के पश्चिमी भाग में माँ आपादमस्तक चादर ओढ़े सो रही हैं । मन-ही-मन माँ को प्रणाम करने के बाद अपने परिवार के ठहरने लायक स्थान की तलाश में निकल पड़ा। ज्योतिष बाबू ने हम लोगों के ठहरने के लिए जिस स्थान को ठीक करके रखा था, वहाँ कई प्रकारकी असुविधाएँ थीं । ज्योतिष बाबू[१], हमारे पथ प्रदर्शक थे । उनके सुझाव के अनुसार ताजमहल होटल में जाकर एक कमरा किराये पर लिया । दैनिक किराया डेढ़ रुपये था । वहाँ स्नानादि करने के पश्चात् मैं पुनः माँ के पास आया।

उस वक्त ३॥ या ४ बजे थे । अब जो गया तो देखा-माँ बरामदे के पूर्वी भाग में एक आरामकुर्सी पर बैठी हुई हैं । प्रणाम करते ही माँ हँस पड़ीं । बोलीं-मैं जब सोकर उठी तब बोली कि पिताजी (अर्थात् मैं) मुझे छोड़कर चले गये ।

मैं-माँ, डेरा पहले से निश्चित नहीं था । रहने के लिए जगह का प्रबन्ध करने गया था, इसलिए अधिक देर रुक नहीं सका ।

मां-यह मैं सुन चुकी हूँ ।

सती ने ज्योंही प्रणाम किया त्योंही माँ बोल उठीं-मेरे केश आ गये हैं । दो दिन पहले मैं सोच रही थी कि मैं तो यहाँ हूँ और मेरे केश अन्यत्र पड़े हैं ।

मैं-इन बातों का क्या अर्थ हैं, माँ ?

---

१. श्रीयुक्त नरसिंह चट्टोपाध्याय एम.ए. । इन दिनों मथुरा कालेज में पढ़ाते हैं। माँ ने इनका नाम ज्योति रखा हैं ।

माँ–इसके (अर्थात् सती) केश तो मेरे केश हैं, क्या इसे आज तुमने पहली बार सुना ।

मैं–नहीं । इसके पूर्व भी सुन चुका हूँ, पर इस बात का अर्थ क्या है ?

माँ ने मेरे प्रश्न का जवाब नहीं दिया बल्कि खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोलीं–'पिताजी को सन्देह हो गया है ।' बाद में ढाका में कौन कैसे है, इस बारे में पूछने लगी ।

मैं–क्या तुम यह सब नहीं जानती जो मुझसे पूछ रही हो ?

माँ मधुर मुस्कान के साथ हँसती हुई बोली–'बातें करनी चाहिए न ।'

मैं–तब क्या बातें करने के लिए यह सब करती रहती हो ?

माँ पुनः हँस पड़ी । स्वामी शंकरानन्द ने कहा–"सिर्फ बातें करने के लिए ही क्यों ? आप जब ढाका वापस जायेंगे तब सभी आपसे यह सवाल करेंगे कि माँ किस–किसके बारे में पूछती रहीं । जब उन्हें यह ज्ञात होगी कि उनके बारे में माँ पूछती रहीं तब वे लोग मन–ही–मन सन्तुष्ट होंगे ।"

मां–क्यों पिताजी, अब जवाब मिला न ?

मैं–हाँ, पर तुम भी इस बात को मानने के लिए बाध्य हो गयी हो कि हम लोगों के बारे में बिना किसी पूछताछ के सब जानती हो।

नाम जपना तथा नाम होना

इसके बाद मेरे एक गुरु भाई की बात चल पड़ी । मैंने कहा–"माँ तुम यह कहती हो कि नाम करते करते (जपना) सब प्राप्त हो जाता हैं। मेरे एक गुरु भाई हैं, जो दिन–रात के २४ घण्टे में २२ घंटे नाम करते रहते हैं । वे प्रायः मुझसे कहते हैं–'देखो, मैं

पुस्तक पढ़ता रहता हूँ या तुम लोगों से बातें करता हूँ तब भी भीतर–ही–भीतर मेरा नाम जपना जारी रहता हैं । वह कभी बन्द नहीं होता।' आजकल वे नास्तिक हैं।''

माँ–नास्तिक हैं ?

मैं–ठीक नास्तिक नहीं हैं । लेकिन उनका अब यह कहना हैं कि भगवान् नामक कोई अगर है तो हो सकता है, पर उसके बारे में ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य के लिये असम्भव है । भले ही यह तथ्य नास्तिकता न हो, पर नास्तिकता के पक्ष में है । इसके अलावा आजकल वे गुरु के प्रति उतने भक्तिमान नहीं हैं । देवी–देवी के अस्तित्व को नहीं मानते । कहते हैं–'शास्त्र में बेकार की बातें हैं ।' वे आजकल एक पुस्तक लिख रहे हैं । उस पुस्तक में वे यही बतायेंगे कि अब तक भगवान् के बारे में, शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है, सब झूठ है । वे यह भी प्रमाणित कर देंगे कि भगवान् को जानने का कोई उपाय नहीं है । नाम करने पर अगर व्यक्ति की यह दशा होती हैं तो नाम पर लोगों की भक्ति या विश्वास कैसे बना रह सकता हैं ?

माँ–तुमने पिताजी के बारे में जो कुछ बताया, उससे ऐसा लगता है कि पिताजी की स्थिति ऊँची है । यह भी साधन की एक अवस्था है जब सभी चीजों के प्रति अविश्वास उत्पन्न होता है । इसके अलावा पिताजी ने कुछ गलत नहीं कहा है । पिताजी अगर मुझे यह सब बातें कहते तो मैं उनसे कहती– 'पिताजी, तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है ।' (अपने को दिखाती हुई) इस शरीर पर न जाने कितनी अवस्थाएं गुजर गयी हैं, इसलिए मैं समझ पा रही हूँ कि पिताजी किस अवस्था की बातें कहते हैं । एक अर्थ से देव, देवी, शास्त्र सब मिथ्या हैं । जिसे प्रकट नहीं किया जा सकता, उसे भाषा में आबद्ध करने पर सब मिथ्या हो जायेगा । इस अर्थ से शास्त्र भी मिथ्या है और देवता भी मिथ्या हैं । पिताजी जो पुस्तक लिख रहें हैं, पिताजी

की अवस्था तक जो लोग पहुँचेंगे, उनके लिये उपयोगी होगी । हाँ, तुम पिताजी से यह जरूर पूछ सकते हो कि पिताजी शास्त्र को मिथ्या कहकर उस मिथ्या की सृष्टि क्यों कर रहे हो ? पिताजी जो कुछ लिख रहे हैं, वह भी तो शास्त्र के अलावा अन्य कुछ नहीं है । और तुमने जो नाम करने की बातें कहीं, इसे याद रखना कि नाम करना बिलकुल बेकार नहीं है । पिताजी नाम करते रहे, इसलिये इस अवस्था तक पहुँचे हैं। इसके अलावा नाम करना और नाम होना अलग-अलग बातें हैं । पिताजी ने नाम किया है, अपने आप नाम नहीं हुआ है ।

मैं–नाम करना तो समझता हूँ । नाम होना कैसा होता है ? क्या होने पर समझा जाय कि नाम हो रहा है ?

माँ– जब यह देखोगे कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नाम अपने आप होता जा रहा है, जब देखोगे कि किसी काम के लिए अन्यत्र जाना है; पर नाम तुम्हें जाने नहीं दे रहा है, जब देखोगे कि नाम तुम्हारी इच्छा, कर्म शक्ति पर अधिकारी जमाये बैठा है तब समझ लेना नाम हो रहा है । इसी प्रकार ध्यान करना एक बात है और ध्यान का होना अलग बात है । लोग ध्यान करने का प्रयत्न मात्र करते हैं, लेकिन जब सचमुच ध्यान होता है तब समझ में आता है कि इन दोनों में कितना अन्तर है ।

मैं– मेरे गुरु भाई जब ध्यान करते थे तब उन्हें घंटा-ध्वनि और वंशी-ध्वनि सुनाई देती थी । ज्योति भी दिखाई देती थी । मैंने उससे पूछा था कि ये सब ध्वनियाँ कहां से आती हैं, क्या जानते हो ? उत्तर में उन्होंने बताया– 'मैंने केवल ध्वनि सुनी है, कहाँ से आती है, पता नहीं । इन ध्वनियों का क्या मतलब है ?'

माँ – तुम्हें बता रही हूँ जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है, तब नाभिमूल में जितनी ग्रन्थियां हैं, वे खुलने लगती हैं । जब ग्रन्थियां

खुलने लगती हैं, तब विभिन्न प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं और ज्योति दिखाई देती है । एक भी ग्रन्थि भेद होने पर शब्द सुनाई देता है। इसे अनाहत ध्वनि कहते हैं । यह हमेशा होता रहता है, पर जब तक चित्त स्थिर नहीं होता तब तक यह सुनाई नहीं देता । यही संसार की विभिन्न ध्वनियों की समष्टि है । जैसे शंख, घंटा, घड़ियाल आदि की आवाजें भिन्न-भिन्न हैं, पर एक साथ इन्हें बजाने पर एक प्रकार की आवाज होती है, उसी प्रकार अनाहत ध्वनि होती है । संसार में ऐसी कोई ध्वनि नहीं है जिसके साथ इसकी तुलना की जा सके। जबकि संसार की सभी ध्वनियां इसी ध्वनि से उत्पन्न हुई हैं । इसी प्रकार अन्य एक ग्रन्थि भेद होने पर ज्योति दर्शन होता है । यह ज्योति भी अपार्थिव है । जगत् के किसी भी प्रकाश से इसकी तुलना नहीं की जा सकती । रूप के बारे में भी यही बात लागू होती है । ग्रन्थि-भेद के साथ ही साथ लोगों के संस्कार के अनुसार नाना रूप दर्शन होते हैं । फिर समस्त रूप एक रूप में लय हो जाता है । संसार की सभी चीजें एक मूल से उत्पन्न होती हैं। ग्रन्थि-भेद होने पर ही सब समझ में आ जाता है । जिनकी समस्त ग्रन्थियों का भेद हो गया है, वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणों को समझ पाते हैं । जिनका आंशिक भेद हुआ है, वे समझ नहीं पाते । इसलिये पिताजी कहते थे कि कहां से आवाज आ रही है, समझ नहीं पाता । केवल शब्द सुन पाता था ।

मैं- माँ, साधना में इतना आगे बढ़ जाने पर भी वे अपने गुरु को मूर्ख कहते हैं । हम यह जानते हैं कि गुरु में एकनिष्ठ भक्ति न रहने पर साधना-सिद्धि प्राप्त करना स्वप्न के बराबर है ।

मां- पिताजी की इन दिनों खण्डन की अवस्था है । उनके सामने जो कुछ आ रहा है, उसे टुकड़े-टुकड़े कर दे रहे हैं । तुम लोगों ने देखा होगा कि बगीचे में सफाई करते वक्त कुछ लोग झाड़-झांकड़

के साथ लौकी–कद्दू जैसे मूल्यवान पौधों को भी उखाड़ फेंकते हैं । आजकल पिताजी की यही स्थिति है । पिताजी विचारों के माध्यम से संस्कार–मुक्त हो रहे हैं । ऐसी हालत में देवता–गुरु कुछ भी नहीं रहेंगे, क्योंकि देवता की तरह गुरु भी एक संस्कार के अलावा और क्या है । पिताजी की अवस्था में जो लोग आये हैं, वे लोग केवल इसी प्रकार गुरु को आक्रमण करते रहेंगे । तुम लोगों का ऐसा करना अन्याय होगा ।

इन बातों के बाद अन्य बातों का दौर चल पड़ा । मैंने कहा– 'माँ, मंदिर प्रतिष्ठा के समय उत्तर काशी जाने की मेरी इच्छा थी पर तुमने जाने नहीं दिया । तरह–तरह से विघ्न डालकर मुझे ढाका में रहने को बाध्य कर दिया । उस समय मैं तुम्हें भला–बुरा कहता रहा।'

माँ– 'ठीक से गाली कहाँ दे पाते हो । देखो, कमरे में प्रवेश करने के दो रास्ते हैं । एक है–दरवाजा तोड़कर भीतर जाना और दूसरा उपाय है दरवाजे के पास अपने को लिटा देना यानी दरवाजे के पास अपने को तोड़ देना ।'

इसी प्रकार की बातें करते शाम हो गयी। माँ टहलने के लिए बाहर निकलीं। हम लोग जब सड़क पर आये, उस समय आसमान में चाँद दिखाई दे रहा था। मसूरी के पहाड़ पर झलमल करता हुआ प्रकाश बड़ा सुन्दर लग रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे गिरिराज के गले में किसी ने हीरे की माला पहना दी हो। ऊपर निर्मल आकाश, चारों ओर चांदनी। नीचे जगज्जननी मां झूमती हुई टहल रही हैं। हम लोग उनके पीछे–पीछे चल रहे हैं। इधर मैं सोच रहा था कि शयन में, जागरण में, नित्य के प्रत्येक कार्य में, अगर मां को इसी तरह आगे रखा जाय तो संसार में और किसी चीज की चाह नहीं रहेगी ।

भ्रमर की शिव पूजा

कुछ देर टहलने के बाद माँ वापस आ गयीं । ज्योंही माँ आयीं त्योंही उन्हें भू–गर्भ स्थित एक गुफा में ले जाया गया । मकान के जिस हिस्से में माँ रहती हैं, उसमें दो गुफाएँ हैं । माँ के साथ ही हम लोग भी गुफा के भीतर गये । प्रवेश करने के साथ ही देखा कि गुफा छोटी होने पर भी काफी छोटी नहीं है कम–से–कम १५–२० व्यक्ति बैठ सकते हैं । गुफा धूप के गंध से परिपूर्ण है । यहाँ भ्रमर और लक्ष्मीबाई पूजा का आयोजन कर रही हैं । एक बोतल के भीतर विल्व वृक्ष की एक शाखा रखकर बेल का पेड़ बनाया गया है । गुफा के एक ओर एक पीढ़े पर १०८ मोमबत्ती जल रही है। फूल नैवेद्य सब कुछ तैयार है। यह सब देखकर मैंने माँ से पूछा– "माँ, यह सब क्या है ?"

माँ ने कहा–"भ्रमर आज तीन साल से बराबर शिव–पूजा करती आ रही है । अब तक यह अपने मन से पूजा करती आयी है । पिछले लक्ष्मी पूर्णिमा के दिन शास्त्रीय ढंग से पहले पहल पूजा की । आज पुनः उसी ढंग से पूजा करेगी ।"

इस भ्रमर नामक लड़की को मैंने पहले पहल देखा । इसकी आकृति पर दृढ़ता मिश्रित सरलता का एक ऐसा भाव है जो अपूर्व है । लड़की मुझे प्रिय लगी । जब वह शुद्धवास में शुद्धासन पर बैठी तब मुझे ऐसा लगा जैसे स्वयं पार्वती शिवाराधना में नियुक्त हुई हैं । माँ पास ही बैठकर सब देख रही थीं । कभी–कभी कुछ बताकर विषय–बुद्धि की गंभीरता का परिचय दे रही हैं । एक ब्राह्मण पंडित पूजा कराने आये । ये ज्योति के पिता हैं । निष्ठावान ब्राह्मण लगे । उन्होंने पूछा– "यह पूजा नित्य–पूजा की तरह होगी या कोई संकल्प लिया जायगा ?"

माँ ने कहा–"संकल्प के साथ हो ।"

यह सुनकर मुझे खटका लगा । नित्य–पूजा साधना का एक अंग विशेष है । माँ ने उस तरह पूजा करने को न कहकर नैमित्तिक–पूजा का आदेश क्यों दिया ? बहरहाल एक घण्टा तक बैठा पूजा देखता रहा। दिन भर व्यस्त रहने के कारण थक गया था । सती भी झूम रही थी। यह देखकर माँ ने हमें विदा दे दी । हम लोग प्रणाम करके चले आये।

दूसरे दिन २८ आश्विन यानी १५ अक्टूबर, सन् १९३५ को सबेरे माँ के पास चला आया । आकर देखा–माँ को भोजन कराया जा रहा है । आजकल माँ एक दिन के बाद दूसरे दिन आहार करती हैं । कल उपवास का दिन था । आज आहार का दिन है । इसलिए आज सबेरे से लोग कुछ–न–कुछ लेकर आ रहे हैं । कोई अंगूर लेकर आ रहा है तो कोई सेव । कोई दूध–रोटी तो कोई मुखशुद्धि मसाला। सभी माँ को देकर प्रसाद बना ले रहे हैं । अन्य लोगों के साथ हम लोग प्रसाद प्राप्त कर रहे हैं ।

माँ हँसती हुई बोलीं–आज मेरा दफ्तर खुल गया है । मेरे लिए कुछ नाम रखे गये हैं जैसे 'कालीखो', 'अपीलेश्वरी', 'मानुषकाली' आदि। 'कालीखो' (काली खोह) नामक एक देवी मूर्ति विंध्याचल में है । उस मूर्ति का मुँह खुला हुआ है । जो लोग उक्त देवी मूर्ति का दर्शन करने जाते हैं, वे उस मुँह में कुछ–न–कुछ डाल देते हैं । भोजन के दिन जो लोग माँ का दर्शन करने आते हैं, वे भी माँ को बिना कुछ खिलाये जाते नहीं । इसी से माँ का नाम हुआ है–काली खोह।

मैंने माँ से पूछा–"तुम्हारा नाम अपीलेश्वरी क्यों हुआ !"

माँ ने कहा–"यह नाम भोलानाथ ने रखा है ।" ढाका में किसी विषय पर आखिरी राय लेने के लिए लोग मेरे पास आया करते थे, इसीलिए भोलानाथ मुझे अपीलेश्वरी कहते हैं ।

जीव भविष्य नहीं जानना चाहता

आज भ्रमर की मांग में सिन्दूर देखा । जरा विस्मित हुआ । कारण भ्रमर को मैं कुमारी समझता रहा । बाद में सुना कि कल की पूजा के अवसर पर माँ ने शिव के साथ उसका विवाह कराया है।

मैं–'माँ, तुमने शिव के साथ भ्रमर का विवाह कराया है ?'

माँ–कहाँ से पता चला ?

मैं–यहीं सुना । कल जब तुमने संकल्प लेकर पूजा करने को कहा तभी मुझे खटका । आखिर माँ ने ऐसा क्यों कहा ?

माँ–उसका (भ्रमर का) उसी प्रकार का एक संस्कार था । जब वह पूजा करने बैठी तबतक वह यह नहीं जानती थी कि उसका ऐसा कोई संस्कार है, पर पूजा समाप्त होते ही उसमें वह भाव जाग उठा तब मैंने शिव के साथ उसका विवाह कराया । इसी प्रकार शारदा का विवाह नारायण से करा चुकी हूँ । उसकी कहानी तुमसे फिर कभी कहूँगी । विवाह के बाद भ्रमर से मैंने कहा–'अगर तुझमें विवाह के संस्कार होंगे तो आगे चलकर विवाह होगा ।' यह सुनकर भ्रमर ने कहा–'माँ, तुमने तो कहा था कि आगे कभी तुम मुझे विवाह करने के लिए नहीं कहोगी ।' मैंने कहा–'ठीक है ।' इसके बाद भ्रमर ने मुझे उसकी माँग भरने को कहा। उसने कहा–'मेरी माँग का सिन्दूर कभी साफ नहीं होगा । तुम क्यों नहीं मेरी माँग में सिन्दूर लगाती।' भ्रमर के इस अनुरोध का एक इतिहास है । यह शरीर जब बहू बनी थी, उन दिनों गृहस्थ बहुओं का सारा कर्त्तव्य पालन करता था । जब कोई महिला मुझसे मिलने आती तब उसे पान खिलाती, उसकी माँग में सिन्दूर पहनाती थी । गृहस्थी के मंगल के लिए वह सब करना पड़ता था । एक दिन श्यामला[1] मेरे यहाँ भेंट करने के लिए आयी। उसे पान देने के बाद जब सिन्दूर लगाने गयी तब वह बोली कि अगर

१. ढाका के प्रसिद्ध वकील श्रीयुक्त पण्डित दास महाशय की पत्नी ।

उसकी माँग का सिन्दूर अक्षय रहे अर्थात् सधवा रूप में मर सके तो उसे सिन्दूर लगाऊं, वर्ना कोई जरूरत नहीं । मैंने कहा–'ठीक वही होगा । लेकिन मुझसे जबरन इस शर्त पर सिन्दूर लगाओगी तो भविष्य में उन्हीं लोगों को मैं सिन्दूर लगाऊंगी जिनकी मृत्यु सधवा रूप में होगी। जो विधवा बन जायेंगी, उन्हें सिन्दूर नहीं लगाऊंगी । मुझसे कोई भी कार्य प्रारंभ करा लेने के बाद हजार रोओ–गाओ, फिर उसमें परिवर्तन नहीं होगा । इसके बाद कोई सधवा आयी और उसके अदृष्ट में विधवा होना है देखकर अगर उसे सिन्दूर न लगाया तो उसका प्राण हाहाकार कर उठेगा । उसका दर्द कौन ढोयेगा ? अगर उस दर्द का बोझ तुम ले सको तो मैं तुम्हारे कथनानुसार काम कर सकती हूँ ।' मेरी बातें सुनकर वह बोल उठी–'नहीं माँ, यह सब करने की जरूरत नहीं है। तुम जैसे सबको सिन्दूर लगाती हो, उसी प्रकार लगाती रहना ।' अब देखो, जीव अपना भविष्य नहीं जानना चाहता । भविष्य में क्या होगा, मैं यह तो बताने गयी थी । लेकिन तुम लोगों में इतना साहस कहाँ है ? सुअर जिस प्रकार विष्ठा खाता है, ठीक उसी प्रकार जीव भी अपनी अज्ञानता को प्यार करता है ।''

चरण स्पर्श करने का प्रणाम और दूर से प्रणाम करना

मैं–माँ, कुछ लोग तुम्हारा चरण–स्पर्श कर प्रणाम करते हैं और कुछ लोग दूर से प्रणाम करते हैं । इन दोनों प्रणामों में क्या भेद है ?

माँ ने शंकरानन्द स्वामी से कहा–''पिताजी, इन दोनों प्रणामों में क्या भेद है जरा बता दो ।''

शंकरानन्द ने कहा–चरण स्पर्श कर जिसे प्रणाम किया जाता है, उसकी क्षति होती है अर्थात् स्पर्श के कारण शक्ति क्षय होती है।

माँ ने संपूर्ण रूप से इस उत्तर का अनुमोदन नहीं किया । उन्होंने पूछा–''अच्छा पिताजी, अगर दाहिना हाथ बांये का स्पर्श करे तो क्या बांये हाथ की क्षति हो सकती है ?''

माँ की इस बात का गूढ़ रहस्य यह है कि जो लोग उन्हें प्रणाम करते हैं, ये उनसे अलग नहीं हैं । समस्त जीव-जगत् उनके विश्वरूप का अंश मात्र है । माँ ने इसके साथ ही यह भी स्वीकार किया कि जो लोग पगस्पर्श कर प्रणाम करते हैं, वे विशुद्ध वस्तु स्पर्शजनित कुछ सुफल प्राप्त करते हैं ।

मैं-तब तो तुम्हें स्पर्श करके प्रणाम करना उचित है, क्योंकि अन्य कोई फल मिले या न मिले, कम-से-कम तुम्हारा स्पर्शजनित पुण्य-लाभ होगा ।

माँ-कृपा-लाभ के लिए स्पर्श की आवश्यकता नहीं है । वह दूर से भी प्राप्त किया जा सकता है ।

इसी बात के उपलक्ष्य में माँ कहने लगीं-"किसी काम के करने या न करने के बारे में मेरी कोई इच्छा नहीं है, इसीलिए अक्सर ज्योतिष को कहती हूँ कि अगर मुझसे कुछ कराना है तो बीच-बीच में मुझे याद दिलाते रहना । मेरे निकट इच्छा प्रकाश करने पर उक्त इच्छा के अनुसार कार्य हो भी जा सकता है ।"

---

१. दिनेशचन्द्र राय । ढाका जिला के दाशरा ग्राम के निवासी । आप माँ के एक पुराने भक्त थे । जिन दिनों मैमनसिंह में सबजज थे, उन दिनों लकवा रोग हुआ था। फलतः उनका अर्द्धांग बेकार हो गया था । उन दिनों कुछ दिन के लिए अवकाश लेकर ढाका में आकर विश्राम कर रहे थे । एक दिन आश्रम में माँ से कह रहे थे-"एक दिन तुम्हें टांगाइल में कहा था कि मेरे सिर पर हाथ फेर दो । अगर उस समय तुम ऐसा करती तो आज मेरी यह हालत न होती । क्या मैं आशा करूं कि इस वक्त मेरे सिर हाथ फेर दोगी ?"

माँ यह सुनकर चुप रह गयीं । कुछ भी नहीं बोलीं । दिनेश बाबू ने पुनः कहा-"माँ, अगर तुम एक बार मेरे सिर पर हाथ फेरना पसन्द करो तो मैं तुम्हारे निकट आऊं ।"

इतना कहने के पश्चात् वे कुर्सी से उठ खड़े हुए । माँ ने कोमल और दृढ़ स्वर में कहा-"नहीं, मत आओ ।"

माँ में ऐसा दृढ़ भाव जीवन में कभी नहीं देखा था ।

मैं–सचमुच माँ ? अगर तुम्हारी इच्छा नहीं है तो क्या दूसरों की बात पर काम कर देती हो ? दूसरों की इच्छा जब तुम्हारी इच्छा से मिल जाती है तभी तुमसे कार्य की प्राप्ति होती है । तुम्हें शायद स्मरण हो कि रमना के आश्रम में स्वर्गीय दिनेश बाबू[१] ने तुमसे अपने मस्तक पर हाथ फेरने के लिए कहा, पर तुमने कहाँ स्पर्श किया ? शायद उसकी मृत्यु सन्निकट देखकर तुमने स्पर्श नहीं किया ।

माँ–''क्या मैं स्पर्श कर देती तो उसकी मौत ठहर जाती ? जो मरणोन्मुख रहा, उसे भी स्पर्श कर चुकी हूँ ।'' इतना कहने के बाद माँ स्वर्गीय निर्मल बाबू (स्वामी अखण्डानन्द के दामाद) की मृत्यु का विवरण कहने लगीं ।

निर्मल बाबू की मृत्यु

माँ–जिन दिनों भोलानाथ उत्तरकाशी से मसूरी आये थे, उन्हीं दिनों निर्मल बाबू मेरे पास सपत्नीक आये थे । हम लोग जिस धर्मशाला में ठहरे हुए थे, वहाँ जगह न रहने के कारण वह पड़ोस के एक मकान में ठहर गया । मसूरी आते ही निर्मल बाबू बीमार पड़ गये। बीमार पड़ने के पहले ही मैंने कहा था कि इसका किसी अच्छे डाक्टर से इलाज कराओ । वह इसलिए कि बीमार आदमी जब मर जाता है तब लोग कहते हैं किसी अच्छे डाक्टर को अगर दिखाते तो शायद न मरते । ज्योतिष ने कहा–'आज ही तो बीमार पड़ा । एक होमियोपैथ डाक्टर देख रहा है । उसकी दवा का असर बगैर देखे दूसरे डाक्टर को कैसे बुलाया जाय ?' यह सुनकर मैं चुप रह गयी । निर्मल बाबू की हालत दिन–पर–दिन खराब होती गयी । खून सिर पर चढ़ गया था । सारा चेहरा रक्तवर्ण हो गया । उसने मुझे देखने की इच्छा प्रकट की । उसकी पत्नी बार–बार मुझे ले आने के लिए आदमी भेजने लगी, पर मुझे न जाने क्या हो गया कि मैं जा नहीं सकी । उधर जाने की मेरी इच्छा नहीं हो रही थी । ३–४ दिन बाद अचानक

तीसरे पहर मेरे मन में आया कि इस वक्त कोई मुझे निर्मल बाबू के पास चलने को कहे तो मैं चल सकती हूँ । ठीक इसी समय भोलानाथ आकर मुझे निर्मल बाबू के पास ले गये । इतने दिनों तक निर्मल बाबू विकार और बेहोशी की हालत में थे । मेरे जाने के कुछ पहले उन्हें होश आया था और कुछ बातें करते रहे । मैं कुछ देर वहाँ बैठी रही । बातें करती रही । बाद में जब चलने लगी तब मेरा हाथ अपने आप निर्मल बाबू के मस्तक पर चला गया । इस स्पर्श की ओर किसी का ध्यान नहीं गया । निर्मल बाबू की इच्छा नहीं थी कि उसे इंजेक्शन दिया जाय । लेकिन बीमारी की हालत देखकर उसे इंजेक्शन दिया गया और उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी ।

सारी बातें सुनकर मैं सोचने लगा कि निर्मल बाबू बड़े भाग्यवान थे। मृत्यु के पूर्व माँ के मंगल कर का स्पर्श पा जन्म-मृत्यु के आवर्त से मुक्ति पा गये । प्रकट रूप में कहा-''माँ, निर्मल बाबू बड़े भाग्यवान थे ।''

माँ-हाँ, निर्मल बाबू की मृत्यु जिस कमरे में हुई थी, उसके ठीक ऊपरवाले कमरे में सिक्खों का ग्रन्थ साहब थे । एक प्रकार से ग्रन्थ साहब सिर पर रखे उनकी मृत्यु हुई ।

श्री श्री माँ और श्रीयुक्त राम ठाकुर

देहरादून आने के बाद से अक्सर माँ को 'नारायण-नारायण' कहते सुनकर मैंने कहा था-''माँ, ढाका में तुम्हें कभी 'नारायण-नारायण' कहते नहीं सुना । यहाँ आकर पहली बार सुन रहा हूँ ।''

माँ-यहाँ संन्यासियों को प्रणाम करने पर वे लोग 'नारायण-नारायण' उच्चारण करते हैं । यह देखकर नारायण कहना सीख गयी। मैं तो बच्ची हूँ जो सुनती हूँ उसी को सीख लेती हूँ । आगे देखकर नहीं सीखती थी । एक दिन राम ठाकुर ने आकर मुझे प्रणाम किया। यह जानते ही हो कि राम ठाकुर कितने वृद्ध हैं । वे एक साधक हैं । जब उन्होंने मुझे प्रणाम किया तो मैं काठ हो गयी । एक दिन

प्राण ठाकुर ने मुझसे पूछा–'माँ, राम ठाकुर ने तुम्हें प्रणाम किया, पर तुमने उन्हें प्रति नमस्कार नहीं किया ? पता नहीं, इसके कारण ठाकुर के शिष्य न जाने क्या सोचते होंगे ।' मैंने कहा–"तुम सभी से कह देना कि पिताजी (अर्थात् राम ठाकुर) का चरण हमेशा मेरे सिर पर है ।"

गुरु शिष्य सम्बन्ध

मैं–माँ, सुना है कि दीक्षादाता गुरु जब तक शिष्य की मुक्ति नहीं हो जाती तब तक मुक्त नहीं हो पाते । इस बारे में स्वर्गीय विजय कृष्ण गोस्वामी ने एक उदाहरण देते हुए कहा है–चरवाहा जैसे गायों को एक–एक कर नदी पार कराने के बाद अन्तिम गाय की डोर पकड़कर स्वयं पार होता है, इसी प्रकार गुरु भी एक–एक कर सभी शिष्यों को परित्राण कर अन्त में मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

माँ–बात बिलकुल ठीक है । गुरु–शिष्य का सम्बन्ध भी एक बंधन है । गुरु शिष्य की मंगल कामना करते हुए इस बंधन को उत्पन्न करते हैं । इस बन्धन से उन्हें भी मुक्त होना पड़ता है । जब तक शिष्य मुक्त नहीं होता तब तक गुरु का बंधन मिटता नहीं । क्या तुमने पढ़ा नहीं है कि प्राचीन काल में लोग ब्रह्मविद्या प्राप्ति के लिए ऋषियों के पास जाया करते थे । ऋषिगण अधिकार भेद के अनुसार उपदेश देते थे । उपदेश देकर वे अपना कर्त्तव्य समाप्त कर देते थे। शिष्य के साथ आगे कोई संबंध नहीं रखते थे ।

मैं–क्या वे लोग शिष्यों में शक्ति का संचार नहीं करते थे ?

माँ–पहले ही कह चुकी कि अधिकार भेद के अनुसार उपदेश देते थे । वही उपदेश ही शक्ति संचार करता था ।

मैं–अगर कोई गुरु से मन्त्र प्राप्त कर जप–तपादि न करे तो क्या वह कभी मुक्त नहीं हो सकता ?

माँ–पुरुषाकार चाहिए । देखो, पत्थर में भी आग है, पर बिना घिसे दिखाई नहीं देती ।

मैं–दूसरी ओर देखिये, जिस प्रकार पत्थर में आग है, उसी प्रकार लकड़ी में भी आग है । दो लकड़ी रगड़ने पर आग दिखाई देती है। लेकिन एक लकड़ी जला देने पर फिर लकड़ी में लकड़ी रगड़ना नहीं पड़ता । उस समय जलती हुई लकड़ी अन्य लकड़ियों को जला देती है । उसी प्रकार गुरु अगर शिष्य में मन्त्र शक्ति संचार कर दें तो शिष्य को पुरुषाकार की क्या आवश्यकता है ? उसी शक्ति के जरिये वह मुक्त हो सकता है ।

माँ–कर्म के रहते गुरु–शक्ति समझ में नहीं आती, इसीलिए कर्म समाप्त करने के लिए पुरुषाकार की आवश्यकता है । कर्म करके कर्म समाप्त करना चाहिए ।

स्वर्गीय निरंजन बाबू[१] का क्या जन्म हुआ है ?

मैं–माँ तुमने शायद यह कहा है कि निरंजन बाबू ने श्रीयुक्त हरिराम जोशी के पुत्र के रूप में पुनः जन्म ग्रहण किया है ?

मां–मैंने नहीं कहा है, पर ज्योतिष एक दिन यहां बैठकर निरंजन बाबू के बारे में कहता रहा । उस समय हरिराम भी यहां था । ज्योतिष की बातें सुनने के बाद हरिराम ने हिसाब लगाकर बताया कि जिस समय निरंजन बाबू की मृत्यु हुई थी, ठीक उसी समय उसे एक लड़का पैदा हुआ था । यह लड़का शायद निरंजन बाबू हैं ।

१. स्वर्गीय निरंजन राय । आप इनकम टैक्स विभाग के कमिश्नर थे। स्व. निरंजन बाबू स्व. ज्योतिष बाबू के अन्तरंग मित्र तथा दोनों ही माँ के भक्त थे । रमना आश्रम बनाने का प्रयत्न सर्वप्रथम निरंजन बाबू ने किया था, किन्तु अकाल मृत्यु के कारण उसे असंपूर्ण रख गये । स्व. ज्योतिष बाबू ने अपनी 'मातृ दर्शन' नामक पुस्तक में श्री श्री माँ के परलोकवासी भक्तों में स्व. निरंजन बाबू का उल्लेख किया है ।

मैं–वास्तव में क्या यह लड़का निरंजन बाबू है ?

मां–इसी प्रकार की बातें हुई थी ।

मैं–तुम्हारा क्या ख्याल है ?

मां–(हँसकर) पिताजी सारी बातें पक्की कर लेना चाहते हैं ।

मां के श्रीमुख से बात निकाल नहीं सका, पर मुझे लगा कि इस बात में संभवतः सत्य है ।

गुरु पर निर्भर, शून्यवाद

मैं–मां, गुरु पर निर्भरता कैसे आती है ? निर्भरता आने पर संसार–यात्रा सुगम हो जाती है तब कोई डर नहीं रहता ।

मां–एक लक्ष्य रहने पर गुरु पर निर्भरता आ जाती है । सर्वदा उनकी बातों की चिन्ता करना, ध्यान, जप, नाम आदि को लेकर रहना, सर्वदा एक भाव में चिन्तन करने पर ही निर्भरता आ जाती है ।

मैं–चिन्तन के द्वारा जो निर्भरता आती है, मैं उसे नहीं चाहता। इस प्रकार की निर्भरता मन का विकार जैसा संदेह होता है । बिना किसी रूप की चिन्ता किये मैं निर्भरता चाहता हूँ। नाम की शक्ति के जरिये क्या निर्भरता नहीं आती ? अपने प्रयत्नों के द्वारा अर्थात् चिन्ता के माध्यम से कोई वस्तु प्राप्त करने पर वह विशुद्ध नहीं होती, उसका प्रमाण मेरा गुरु भाई है। उन्होंने ध्यान करते हुए सोचा कि उन्हें निर्विकल्प समाधि प्राप्त हुई है, पर वास्तव में उनको प्रकृत समाधि प्राप्त नहीं हुई । उन्होंने प्रकृत समाधि प्राप्त नहीं कर सके हैं, यह कहने पर उन्हें विश्वास नहीं होगा ।

माँ–देखो, एक लक्ष्य होकर रहना ही है मन का स्वाभाविक भाव । चंचलता और विक्षिप्तता मन की विकृत अवस्था है । इधर तुम अपने गुरु भाई को जितनी छोटी दृष्टि से देख रहे हो, वास्तव में वह उतना छोटा नहीं है । मनुष्य अनेक पुण्य प्राप्त कर इस अवस्था को प्राप्त करता है । यह अवस्था भी एक खूब ऊँची अवस्था है ।

मैं–इस प्रकार की अवस्था को मैं पसन्द नहीं करता । जो शास्त्र को झूठ समझता हो, गुरु को मूर्ख कहते हैं, सभी विषयों पर सामंजस्य रखते हुए बात नहीं कर पाते, ऐसे व्यक्ति को मैं महान् नहीं समझ सकता ।

माँ–सभी विषयों पर सामंजस्य रखते हुए बातें करना, दुर्लभ अवस्था होती है । अनेक पुण्यफल रहने पर मनुष्य को यह अवस्था आती है । इसके अलावा पिताजी ने जिस अवस्था को प्राप्त किया है, उसे भी लोग भाग्य के कारण प्राप्त कर पाते हैं । कल ही तुम्हें मैंने बताया कि पिताजी की इन दिनों खण्डन की अवस्था है । समस्त संस्कारों को खण्ड–खण्ड करते हुए एक लक्ष्य हो गया है । तुम यह देख रहे हो कि पिताजी गुरु से अश्रद्धा रखते हैं, पर मेरा कहना है कि वह क्रोध या अश्रद्धा नहीं है । वह तो भक्ति या अनुराग के लक्षण हैं। तत्व ही पिताजी के एकमात्र गुरु हैं । उस तत्व के प्रति अगर कोई अश्रद्धा प्रकट करता है तो पिताजी नाराज हो जाते हैं । जो लोग इस स्थिति तक नहीं पहुँचे हैं, वे इसे अच्छी तरह नहीं समझ सकेंगे।

मैं–वे तो शून्यवादी हैं । भगवान आदि को कुछ भी नहीं मानते ।

माँ–शून्यवाद के नाम पर एक वाद है । अनेक महापुरुष इसी मार्ग पर शान्ति प्राप्त करते हैं, इसलिए यह हेय कैसे हुआ ?

मैं–मैं ऐसी शून्यता नहीं चाहता ।

माँ–तुम क्या चाहते हो ?

अब मैं सोचने लगा कि मैं वास्तव में क्या चाहता हूँ । कुछ देर चुप रहने के बाद मैंने कहा–"मैं सृष्टिस्थिति के सभी रहस्यों को जानना चाहता हूँ ।"

माँ–जो अखण्ड शून्यता प्राप्त करता है, वही यह ज्ञान प्राप्त कर उसमें प्रवेश करता है। शून्यता खण्ड हो सकता और अखंड भी हो

सकता है । पिता जी (मेरे गुरु भाई) इन दिनों खंड शून्यता में हैं। जो अखंड शून्यता प्राप्त कर लेता है, उसके निकट विश्व का कोई रहस्य गुप्त नहीं रहता ।

योग विभूति, धर्म के साथ विभूति का सम्बन्ध

माँ–कल तुम्हें बता चुकी हूँ कि कुण्डलिनी–शक्ति जाग्रत होने के साथ ही सभी ग्रन्थियों में भेद होना प्रारम्भ हो जाता है । ग्रंथि भेद के साथ केवल नाना रूपों के दर्शन ही नहीं होते बल्कि अनेक अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति होती है । इन शक्तियों को काफी सावधानी से छिपाकर रखना पड़ता है। प्रकट करने पर धर्म पथ पर अग्रसर नहीं हुआ जा सकता और शक्ति भी लोप हो जाती है ।

मैं–क्या सभी समय ऐसा होता है ? काशी के विशुद्धानन्द परमहंसदेव जो पिछले तीस वर्ष से नाना प्रकार की योग विभूतियाँ दिखा रहे हैं, उनकी शक्ति क्षीण होने के लक्षण तो नहीं दिखाई दे रहे हैं ।

माँ–पिता जी की बात ही अलग है । उनकी विभूति भला क्षय होगी ?

मैंने बाबा विशुद्धानन्द के निकट जितने विभूतियों के खेल देखा था, उसमें से कुछ का वर्णन किया । उसे सुनकर माँ बोली –"इन विभूतियों को देखकर तुम्हें क्या लाभ हुआ ? पिताजी के निकट तुम इन विभूतियों को देखने की इच्छा प्रकट मत करना। हो सके तो कहना कि वे तुम्हें धर्म मार्ग में कुछ अग्रसर कर दें।

माँ–मैं बाबा के निकट ऐसा क्यों कहने जाऊँगा? तुम्हीं क्यों नहीं कर देती ? लड़कों का दुलारपन माँ के निकट अधिक होता है। मेरे लिए तुम क्या कर रही हो?

माँ-(हँसकर) यह सब करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मेरे भीतर कोई संस्कार नहीं है। अगर संस्कार रहता तो मैं करती। लेकिन पिताजी के पास संस्कार है और बाबाजी में शक्ति भी है।

माँ की बातें सुनकर मैं चुप रह गया। इस तरह की बातें पहली बार नहीं सुन रहा हूँ। माँ बराबर कहा करती हैं कि उनकी कोई इच्छा अनिच्छा नहीं है। जो होना होता है, वह अपने आप उनके शरीर के भीतर हो जाता है। लोग इस भाव को समझ नहीं पाते। फलतः वे सोचते हैं कि माँ कुछ करेंगी नहीं, इसलिए ऐसा कहती हैं।

मैं-माँ, विभूति से धर्म का क्या सम्बन्ध है?

माँ-तुम लोग जागतिक ज्ञान के लिए पढ़ते-लिखते हो। शिक्षा प्राप्त करने पर तुम लोग कविता लिख सकते हो या भाषण दे लेते हो जबकि उक्त कविता या भाषण तुम लोगोंने किसी पोथी-पुस्तक में पढ़ा नहीं है। कविता लिखने और भाषण देने आदि में जिस प्रकार को विद्वत्ता का परिचय मिलता है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर कुछ लक्षण प्रकट होते हैं। विभूतियाँ वही लक्षण हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करने पर विभूतियाँ निश्चित आयेगी। विभूतियाँ तीन प्रकार की होती हैं - उत्तम, मध्यम, अधम। यदि विभूतियाँ स्वभाव में चली जाँय तो वही उसका उत्तम प्रकाश होता है। विभूति में स्थिति प्राप्त करना माध्यम प्रकाश होता है। इसके अलावा अन्य रूप प्रकाश अधम होता है।

आज आश्विन की २८वीं तारीख है। श्री श्री माँ के आहार का दिन । हम लोग प्रसाद प्राप्त करने के लिए निमंत्रित हुए। दोपहर को होटल में जाकर स्नानादि से निवृत्त होकर वापस आये। चिन्ताहरण बाबू[१] ने माँ को भोग दिया। जब हम लोग प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठे तब माँ एक आराम कुर्सी पर बैठी मुस्कराती हुई हम लोगों का

१. श्री चिन्ताहरण समाद्दार। बारिशाल जिला के निवासी। पुलिस विभाग में नौकरी करते हैं। छुट्टी लेकर मां के साथ घूमने आये है। माँके पुराने भक्त हैं ।

भोजन करना देखने लगीं। एक ओर माँ अनन्त स्नेहमयी और दूसरी ओर अनासक्ता ।

भोजन के बाद हम लोग माँ के पास जाकर बैठे। तरह–तरह की बातें होने लगीं। कुछ देर बाद कोई एक व्यक्ति आकर कहने लगा कि चिन्ताहरण बाबू की पत्नी रो रही हैं।

माँ ने पूछा – "क्यों रो रही है?"

शंकरानन्द स्वामी ने कहा – 'तुमने उसे कहा था कि वह कुछ काम काज नहीं करती। चिन्ताहरण बाबू नौकरी करते है और घर का कामकाज भी। यह कहकर ज्योतिष बाबू ने मजाक किया तो वे रो पड़ी।"

यह सुनकर माँ ने कहा – "यह ज्योतिष की कारस्तानी है। वह इसी प्रकार कोंचीकोंचा करता है।"

माँ की बातें सुनकर ज्योतिष बाबू के साथ हम लोग हँस पड़े। चिन्ताहरण बाबू ने भी साथ दिया। माँ ने कहा – "उसे (चिन्ताहरण बाबू की पत्नी) मेरे पास ले आओ।"

एक व्यक्ति चिन्ताहरण बाबू की पत्नी को पकड़ ले आया। माँ ने हँसते हुए पूछा – 'माँ, तुम क्यों रो रही हो ?'

माँ बार–बार यही प्रश्न पूछती रहीं और वह उत्तर देने के बजाय और तेज रोने लगी। परिस्थिति अनुकूल न देख माँ ने कहा – "इसे एक गिलास ठण्डा पानी पीने को दो। बेहोश हो सकती है"

जब तक पानी आये, उसके पूर्व ही वह बेहोश होकर माँ के सामने गिर पड़ी। माँ ने उसके सिर पर हाथ रखा। इतनी बड़ी घटना हो गयी, पर किसी के चेहरे पर परेशानी के सिकन नहीं आई। सभी यथास्थिति बैठे रहे। माँ के निकट आने पर लोगों में एक निश्चिन्त भावना रहती है।

माँ चिन्ताहरण बाबू की सरलता की प्रशंसा करने लगीं। चिन्ताहरण बाबू की पत्नी हमेशा बीमार रहती हैं। सांसारिक काम–काज नहीं कर पाती। दूसरी ओर चिन्ताहरण बाबू मुस्तैद आदमी हैं। वे सब कुछ चला लेते हैं। चिन्ताहरण बाबू की पत्नी को इस बात का दु:ख बना रहता है कि वे अपने पति की सेवा ठीक से नहीं कर पातीं। उल्टे अस्वस्थता के कारण पति की सेवा ग्रहण करती हैं। इस तरह की बातें होती रहीं।

संस्कारोपयोगी शिक्षा की आवश्यकता

चिन्ताहरण बाबू की पत्नी को हिस्टीरिया की बीमारी के बारे में माँ कहने लगी – ''इसका संस्कार अच्छा था, पर स्वाभाविक भाव से विकास न हो पाने के कारण आज इस स्थिति में आ गयी है। बच्चों में भी धर्म–संस्कार रहते हैं, पर माता–पिता उसे समझ न पाकर उसे अन्य मार्ग पर ले जाने की कोशिश करते हैं जिसका परिणाम अच्छा नहीं होता। संभवतः ऐसे बच्चों को कठिन रोग हो जाता है। अक्सर उन्माद रोग हो जाता है। बच्चों को बचपन से ही धर्म–शिक्षा देनी चाहिए। तुम लोग बच्चों को बचपन से ही पढ़ने–लिखने के लिए कितना प्रयत्न करते हो, ताकि बड़ा होकर वह उपार्जनशील हो सके, लेकिन उन्हें धार्मिक–शिक्षा नहीं देते हो। अभी उस दिन एक प्रोफेसर साहब वर्तमान युग के अनाचार तथा उच्छृँखलता की चर्चा करते हुए अफसोस प्रकट कर रहे थे। मैंने उनसे कहा कि यह सब युग की हवा है। कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। प्राचीनकाल में हिन्दुओं के जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया था। आजकल वह सब नहीं है। सभी आश्रमों की जड़ ब्रह्मचर्य आश्रम है, इसका लोप हो गया है। इसके अभाव में शेष आश्रम भी गड़बड़ा गये हैं। माता–पिता का असंयम ही सन्तानों में प्रवेश कर गया है। ऐसी हालत में बच्चे असंयमी हैं, कहकर खेद प्रकट करने से क्या लाभ ? आवश्यकता है – धर्म शिक्षा की। अर्थ प्राप्ति के लिए शिक्षित बना रहे हो, उनके साथ ही धर्म शिक्षा की आवश्यकता है।

(चिन्ताहरण बाबू को लक्ष्य कर) तुममें एक गोपन भाव है। इस भाव को बचपन से ही अगर धर्म–मार्ग की ओर मोड़ दिया जाता तो धर्म के सम्बन्ध में तुम समझदार बन जाते, किन्तु उसे सांसारिक विषय की ओर मोड़ दिया गया, इसीलिए सांसारिक विषय में तुम कार्यपटु हो गये हो। (मुझे लक्ष्य कर) पिताजी में भी एक शान्त गंभीर भाव था। अगर इस भाव को बचपन से धर्म–पथ पर चलाया जाता तो इन्हें शान्ति प्राप्त होती। आजकल के माता–पिता धर्म के नाम से डरते हैं। वे यह सोचते हैं कि अगर इन्हें धार्मिक शिक्षा दी गयी तो ये घर से भाग जायेंगे। वे यह नहीं समझते कि कितने लोगों को संन्यास ग्रहण करने का अधिकार है और कितने लोग संन्यासी बनकर गृहत्याग कर रहे हैं, जिन लोगों में संन्यासी बनने के संस्कार हैं, हजार प्रयत्न करने पर भी उन्हें गृहस्थ नहीं बनाया जा सकता।''

लावण्य की बचपन की बातें – स्पर्श से शक्ति संचार

संस्कारोपयोगी शिक्षा की चर्चा करती हुई माँ ने बाबा भोलानाथ की भतीजी का उल्लेख किया। माँ ने कहा – ''भोलानाथ की एक भतीजी थी। उसका नाम लावण्य था। बचपन से ही वह मुझे बहुत मानती थी। अगर उसकी माँ कंघी–चोटो करती तो उसे पसन्द नहीं आती। अपनी चोटी खोलकर पुनः मेरे पास बनवाने आती। उसकी इच्छा रहती थी कि वह हमेशा मेरे पास रहे, पर उसकी माँ इतना मेलजोल पसन्द नहीं करती थी। लावण्य अक्सर मुझसे कहती– ''तुम्हें माँ कहने की मेरी इच्छा होती है।'' यह बात वह अपनी माँ से भी कहा करती थी। इस पर माँ उसे धमकाती – 'कहीं काकी को माँ कहा जाता है ?' बहरहाल उसका विवाह हो गया। विवाह के काफी दिनों बाद मेरी मुलाकात उससे हुई। उन दिनों मेरी एक अन्य अवस्था थी। कीर्तन सुनते ही यह शरीर न जाने कैसा हो जाता था। भाव में इधर–उधर झूमते हुए गिर जाने लगता। एक दिन सिद्धेश्वरी आश्रम

में कीर्तन हो रहा था। मैं भावावस्था में खड़ी होकर झूम रही थी, एक–दो बार गिरते–गिरते रह गयी। यह देखकर लावण्य ने सोचा कि मैं खड़ी–खड़ी गिर जाऊँगी। कहीं चोट न लग जाय, इसलिए वह मुझे पकड़ने गयी। लेकिन ज्योंही उसने मुझे स्पर्श किया त्योंही उसकी एक अद्‌भुत स्थिति हो गयी। मुँह से 'हरिबोल–हरिबोल' कहती हुई जमीन में लोटने लगी। इस दृश्य को देखने के लिये वहाँ कोई मौजूद नहीं था। सभी लोग मुझे लेकर परेशान थे। इधर मैं भावावेश में आश्रम से सिद्धेश्वरी चली आयी। सभी लोग मेरे साथ–साथ आये। उधर लावण्य अकेली फर्श पर लोटती हुई 'हरिबोल–हरिबोल' कहती रही। काफी देर तक जमीन में लोट–पोट करने के कारण गर्द–कीचड़ से सन गयी थी। सहसा उसे देखकर कोई पहचान नहीं सकता था। इसी बीच अखण्डानन्द जी (शशांक बाबू) न जाने किस कार्य से आश्रम में गये। आश्रम में उस वक्त एक भी आदमी नहीं था। अचानक उन्हें 'हरिबोल–हरिबोल' की आवाज सुनाई दी। वे चारों ओर देखने लगे। आवाज काफी धीमे स्वर से आ रही थी, इसलिए वे यह समझ नहीं पा रहे थे कि आवाज किधर से आ रही है। कुछ देर तक स्थिर होने के बाद उन्हें पता चला कि मिट्टी के ढूह के पास से यह आवाज आ रही है। जब वे मिट्टी के ढूह के पास पहुँचे तो देखा कि वह मिट्टी का ढूह नहीं, मिट्टी–कीचड़ से सरावोर कोई है। पानी से चेहरा साफ करने के बाद देखा गया कि वह तो हमारी लावण्य है। इधर तबतक मेरा भाव गायब हो गया था, पर लावण्य में था। वह केवल 'हरिबोल' कहती रही। उसमें यह भाव २–३ दिनों तक था। यह दृश्य देखकर लावण्य की माता चिंतित हो उठी और मुझसे नाराज हो गयी। उसने कहा 'इसीलिए मैं उसे तुम्हारे पास जाने नहीं देती थी। देखो, लड़की की क्या हालत हो गयी। अब मेरी लड़की को ठीक कर दो।' मैंने कहा–'खराबी क्या है ? लावण्य तो सिर्फ हरि का नाम ले रही है।' यह सुनकर वह और ''नाराज हो उठी। बोली –'यह सब मैं नहीं

समझती। उसकी अपनी गृहस्थी है। यह सब करने से उसका चलेगा कैसे ? उसे ठीक कर दो।''

इस कहानी को सुनकर मैंने कहा– ''माँ, चैतन्य महाप्रभु की जीवनी में पढ़ चुका हूँ कि महाप्रभु की भावावस्था में एक मछुए ने उन्हें स्पर्श किया और इसी प्रकार की स्थिति में हो गया था।''

माँ–सभी की यही स्थिति हो सकती है। इसमें ऊँच–नीच का सवाल नहीं है।

मैं–माँ, इसे शक्ति-संचार कहते हैं न ?

माँ ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

शशांक बाबू का संन्यास–ग्रहण

तरह–तरह की बातों में शशांक बाबू के संन्यास–ग्रहण की चर्चा चल पड़ी। शशांक बाबू में संन्यास–ग्रहण करने का झुकाव था। इसके अलावा उनके संन्यास–ग्रहण के पूर्व माँ ने उन्हें संन्यासी के भेष में देखा था। शायद इसीलिए उन्हें विंध्याचल से हरिद्वार बुलवाकर थोड़े समय के भीतर संन्यास–ग्रहण करने का आदेश माँ ने दिया था। संन्यास–ग्रहण करने का न तो कोई आयोजन था और न यही निश्चित था कि किससे संन्यास–ग्रहण कराया जायगा। माँ ने सिर्फ इतना ही कहा – अगर अमुक दिन के भीतर तुम्हारा संन्यास हो गया तो ठीक, वर्ना फिर कभी नहीं हो सकेगा। अब तुम लोग इसके लिए प्रयत्न करो।''

कर्मवीर शंकरानन्दजी गुरु की तलाश में निकले। पहले एक व्यक्ति का चुनाव हुआ, पर उनकी उम्र कम होने की वजह से सुप्रसिद्ध मंगल गिरि महाराज को गुरु पद पर वरण किया गया। इनके निकट शशांक बाबू ने विधि पूर्वक संन्यास–ग्रहण किया। तभी से आपका नाम अखण्डानन्द गिरि हुआ।

माँ ने कहा– ''अच्छा ही हुआ। पिताजी गिरि संप्रदाय में भुक्त हुए। ढाका का आश्रम भी गिरि सम्प्रदायवालों का है।''

शुद्धभाव का प्रशस्त भोग

बातचीत के सिलसिले में माँ ने मेरी पत्नी से कहा–"माँ, तुम मेरे लिए क्या लायी हो ?"

अर्थात् कलकत्ता से माँ के भोग के लिए कुछ लायी हो या नहीं ? इस वक्त इसी विषय की चर्चा हो रही थी कि कौन क्या लाकर माँ को भोग देता है। मेरी पत्नी ने कहा – "माँ, मैं तो कुछ भी नहीं लायी हूँ।"

माँ ने कहा – "तुम लोग अपने साथ जो शुद्ध भाव ले आयी हो, उसी से मैं सन्तुष्ट हूँ। इसके अलावा मुझे जो कुछ खिलाया जायगा, वह तो बाहर हो जायगा। तुम लोगों में शुद्ध भाव और शुद्ध चिन्ता होने से ही मैं तुष्ट हो जाती हूँ।"

सती की शिवपूजा

१६ अक्टूबर, १९३५ ई०। आज मेरी कन्या सती शिव पूजा करेगी। भ्रमर को शिव–पूजा करते देख सती की भी शिवपूजा करने की इच्छा हुई जबकि इन दिनों उसकी उम्र आठ वर्ष है। श्री श्री माँ से कहने पर उन्होंने पूजा का सारा आयोजन करवा दिया। कल यह तय हुआ था कि स्वामी शंकरानन्द जी चिन्ता–हरण बाबू की लड़की के साथ सती को भी शिवपूजा की शिक्षा देंगे। फूल, विल्वपत्र आदि का प्रबन्ध वे यहाँ से कर देंगे। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं करना है। सवेरे होटल में गरम पानी से पत्नी और सती ने स्नान किया। यहाँ क्वार–कार्तिक के महीने में सवेरे के वक्त इतनी सर्दी पड़ती है कि ठंडे पानी से स्नान करना संभव नहीं है।

जब हम लोग पहुँचे, उसके कुछ देर बाद चिन्ताहरण बाबू की पत्नी अपनी पुत्री के साथ वहां आयीं। लड़कियाँ पूजा का प्रबन्ध करने के बाद माँ को बुलाने गयीं। भ्रमर जिस गुफा में शिव–पूजा करती रही, माँ के साथ हम लोग उस गुफा में गये। स्वामी शंकरानन्द जी इन लोगों

से पूजा करवाने का प्रबंध करने लगे। भ्रमर की पूजा वाले दिन माँ जहां बैठी थीं, आज भी वहीं बैठीं। उस दिन जिस प्रकार पूजा के बारे में निर्देश देती रही, आज उसी प्रकार उपदेश देने लगी। मैंने गौर किया कि वयोवृद्ध पके बालों–वाले स्वामीजी से भी कहीं अधिक इस दिशा में माँ की कितनी तीक्ष्ण दृष्टि है। सती फ्राक पहनकर बैठी थी।

माँ ने कहा–'कटे वस्त्र पहनकर पूजा में नहीं बैठना चाहिए।'

सती के लिए एक साड़ी देने को माँ ने भ्रमर को आदेश दिया। भ्रमर सती को साथ ले गई और थोड़ी देर बाद साड़ी पहनाकर वापस ले आई। ज्योंही स्वामीजी पूजा करने की तैयारी करने लगे, त्योंही माँ ने कहा–'एक वस्त्र में पूजा नहीं होती। सभी लोगों को एक–एक चादर दो।'

चादर कहाँ से लानी है, माँ ने यह भी बता दिया। यह सब देखकर मैंने सोचा कि जो पूर्ण हैं, वे सभी ओर से पूर्ण हैं। वैषयिक या आध्यात्मिक मामले में माँ की दृष्टि में सभी एक पर्याय–भुक्त हैं। इसीलिए विजय व्यास नामक एक भक्त को माँ ने कहा था–"तुम लोग जब जो कुछ करोगे, उसे शरीर–मन–प्राण देकर करोगे। बेगार या असावधानी से कोई कार्य नहीं करना चाहिए।"

क्षुद्र बृहत् के बारे में भेदाभेद में प्रयत्नों का तारतम्य माँ के अभिधान में नहीं है। अपने जीवन की नाना प्रकार की घटनाओं का उल्लेख करती हुई माँ यह सब बातें ढाका में बता चुकी हैं। उन उपदेशों को कैसे कार्यान्वित कर रही है, इस वक्त उन्हें देखकर जैसे वे सब जीवन्त हो उठे।

महिलाओं की पूजा क्रमशः चलती रही। हम लोग बैठे देखते रहे। दो–चार स्थानीय महिलाएँ माँ से मुलाकात करने आयीं। इनके अलावा कुछ पुरुष भी आये। इनमें जो वयोज्येष्ठ था, लक्ष्मीबाई आगे बढ़कर उनके कलेजे पर सिर रखकर खड़ी हो गयीं। मैंने सोचा कि

शायद उनके पति हैं। इस क्षेत्र की महिलाएँ शायद सभी के सामने पति को ग्रहण करने में संकोच नहीं करतीं। माँ मेरे मन के भाव को समझकर बोलीं–'लक्ष्मी का बड़ा भाई आया है।'

भाई–बहन के भीतर का भाव बड़ा मधुर लगा। ठीक इसी समय अनेक महिलाएँ आयीं। गुफा में स्थानाभाव हो जाने के कारण मैं बाहर चला आया। माँ ने यहीं भोजन बनाकर खाने का आदेश दिया, पर असुविधा देखकर मैं होटल में आ गया। भ्रमर कुमारी–पूजा करेगी जानकर सती को छोड़ आया।

सत्ययुग आ रहा है

होटल में स्नान–भोजन करने के बाद पुनः माँ के पास चला आया। यहां आकर सुना कि गुफा में जिस वक्त पूजा का कार्यक्रम हो रहा था, वहाँ एक महिला की गोद में एक शिशु को देखकर माँ ने उसका नाम बटुक भैरव रखा है।

यह सुनकर मैंने माँ से पूछा–'माँ, सुना है कि तुमने किसी बालक का नाम बटुक भैरव रखा है?'

माँ – (हँसकर) लड़कियां जब पूजा कर रही थीं तब मैंने गोद के बच्चे को देखकर कहा था कि कुमारियों का पूजा ग्रहण करने के लिए बटुक भैरव आये हैं।

मैं – तुम जो देव–देवियों का नाम इन बच्चों को दे रही हो, क्या इसका कारण यह है कि देवता ने पुनः जन्म ग्रहण करना प्रारम्भ किया है?

माँ – देवता तो हैं ही, वे पुनः जन्म ग्रहण क्या करेंगे?

मैं – सुना कि सत्य युग पुनः आ रहा है? अगर यह ठीक है तो देवतागण जन्म ग्रहण कर सकते हैं, इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

माँ – सत्ययुग अभी नहीं आया है, पर शीघ्र ही आ रहा है। वह हम लोगों के सामने है और उसकी आँच हम लोगों के शरीर में लग रही है।

मैं – उसकी आँच लग रही है, इसे हम कैसे समझ सकते हैं?

माँ – जब सर्वत्र यह देखोगे कि सत्य क्या है, इसे जानने की पिपासा जाग उठी है। धर्म के भीतर कुछ है या नहीं? यज्ञोपवीत ग्रहण करने की उपयोगिता है या नहीं? इस तरह के प्रश्न आजकल के लड़कों के मन में उत्पन्न हो रहे हैं। ये लक्षण अच्छे हैं।

माँ की बातें सुनकर मुझे श्री सी.एफ.एण्ड्रुज की बातें याद आ गयीं। उन्होंने अपनी What I Owe to Christ नामक पुस्तक में लिखा है कि उन्होंने विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने के बाद देखा कि ईसाई–धर्म में किसी प्रकार का स्थायी सत्य है या नहीं, इसे जानने के लिए वर्तमान समय में सर्वत्र हर प्रकार के लोगों में उत्सुकता उत्पन्न हो गयी हैं।[1] अगर सत्ययुग आया तब संसार में सर्वत्र आयेगा। क्या यह सत्य है, यह जानने के लिए ही यह उत्सुकता है।

---

1. There are very many men and women in all countries, among the new generation, who are seeking to find a sure foundation for their christian faith amid conflicting currents of modern thought. They fully understand the impossibility of building up the future structure of society on a purely material basis, and they have a deep reverence for the great spiritual achievements of the past. But at the same time they are unable any longer to bow down to traditional authority either in practice or belief. Their own conscience commands them to prove all things and to hold fast that which is good. They feel the need, almost desparately at times, of a personal Guide to lead them on their ways, and they are ready to offer devoted allegiance to One who is truely their Lord and Master. Yet they hesitate in honest intellectual bewilderment to surrender their heart to Christ." - Andrews.

दीक्षा, बीज, नाम

माँ के यहाँ आने पर यह भी सुना कि दोनों जून जप करने के लिए माँ ने सती को नाम दिया है। मैंने माँ से पूछा–"माँ, क्या तुमने दोनों वक्त जप करने के लिए सती को नाम दिया है?"

माँ–हाँ, नाम दिया है, पर वह दीक्षा नहीं है।

मैं–दीक्षा किसे कहते हैं?

माँ–गुरु जब बीज देते हैं तब दीक्षा होती है।

मैं–तुम दीक्षा के साथ बीज को क्यों जोड़ रही हो? क्या केवल नाम से दीक्षा नहीं होती?

माँ–शिष्य में बीज का संस्कार रहने पर गुरु दीक्षा के समय बीज देते हैं।

अब आगे दीक्षा के बारे अन्य कोई प्रश्न नहीं पूछा। मुझे यह जानने की उत्सुकता हुई कि सती को माँ ने कौन सा नाम दिया है। मुझे विश्वास हो गया कि माँ अगर कोई नाम बतायी होंगी तो मैं उसीको दीक्षा समझ लूंगा। लेकिन मुझे यह बात अच्छी तरह मालूम है कि आज तक माँ ने किसी को कोई नाम नहीं दिया है। इसलिए मैंने माँ से कहा–"अच्छा, मैं उसे (सती को) कोई नाम जप करने को कहूँ और तुम उसे कोई नाम जपने को कहो तो इन दो प्रकारों में कोई प्रभेद होगा या नहीं? तुम्हारी बातें तो शक्तिपूर्ण होती हैं।"

माँ–प्रभेद तो होगा ही। लेकिन तुम यह मत समझ लेना कि मैंने उसे कोई नाम बताया है। पूजा समाप्त होने के बाद शंकरानंद ने उन लोगों को एक नाम जपने को कहा, तब मैंने उन लोगों से कहा–'तुम लोग यही नाम दोनों वक्त जपते रहना।'

मैंने गौर किया कि मेरा अनुमान सत्य है। माँ नाम देनेवाली पात्र नहीं है। तब मैंने माँ से कहा–'तुम भागने का मार्ग बनाकर सब काम करती हो।'

माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोलीं–'पिताजी कैसे घुमाफिराकर सवाल करते हैं।'

मैं – बीज न पाने पर क्या नाम से काम हो जाता है?

माँ – हाँ, नाम से होता है। क्या तुमने नहीं देखा कि छोटे बच्चे 'माँ' नहीं कह पाते? लेकिन यही बच्चे जब रोने लगते हैं तब माँ समझ जाती हैं कि बच्चा उसे बुला रहा है। यही बच्चे बड़े होने पर माँ को न बुलाकर जब रोते है। तब माँ नहीं समझ पाती कि बच्चा उसे बुला रहा है। इसी प्रकार अज्ञान स्थिति में किसी भी नाम से भगवान को बुलाये, उसे वे जान लेते हैं।

बच्चों को धर्म–पथ पर ले जाना चाहिए

इसके बाद माँ सती के बारे में बातें करने लगीं। उन्होंने कहा–'तुम लोग कुमारी–पूजा के समय नहीं थे। अगर रहते तो एक तमाशा देखते। भ्रमर जब इनकी पूजा करती रही तब उसके (सती के) मुख की ओर देखा तो एक दिव्य आभा प्रस्फुटित हो रही थी। यह पूजा के गुण थे। अगर तुम लोग भावों के द्वारा पूजा करो तो जिसकी पूजा करोगे, उसमें भी वही भाव प्रस्फुटित होंगे। उसकी पूजा जब हो गयी तब वह बहुत प्रसन्न थीं और हँसती हुई मुझसे बोली–'माँ, क्या मैं प्रत्येक रविवार को शिवपूजा करूँ?' ढाका में रहते समय कभी वह मुझसे बातचीत नहीं की। केवल काकुल की आड़ से मुझे देखा करती थी। लेकिन आज पूजा के बाद उसकी लज्जा दूर हो गयी और मुझसे उक्त प्रश्न उसने पूछा। मैंने कहा–'तेरा मन पूजा करने को हो तो करना। पर शिवपूजा के लिए प्रशस्त दिन है–सोमवार। तुझे तो स्कूल जाना पड़ता है अतएव तू रविवार को पूजा कर सकती है और अगर छुट्टी रहे तो सोमवार को करना।'

मैं – अगर पूजा करना है तो बताओ। मैं काशी जाकर उसके लिए वाणलिंग ले जाऊँ। मुझे तो काशी जाना ही है।

माँ – नहीं, तुम्हें यह सब करने की जरूरत नहीं है। वाणलिंग ले जाने पर नित्य पूजा करना पड़ेगा। उसे तो रोज पूजा करना नहीं है। उसकी जिस दिन इच्छा होगी, उस दिन सारा प्रबन्ध कर देना। किसी विषय पर जोर नहीं देना चाहिए। जिससे समस्त चीजें अपने आप स्पष्ट हो जाँय, वही करना चाहिए। देखो होगा, पेड़ पर जो फल पककर फट जाता है, वही खाने में सब से मधुर लगता है। उसी प्रकार बच्चों में अच्छी वृत्तियां अपने आप प्रकट होने देना उचित है। माता–पिता का कर्तव्य है कि जिससे यह सब प्रकट हो, सहायता करनी चाहिए, पथ–रोध नहीं करना चाहिए। कल तुमने उसकी शिवपूजा के बारे में प्रश्न किया था। उस समय मैंने कहा था कि पहले पूजा हो जाने दो, बाद में देखा जायगा। अब तो मैं यह देख रही हूँ कि वह स्वयं ही पूजा के बारे में प्रश्न कर रही है।

मेरी इच्छा अप्रतिहत

इसके अलावा तरह–तरह की बातें चलती रहीं। पता नहीं किस बात पर मैंने माँ से पूछा–"माँ, कोई जो काम नहीं कर सकता, उसे वही काम करने का आदेश देती हो।"

माँ – यह सवाल क्यों कर रहे हो?

मैं – ढाका के आश्रम में एक दिन एक कुली को कटहल के पेड़ के नीचे सूर्यास्त तक नाम करने को तुमने कहा था। क्या तुम यह नहीं जानती थी कि उससे यह नहीं हो सकेगा। नलहाटी में जिन दिनों तुम थीं, उन्हीं दिनों अटल बाबू[१] को अपने निकट आकर रहने

१. श्रीयुक्त अटल बिहारी भट्टाचार्य एम.ए.। आप राजशाही कालेज के अध्यापक और माँ के पुरातन भक्त है।

को कहा था। क्या उस समय यह नहीं जानती थी कि अटल बाबू अपनी गृहस्थी से अलग रहने में असमर्थ हैं?

माँ – (हँसकर) तुम सारी बातें नहीं जानते, इसीलिए ऐसा कह रहे हो। मैं जिसे जो कुछ कहूँगी, उसे करने को वह बाध्य होगा। उसमें इतनी शक्ति नहीं होगी कि वह नहीं कर सकता। मेरी इच्छा अप्रतिहत है। तुमने जिस कुली की चर्चा की, वह मुझसे एक आदेश पाने के लिए परेशान कर रहा था, इसीलिए मैंने कहा था–'जाओ, उस पेड़ के नीचे बैठकर सूर्यास्त तक नाम करते रहो।' यह आदेश देते समय ही मैं जान गयी थी कि वह ऐसा नहीं कर सकेगा। रही अटल बाबू की बात, क्या तुमने कुछ सुना नहीं है?

मैं–सुना है, पर तुम्हारी जबानी सुनना चाहता हूँ।

माँ–अटल काफी दिनों से कह रहा था–'माँ, मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मेरी इच्छा होती है कि नौकरी छोड़–छाड़कर कहीं एकान्त में जाकर रहूँ।' कभीकभी वह यह भी कहता–माँ, अगर तुम आज्ञा दो तो मैं ठीक ब्रह्मचारियों की तरह जीवन–यापन करूं।' इसी प्रकार अक्सर वह मुझसे आदेश लेने के लिए तंग करता था। सन् १९३२ में जो उत्सव हुआ था, उसके एक वर्ष पहले उसने नौकरी छोडने के लिए मुझसे आदेश मांगा था। उस समय मैंने उसे एक वर्ष इंतजार करने के लिए कहा था। सन् १९३२ के उत्सव के समय जब वह ढाका आया तब उसने मुझसे कहा – माँ, क्या मेरा एक साल पूरा नहीं हुआ?' मैंने उससे कहा – 'नहीं, अभी तुम्हारा एक साल पूरा नहीं हुआ है।' साल, महीना कुछ नहीं होता। भीतर से तैयार न होने पर समय कभी नहीं होता। बहरहाल, उस वर्ष के उत्सव के बाद हम लोग ढाका से चले आये। कुछ दिन इधर–उधर घूमने के बाद हम लोग नलहाटी गये। उन्हीं दिनों अटल को नलहाटी आने के लिए भोलानाथ ने तार भेजा ताकि अटल किसी प्रकार की आपत्ति न कर सके।

उन दिनों वह छुट्टी पर था। तार पाते ही वह चला आया। लेकिन मैंने देखा कि वह केवल शरीर लेकर आया है। मन, प्राण सब कुछ छोड़ आया है। अटल ने आते ही मुझसे प्रश्न किया – 'ऐसे समय में मुझे यहां क्यों बुलाया गया है? तुम लोग कौन सी खिचड़ी पका रहे हो? क्या तुम यह नहीं जानती कि इन दिनों तुम्हारी बहू की हालत ठीक नहीं है। उसे छोड़कर मैं कैसे आ सकता हूँ?' उसके प्रश्नों का उत्तर न देकर मैंने उसकी पत्नी के स्वास्थ्य के बारे में प्रश्न किया तो पता चला कि इन दिनों वह नैहर में है। मैंने कहा – 'माताजी इन दिनों अपने बाप के घर है, वह तो अच्छी तरह है।' लेकिन अटल ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह बार–बार यही प्रश्न करता रहा कि आखिर उसे यहां क्यों बुलाया गया है?''

मैंने संक्षेप में बताया – 'यह देख लोगे।' इधर भोलानाथ की इच्छा हुई कि कुछ दिन बक्रेश्वर जाकर साधन–भजन करे। अन्त में यह तय हुआ कि भोलानाथ और कमलाकान्त बक्रेश्वर जायेंगे। अटल इस बात को सुनकर अस्थिर हो उठा। वह सोचने लगा कि अगर कमलाकान्त भोलानाथ के साथ जाता है तो उसे मेरे साथ रहना पड़ेगा। मेरे साथ उसे यहां–वहां घूमना पड़ेगा।

इस ऊहापोह में एक दिन उसने कहा–'माँ, मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता।

अब तक यह नहीं कहा गया था कि तुम्हें यहां रहना पड़ेगा। उसने अपने आप कहा कि मेरे पास वह रह नहीं सकता। इस प्रकार तुम जान गये कि अटल को अपने पास रहने का आदेश मैंने नहीं दिया। लेकिन जिस त्याग की चर्चा वह करता रहा, अब घटना चक्र के कारण समझ गया कि त्याग करने में अक्षम है। इस बार पूजा के अवसर पर उसे यहां आने के लिए पत्र लिखा गया था। उसने उत्तर दिया–''इस अभागे को अब मत बुलाइयेगा। यह अभागा ठीक है। आदि।''

मैं – नलहाटी में अटल बाबू को बुलाकर तुमने उनका दर्प चूर्ण कर दिया था। शायद इसीलिए उसे बुलाया था?

माँ ने सिर हिलाकर इसे स्वीकार किया।

उन्नत पुरुष लोगों का संस्कार समझ लेते हैं

अन्य बातों के अलावा माँ शोगी बाबा के बारे में कहने लगीं। देहरादून के समीप एक स्थान है जहां एक साधु रहता है। इस स्थान के नाम पर बाबा का नाम शोगी बाबा हो गया है। यहां शोगी बाबा बड़े प्रसिद्ध हैं और उनके अनेक भक्त हैं। माँ के भक्तों में कुछ लोगों की इच्छा हुई कि माँ एक बार शोगी बाबा को जाकर देख आयें।

माँ ने कहा – "इन लोगों का आग्रह देखकर एक दिन मैं साधुजी को देखने गयी। साधु को बिना सूचना दिये उनसे मिलने जा रही हूँ, यह सोचकर दो–चार लोग परेशान हो उठे कि कहीं साधु मेरा असम्मान न कर बैठे। इनमें से कोई आगे बढ़कर मेरे आने का समाचार साधु को देने चला गया। वह आदमी जब साधु से बातें कर रहा था, तब हम लोग भी पहुँच गये। देखा – साधु वृद्ध हैं। पैर में कष्ट है। एक भक्त उनकी मालिश कर रहा है। हम लोगों को आया देख उन्होंने अपने भक्त से एक आसन देने को कहा। जब मैं आसन पर बैठ गयी तो वे घुटनों के बल चलकर मेरे पास आये और बोले–'पति को क्यों छोड़ दिया है?"

"मैंने उनसे कहा–'पिताजी, मैंने पति का त्याग नहीं किया है। हम लोग एक साथ ढाका से रवाना हुए हैं। मेरे पति अपने काम से अन्यत्र गये हैं।"

"इसके बाद उनसे काफी बातचीत हुई। जब हम चलने लगे तब मुझे एक लाठी की ओर इशारा करते हुए बोले–'तुम्हारे साथ मेरा अनेक स्नेह है, वर्ना इसी लाठी से मारकर तुम्हें भगा देता।"

मैं – माँ, वह साधु कैसा है?

माँ – ठीक है। वे एक भाव लेकर साधन कर रहे हैं।

मैं – उनका प्रश्न सुनकर मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि काफी उन्नतस्तर के संन्यासी हैं। क्योंकि तुम्हें देखकर वे यह नहीं समझ सके कि तुम्हारी स्थिति कैसी है?

माँ – व्यक्ति को देखकर या उसकी बात सुनकर जो लोग स्थिति को समझ लेते हैं, वे उन्नतस्तर के महापुरुष होते हैं।

इसके बाद माँ एक व्यक्ति की कहानी सुनाने लगीं। वे अपने कुलगुरु के निकट दीक्षा लेकर १०–१२ वर्ष तक गुरु के आदेश से शिव–पूजा करते रहे। लम्बे अर्से तक पूजा करने के बावजूद अपने में कोई परिवर्तन न देखकर उन्हें अपनी साधना के प्रति अश्रद्धा हो गयी। एक दिन श्रीराम ठाकुर के निकट जाकर अपनी स्थिति के बारे में उन्होंने बताया। राम ठाकुर ने उन्हें एक नाम देते हुए कहा कि तुम पूजा त्याग करके इस नाम को जपते रहना। अब उस व्यक्ति की स्थिति संकटपूर्ण हो गयी। वह सोचने लगा – अगर राम ठाकुर के आदेशानुसार पूजा – त्याग करता हूँ तो गुरु वाक्य अमान्य करने के कारण नरकगामी होना पड़ेगा और पूजा का त्याग नहीं करता तो महापुरुष के वाक्य के अमान्य का प्रतिफल भोगना पड़ेगा। 'इस वक्त क्या करूं?' इस प्रकार की नाना बातों की चिन्ता करते–करते उसकी हालत चिन्ताजनक हो गयी। आहार–निद्रा त्याग दिया और एक दिन पागलों की हालत में ढाका आश्रम आया।

उससे सारी बातें सुनने के बाद माँ बोलीं – "देखो, अगर पिताजी (राम ठाकुर) तुम्हें वास्तव में पूजा–त्याग का आदेश दिया होता तो तुम्हारे अन्तर में संशय उत्पन्न न होता। उनका आदेश पाते ही तुम पूजा–त्याग कर देते। तुम्हारे मन का संशय ही बता दे रहा है कि वास्तव में उन्होंने कोई आदेश नहीं दिया था। मेरा कहना यह है कि

तुम पूजा जारी रखो और पिताजी ने जो नाम दिया है, उसे भी जपते रहो। इससे किसी के आदेश का उल्लंघन नहीं होगा।''

माँ की बातों से उस व्यक्ति की दुश्चिन्ता समाप्त हो गयी और प्रसन्नचित्त से वापस चला गया।

श्री श्री माँ का भोग

३० आश्विन, गुरुवार (१७ अक्टूबर, सन् १९३५ ई.) को ज्योतिष बाबू के साथ परामर्श करने के बाद यह निश्चय हुआ था कि अगले दिन श्री श्री माँ को भोग दिया जायगा। भोग देने के लिए मैंने कलकत्ते से केवल एक सेर मूंग की दाल मंगवायी थी। शेष सामग्री देहरादून से खरीदी गयी। ज्योतिष बाबू ने दूध का प्रबंध किया। खिचड़ी, गोभी की तरकारी, लाबरा (सबजी मिलाकर), चटनी, पायस का आयोजन किया गया। एक सेर चावल और एक सेर दाल की खिचड़ी बनी। इसी अनुपात में अन्य सामग्री बनवायी गयी। लेकिन आश्चर्य की बात यह रही कि इतने लोग इतने कम सामानों से कैसे तृप्त हुए। यह एक अविश्वसनीय बात रही। दो सेर चावल–दाल की खिचड़ी से १३–१४ व्यक्तियों का भोजन पर्याप्त नहीं हो सकता। लेकिन यह हो गया। आश्चर्य का विषय यह रहा कि मेरे सिवा और किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। मैंने ध्यान इसलिए दिया कि माँ आहार करते समय बार–बार कहती रहीं–“मैं तो सब खा गयी, बाकी लोग क्या खायेंगे ?''

माँ की यह बात सुनकर ही स्वल्प भोजन की ओर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ था।

माँ के भोग के लिए सबेरे जल्दी बाजार गया था। थोड़ी देर बाद वापस आकर माँ के पास गया तो देखा – माँ गुफा के भीतर सोयी हुई हैं। वापस लौटकर मैं पश्चिमी हिस्से के बरामदे में जाकर बैठ गया। माँ को न देख पाने के कारण मन खिन्न हो गया। सोचा,

आज भर देहरादून रहना है। आज अगर माँ के साथ बातचीत न कर पाया तो बड़ा कष्ट होगा। इसी तरह ऊहापोह में खोया सा था कि सहसा माँ आ गयीं। उन्हें देखकर मन प्रसन्न हो उठा। मैंने पूर्ण भक्ति के साथ प्रणाम किया।

माँ जब आकर बैठीं तब मेरे अलावा अन्य कोई पास में नहीं था। ज्योतिष बाबू शारदा शर्मा को देखने गये हुए थे। जब मैं देहरादून आया तभी पता लगा था कि श्रीयुक्ता शारदा शर्मा आंव की बीमारी से परेशान हैं। स्वामी शंकरानन्द एक दिन रात भर जागकर उनकी सेवा करते रहे। ज्योतिष बाबू नित्य एक बार देखने चले जाते हैं। इधर महिलाएँ माँ का भोग बनाने में व्यस्त हैं। माँ को अकेले में पाकर मैं तरह-तरह के प्रश्न करने लगा-

गुरु शिष्य किस अर्थ में साथ-साथ रहते हैं?

मैं-माँ, मेरे गुरुदेव अक्सर शिष्यों के प्रश्नों के जवाब में कहा करते थे-"मैं तुम्हारे साथ-साथ हूँ।" बाबा विशुद्धानन्द भी यही बात अपने शिष्यों को कहा करते थे। तुम भी शायद इस तरह की बात कहती हो? इन बातों का अर्थ क्या है? किस अर्थ में गुरुदेव हमारे साथ हैं?

माँ-यह सब पिताजी से क्यों नहीं पूछ लिया?

मैं-जब मेरी दीक्षा हुई तब मैं बालक था और पिताजी ने यह सब नहीं बताया था ताकि उनसे पूछता।

माँ-यह बात अनेक अर्थों में बतायी जा सकती है। अब तुम्हें बता रही हूँ। पहले विषय को अखण्ड भाव में देखो। गुरु विश्व ब्रह्माण्ड के अणु-परमाणु में व्याप्त हैं। इस अर्थ से वे तुम्हारे साथ हैं। दूसरी ओर विचार करने पर देखा जाता है कि जगत् में एक सत् वस्तु है। वे ही गुरु हैं और वे ही शिष्य हैं। गुरु-शिष्य में कोई भेद नहीं है। इस अर्थ से गुरु तुम्हारे साथ हैं। इसके अलावा गुरु मंत्ररूप में

तुम्हारे साथ हैं। इसके बाद विषय को खण्ड रूप में देखने पर देखा जाता है कि योगीगण योग के जरिये एक ही समय अनेक जगह रह सकते हैं। शिष्य के मंगल के लिए गुरु योग शक्ति के जरिये खण्ड रूप में सभी शिष्यों के साथ सर्वदा रह सकते हैं। इस रूप में समझने पर बात सत्य है।

माँ का आत्म परिचय

माँ ने जब खण्ड–अखण्ड की चर्चा की तो मैंने उनसे प्रश्न किया – "माँ, जब तुम अखण्ड रूप में रहती हो तब क्या हम लोगों को देख पाती हो?"

इस प्रश्न को सुनकर माँ जरा गम्भीर हो गयीं। बाद में कहने लगीं – 'देखो, यह सब बातें किसी के सामने नहीं कहती। सभी बातें लोगों के सामने मेरे मुँह से नहीं निकलतीं। पर तुम्हें बता दे रही हूँ। तुमने प्रश्न किया है, मेरे मुँह से उसका उत्तर निकल रहा है। शायद तुम समझ सकोगे, इसलिए ऐसा हो रहा है।'

"तुमने जो खण्ड रूप की चर्चा की, वह भी मैं ही हूँ जबकि मैं खण्ड नहीं हूँ। तुमने अखण्ड के बारे में जो कहा, वह भी मैं हूँ, पर मैं अखण्ड नहीं हूँ। मैं असीम भी नहीं हूँ, सीमा के अन्तर्गत बद्ध नहीं हूँ। मैं युगपत् दोनों ही हूँ। अगर मुझे खण्ड कहोगे तो मुझे सीमा के भीतर बद्ध करना हुआ। लेकिन मेरी सीमा नहीं है, बन्धन नहीं हैं, दूसरी ओर सभी प्रकार के बन्धन हैं। मैं खा रही हूँ, घूम रही हूँ, यह सब मेरे खण्ड भाव हैं; इसलिए मैं ससीम हूँ और दूसरी ओर मुझे आहार–निद्रा की आवश्यकता नहीं है, अतः मैं सीमा शून्य हूँ।"

आगे आप कहने लगीं – "जब कोई बच्चा मेरे पास आता है तब उसके साथ हँसी–मजाक करती हूँ। उसकी तरह हो जाती हूँ और जब कोई महापुरुष आता है तब मैं उनके अनुरूप बातें करती हूँ। कितनी आत्माएँ, केवल अच्छी आत्माओं के बारे में नहीं कह रही हूँ,

कितनी खराब आत्माएँ भी मेरे पास आती हैं, उस समय मैं उनके भाव के अनुसार बातचीत करती हूँ। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हूँ। क्षुद्र कीट–पतंग से लेकर अनन्त ब्रह्माण्ड भी मैं ही हूँ। तुमने पूछा है कि मैं अखण्ड रूप में तुम लोगों को देख पाती हूँ या नहीं। मेरा कहना है, तुम लोग ही क्यों, जिसने कभी मुझे नहीं देखा है, सुना नहीं है, उसकी आवश्यकता होने पर उसे भी मैं देख लेती हूँ, उसके अभाव को दूर कर देती हूँ।''

मैं – इससे स्पष्ट हैं कि जब हम तुम्हारे विषय में चिन्ता करते हैं तब तुम हम लोगों को देख पाती हो?

माँ – हाँ, जिस प्रकार टार्च जलाने पर समग्र चीजें देख लेते हो, तुम लोग जब मेरी चिन्ता करते हो, तब उसी प्रकार तुम लोगों की मूर्तियाँ मुझमें स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती हैं। देखो, ज्योतिष के वर्तमान विचार काफी स्पष्ट हो गये हैं।

मैं – माँ, ज्योतिष बाबू में खूब भक्ति है।

माँ – विचार, भक्ति, कर्म, ज्ञान ये चारों एकत्र रहते हैं। इनमें से कोई एक अगर जरा अधिक प्रकट होता है तो उसी के द्वारा हम लोग मनुष्य की प्रकृति को समझ लेते हैं। जिसे भक्त कहते हैं, उसमें भी तीन गुण रहते हैं। लेकिन भक्ति का भाव अधिक रहने के कारण उसे भक्त कहते हैं। ज्योतिष में इस समय विचारों के भाव अधिक हैं। वह अनवरत मेरी परीक्षा ले रहा है। उस दिन करनपुर स्थित एक मकान में होनेवाले कीर्तन में मुझे ले गया। कीर्तन सुनते समय मेरे भाव में परिवर्तन हो गया। सचमुच भाव में परिवर्तन हुआ, ऐसी बात नहीं थी, पर ज्योतिष मुझे हमेशा जिस भाव में देखता आया है, उससे अलग देखा। दूसरे लोग इस पर गौर नहीं कर सके। कीर्तन समाप्त हो जाने के बाद वापस लौटते समय ज्योतिष ने मुझसे पूछा – 'अगर तुम असीम हो तो कीर्तन सुनने के बाद तुम्हारे में भाव क्यों होता है?'

मैं – माँ, यह बात तो ठीक नहीं है। अगर प्रत्येक बार कीर्तन सुनने के बाद तुम्हारे भाव में परिवर्तन होता तो यह कहा जा सकता है कि कीर्तन द्वारा तुम सीमाबद्ध हो। अगर ऐसा नहीं है तो कैसे कीर्तन को तुम्हारी सीमा है, कहकर निर्देश किया जाय।

माँ – (सन्तुष्ट होकर) ठीक कहते हो, लेकिन इसे पकड़ नहीं सका। इस तरह कितनी घटना हुई है जब मैं कीर्तन में झूमती रही। दूसरी ओर हजार कीर्तन होने पर भी मुझमें किसी प्रकार का भाव परिवर्तन नहीं हुआ है। ज्योतिष की बातें सुनने के बाद मैंने उससे कहा – 'मैं जो सोती हूँ, आहार करती हूँ, बातें करती हूँ, क्या यह सब मेरी सीमा के चिह्न नहीं हैं? तुम ऐसा क्या कहोगे जिसमें सीमा के चिह्न नहीं हैं?'' एक दिन मैं और ज्योतिष टहल रहे थे। सहसा ज्योतिष ने कहा – 'मैं पहले ठीक था। खाता, घूमता, नौकरी करता, मन में आया तो लोगों का उपकार करता था। तुम्हारे पीछे-पीछे घूमने से क्या लाभ हुआ? तुम कौन हो? क्यों तुम्हें लोग खिलायेंगे, पहनायेंगे, तुम्हारे साथ-साथ घूमेंगे।'' इस तरह की बातें करने लगा।

मैं – तुमने क्या जवाब दिया।

माँ – मैंने कुछ नहीं कहा। मैं हँसकर चुप रह गयी।

मैं – माँ, ज्योतिष बाबू के साथ मेरी बातचीत हुई थी। तुम्हारी जीवनी लिखने के बारे में। उन्होंने जो जवाब दिया था, उसे सुनने और आज तुम्हारी बातें सुनने के बाद मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि ज्योतिष बाबू तुम्हें ठीक से समझ नहीं पाये हैं। मैंने उनसे कहा था – 'देखिये, माँ की एक जीवनी लिखनी चाहिए। आप हमेशा माँ के निकट रहते हैं। आप में भक्ति भी खूब है और लिखने की क्षमता असाधारण है। ऐसी स्थिति में आपको माँ की जीवनी लिखनी चाहिए। इस पर ज्योतिष बाबू ने कहा-'माँ की इच्छा के बिना कुछ नहीं होगा। इसके अलावा मुझे ऐसा लग रहा है कि माँ शीघ्र ही आत्म प्रकाश

करेंगी। कारण – यह देखा गया है कि माँ अक्सर अपने को प्रकट करने जाकर ठहर जाती हैं और कहती हैं कि अभी प्रकट करने का अवसर नहीं आया है। मेरा विश्वास है कि माँ की इच्छा होने पर उनकी जीवनी प्रकट होगी।' ज्योतिष बाबू की बातें सुनकर उस वक्त उनकी बातों पर मैंने ध्यान नहीं दिया था। लेकिन आज तुम्हारी बातें सुनकर समझ रहा हूँ कि ज्योतिष बाबू तुम्हें ठीक से समझ नहीं सके हैं।'

माँ – तुमने क्या समझा?

मैं – तुम्हारी बातें सुनने के बात मैंने यह समझा कि तुम स्वप्रकाश, तुम सत् हो। ऐसा समय नहीं था जब तुम नहीं थी। ऐसा समय नहीं आयेगा जब तुम नहीं रहोगी। अब अगर यह कहा जाय कि तुम महामाया या तुम काली, दुर्गा मानव मूर्ति में आयी हो, तब तुम्हें सीमाबद्ध किया जा सकता है। यह तो तुम्हारा वास्तविक परिचय नहीं होगा। तुम तो युगपत् असीम और सीमाबद्ध हो। इसलिए जो स्वप्रकाश है, उसका प्रकाश कैसा? परिचय कैसा? यही ठीक है न माँ?

माँ हंसमुख भाव से बोलीं – "तुमने जो समझा है, वही ठीक है।"

माँ की बातें सुनकर प्रसन्नता से आत्म–विभोर हो उठा और एक अनजाना आनन्द का भाव मुझे अभिभूत कर गया। मैं सोचने लगा कि कितने जन्मजन्मान्तर के पुण्य से इनका सान्निध्य प्राप्त कर सका हूँ और 'माँ' कहकर पुकारने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। अर्जुन के निकट श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार अपने स्वरूप का वर्णन किया था, ठीक उसी प्रकार का वर्णन है।

माँ की बातें सुनकर मैंने कहा – "तुमने जिस भाव की चर्चा की, इसे तो पुरुषोत्तम भाव कहते हैं?"

माँ ने कहा – "यह तुम लोग जानो।"

काशी आकर गोपीनाथ बाबू को माँ की सारी बातें बताते हुए मैंने कहा – "क्या यह सब पुरुषोत्तम भाव नहीं है?"

गोपीनाथ बाबू ने कहा – "पुरुषोत्तम के अलावा और क्या हो सकता है?"

बहरहाल इन बातों के अलावा माँ आगे कहने लगीं – तुम खोद–खोदकर प्रश्न करते हो यह सारी बातें समझ लोगे, इसलिए तुम्हें यह सब बातें बताईं।

मैं – माँ, तुम्हारी बातें समझ गया, कहना गलत होगा। यह ठीक है कि इन बातों से तुम्हारे स्वरूप के बारे में यत्किंचित् समझने का आभास प्राप्त हुआ है।

माँ – हाँ, यही ठीक है।

ठीक इसी समय कुछ लोग आ गये। हम लोगों की बातचीत बन्द हो गयी। इतने दिनों से माँ को जिस भाव में देखता आ रहा था, आज उस भाव में देख नहीं पा रहा था। बार–बार गीता की बातें याद आ रही थीं।

मैं सोचने लगा – मैं इसे किस रूप में ग्रहण करूँगा? कैसे प्रणाम करूँगा? ये तो मेरे अन्तर–बाहर विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। खण्ड रूप में देखने पर भी ये अखण्ड हैं, सामने देखने पर भी दूर हैं, बहुत दूर। ये ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य हैं। इन्हें अलग कर देने पर मेरी सत्ता कहाँ है? बैठकर आकाश–पाताल सोचने लगा। अब तक माँ के साथ हंसी–मजाक करता रहा, सोचकर मन–ही–मन अफसोस करने लगा। हाय, अब तक इस पुरुषोत्तम को किस दृष्टि से देखता रहा। आज तो मैंने सम्यक् उपलब्धि कर ली है। मैं बिन्दु हूँ, सिंधु की धारणा कैसे कर सकता हूँ? इच्छा हो रही थी कि अर्जुन की तरह कहता रहूँ –

"नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तुते सर्वत एव सर्व।"

देर तक इसी चिन्तन में रहा। कुछ लोग माँ के साथ बातें कर रहे थे, इधर ध्यान नहीं गया था। बाद में जब भीड़ छँट गयी तब माँ के साथ बातें करने लगा। अब हम काशी के खालिसपुर मुहल्ले के बारे में बात करने लगे। सारी बातें सुनने के बाद माँ ने मुझसे कहा – "उक्त माँ की उन्नत स्थिति है।"

फिर मेरी पत्नी की ओर देखती हुई माँ बोली – यह मत सोचना कि महिलाएं धर्म मार्ग में अग्रसर नहीं हो सकतीं। देखती नहीं, आजकल न जाने कितनी महिलाओं के बारे में सुनने में आता है।

इसी समय स्वामी शंकरानन्द भोजन करने के लिए बुलाने आये। हमलोग भी माँ के पास बैठकर माँ का भोजन देखने लगे। माँ के भोजन के बाद हम लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया।

शारदा–विवाह

आहार के बाद जब हम लोग माँ के पास आकर बैठे तब मैंने कहा – "माँ, आपने शारदा के विवाह की कहानी नहीं सुनाई?"

माँ ने कहा – "अच्छा कह रही हूँ।"

ठीक इसी समय ३–४ महिलाएँ माँ के साथ मिलने के लिए आयीं। इन लोगों को आया देख मैं बड़े हाल में चहलकदमी करने लगा। थोड़ी देर बाद माँ ने कहा – "पिताजी को बुलाओ। सेवा की कहानी सुनाऊँ।"

माँ शारदा को सेवा कहकर बुलाती हैं। यही नाम रखा है। इस नाम की सार्थकता है। माँ के निकट सुना था कि श्रीयुक्ता शारदा शर्मा लोगों की सेवा करने से परम आनन्द प्राप्त करती हैं। अगर किसी को किसी प्रकार की सहायता की जरूरत होती है तो वे आहार–निद्रा त्यागकर तुरंत दौड़ जाती हैं। यहाँ तक कि अगर माँ के साथ बातें कर रही हैं। हँसी–मजाक का दौर जारी है और इसी समय कोई

आकर यह सूचना दे कि अमुक महिला को प्रसव वेदना प्रारम्भ हो गयी है तो तुरंत बातचीत बन्द कर दौड़ी हुई चली जायेंगी। इसी प्रकार का भाव उनमें है। शायद इस प्रवृत्ति को देखकर माँ ने इनका नाम 'सेवा' रखा है। इसी प्रकार माँ ने अन्य लोगों के नये–नये नाम रखे हैं। स्वामी शंकरानन्द के कई नाम हैं। जैसे वशिष्ठ, नारद, दुर्वासा आदि। बहरहाल माँ के बुलाने पर मैं उनके पास जाकर बैठ गया। माँ शारदा देवी की कहानी सुनाने लगीं।

देहरादून में श्रीयुक्ता शारदा शर्मा नामक एक लेडी डाक्टरनी और उनकी बहन रहती हैं। ये लोग माँ के पास बराबर आते–जाते हैं और बड़े भक्त हैं। माँ ने कहा – "शारदा लड़की बड़ी अच्छी है। शुद्ध ब्रह्मचारिणी जिसे कहा जा सकता है, वही है। उम्र ३२–३३ लगभग है, पर एक दिन के लिए भी इनके अन्तर में कुभाव उत्पन्न नहीं हुआ है।"

महिला बड़ी सरल है। माँ से मुलाकात होने के पहले देव–देवी या धर्म के प्रति इनकी विशेष अनुरक्ति नहीं थी। लेकिन अन्य गुण जैसे सत्यवादिता, कर्तव्यनिष्ठा आदि इनमें खूब था। दोनों महिलाएँ जब माँ के पास आती थीं तब शक्ति नामक एक बंगाली महिला अक्सर माँ से कहती थी – "माँ, तुम इन लोगों का विवाह नहीं कराओगी?"

माँ हँसकर जवाब देतीं – "मैं वर की तलाश में हूँ।"

माँ ने कहा – "मैंने सेवा से कई बार पूछा कि वह विवाह करेगी या नहीं, किन्तु उसके उत्तर में कहा करती थीं – 'यह कैसे कह सकती हूँ? अगर कहती हूँ कि विवाह नहीं करूँगी और आगे चलकर विवाह हो जाय तो मेरी बात झूठ साबित होगी।' कभी–कभी अपने आप कहती है–'माँ, मुझे एक बच्चे की जरूरत है। उसे मैं बी.ए.एम.ए. पढ़ाऊँगी।' इन बातों में कुछ लज्जा है, वह यह नहीं समझ पाती। यहाँ तक कि वह अपने पिता से भी अपने विवाह के बारे में बातें करती थी।"

एक दिन शारदा और उसकी बहन मेरे पास बैठी थीं। उसी समय शक्ति ने मुझसे कहा – 'माँ तुम शारदा का ब्याह नहीं कराओगी ?'

उसकी बात सुनकर मैंने शारदा से पूछा – 'क्या तुम विवाह नहीं करोगी।'

उस दिन वह अचानक बोल उठी – 'माँ, तुम तो सब जानती हो। तुम मुझे जो कुछ कहोगी, मैं वही करूँगी।'

मैंने कहा – 'अगर मैं एक मेहतर से विवाह करने को कहूँ तो क्या तुम करोगी ?'

उसने कहा – 'तुम जो कुछ कहोगी, मैं वही करूँगी।'

शारदा की बहन से इसी प्रकार के प्रश्न किये, पर वह चुपचाप बैठी रही।

एक दिन मैंने शारदा और प्रकाशजी की लड़की को एक-एक फूलों का गुलदस्ता देते हुए कि कल जब तुम लोग मुझसे मिलने आओगी तब इस गुलदस्ते को लेती आना। शारदा बड़े यत्न के साथ गुलदस्ता अपने साथ घर ले गयी और उसे एक कमरे में रखकर ताला लगा दिया। प्रकाशजी की लड़की ने ले जाकर बड़े यत्न से रख तो दिया, पर ताला नहीं लगाया। दूसरे दिन भोर के वक्त मेरे यहाँ आते समय शारदा जब गुलदस्ता लेने उस कमरे में गयी तो देखा – वह गायब है। कमरे में जितनी चीजें थी, वह सब है, पर गुलदस्ता नहीं है। प्रकाशजी की लड़की की भी यही हालत हुई। कैसे गुलदस्ता गायब हो गया, कोई समझ नहीं सका। शारदा मेरे पास आकर उदास भाव से बोली कि गुलदस्ता खो गया है।

इसी दिन सबेरे आनन्द चौक[1] मन्दिर के पुजारी जीवों के संस्कार के बारे में तरह-तरह की बातें बता रहे थे। शारदा उसे बड़े ध्यान से सुन रही थी। पुजारी कह रहे थे कि जीव को संस्कार से मुक्ति

नहीं मिलती। भोग के द्वारा उस संस्कार को समाप्त करने के लिए बार–बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस बात को सुनकर शारदा सोचने लगी कि इतनी भयानक स्थिति होती है। अगर उसका विवाह–संस्कार है तो आजीवन साधन–भजन करने पर भी इस संस्कार को समाप्त करने के लिए पुनः जन्म ग्रहण करना पडेगा। शारदा मेरे निकट अपने इस संशय को कहने के लिए व्यग्र हो उठी। इस दिन जो लोग मुझसे मिलने आये थे, उनमें शक्ति नामक वह लड़की भी थी। उसने कहा – 'मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं शारदा की चोटी बना दूँ।'

मुझसे अनुमति पाते ही उसने शारदा के बालों को संवारकर मांग काढ़ दी। इस प्रकार की माँग यहाँ की विवाहित महिलाएँ काढ़ती हैं। ठीक इसी समय प्रकाशजी की लड़की फूलों की एक माला लेकर आयीं।

सवेरे के वक्त वह आम तौर पर मुझसे भेंट करने नहीं आती। इस प्रकार विवाह के सभी आयोजन होने लगे। जब वक्त काफी हो गया तब सभी अपने घर चले गये तब मुझे अकेले में पाकर शारदा ने कहा – 'माँ, पुजारीजी कह रहे थे कि जीव जबतक अपने संस्कार को भोग नहीं लेता तबतक वह कटता नहीं। अगर मैं आजीवन साधन–भजन करती रहूँ और मुझमें यदि विवाह–संस्कार हो तो क्या मुझे उस संस्कार को समाप्त करने के लिए पुनः जन्म लेना पड़ेगा?'

मैंने उसे बताया–'हाँ, यह तो होगा ही।'

यह बात सुनकर शारदा को बड़ा आघात पहुँचा। उसका दुःख दूर करने के लिए मैंने कहा – 'आओ, इस जन्म का विवाह तुम्हारा नारायण के साथ करा दूँ। तब तुम्हें गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी और

१. इस घटना के समय माँ देहरादून स्थित आनन्द चौक में रहती थीं। उत्तरकाशी से वापस लौटने के बाद वे आनन्द चौक में न ठहरकर राजपुर रोड स्थित कृष्णाश्रम में रहती थीं।

तुम्हारा विवाह-संस्कार दूर हो जायगा।' इसके बाद मैंने शारदा से कहा – 'इस वक्त जाकर पहले शक्ति को प्रणाम करो, क्योंकि इस विवाह में वही अगुआ है।'

मैं – तुमने तो विवाह के बारे में कहा। विवाह कराया कहाँ?

माँ – हाँ, शारदा को यह बात कहने के बाद कुछ हुआ, वह सब तुम्हें सुनने की जरूरत नहीं। इसके बाद शारदा शक्ति को प्रणाम करने गयीं। ज्योंही उसने शक्ति को प्रणाम किया त्योंही उसने घर से सिंदूर लाकर उसकी मांग भर दी। शक्ति ने ऐसा क्यों किया, यह बात वह स्वयं भी नहीं बता सकती, क्योंकि तब तक शारदा के विवाह की बात मेरे और शारदा के अलावा अन्य कोई नहीं जानता था। इसके बाद जब शारदा के विवाह की बात प्रकट हुई तब कुछ लोग कहने लगे – 'नारायण नामक किसी लड़के से शारदा का विवाह हो गया है।' कोई यह कहता – 'नहीं जी, नारायण तो साक्षात् भगवान हैं।' किसी ने आकर मुझसे कहा – 'शारदा के पति से मुलाकात कराइये।'

मैंने उन लोगों से कहा – 'देखो मानव-वर देखने के लिए तुम लोग आड़ में रहकर उसे देखने के लिए कितना प्रयत्न करते हो? शारदा के वर को देखने के लिए तुम लोगों को प्रयत्न करना पड़ेगा। साधन-भजन करना पड़ेगा। साधन भजन करो, निश्चित रूप से उसे देख पाओगे। जो शारदा के पति हैं, वे तुम्हारे भी पति हैं, विश्व के एकमात्र पति हैं।'

शारदा को पुत्र-लाभ

शारदा देवी के विवाह की कहानी समाप्त होने के बाद कैसे उन्हें पुत्र-लाभ हुआ था, वह कहानी भी माँ सुनाने लगीं।

माँ ने कहा – "एक दिन शाम को शारदा, हरिराम, लक्ष्मी एवं अन्य लोग मेरे पास बैठे थे। ठीक इसी समय न जाने किस विषय पर शारदा और हरिराम में बहस प्रारम्भ हो गयी। ज्योतिष और लक्ष्मी

बीच–बीच में कुछ छेड़छाड़ कर झगड़े को बढ़ा दे रहे थे। मैं चुपचाप बैठी सारी बातें सुनती रही। ठीक इसी समय किसी ने कहा – 'तुम लोग माँ के सामने झगड़ा कर रहे हो, शर्म नहीं आती?'

इस डांट को सुनकर सब चुप हो गये। दूसरे दिन मैंने हरिराम से कहा – 'शारदा, लक्ष्मी और तुम लोगों के बीच कल जो बहस हुई है, उसके प्रायश्चित के लिए तुम लोग कुमारी–पूजा करो।' यह आदेश सुनकर शारदा आदि बड़े उत्साह के साथ पूजा का आयोजन करने लगीं। पूजा के अवसर पर अनेक लोग उपस्थित थे। ज्योति भी था। ज्योति को किसी ने पूजा देखने के लिए नहीं बुलाया था। कुछ दिन हुए वह एम. ए. पास करने के बाद इलाहाबाद से देहरादून आया है। पूजा समाप्त होने पर मैंने कहा–'तुम लोगों ने भगवती की पूजा की। अब उनके निकट वर मांगो।'

"कोई कुछ कहे उसके पूर्व मैंने लक्ष्मी से कहा – 'देवी ने यही वर दिया कि आज से मैं लोगों की लड़की हुई ।' इसके बाद ज्योति का हाथ पकड़कर शारदा के पास लाकर मैंने कहा – 'यह लो, तुम्हारा एम. ए. पास लड़का ।"

"इसी समय एक व्यक्ति ने प्रस्ताव रखा कि इस समय जो लोग मौजूद हैं, इन लोगों का एक फोटो लिया जाय । मैंने कहा – 'जिन लोगों ने कुमारी–पूजा की है, वह उसी कुमारी को लेकर एक–एक फोटो खिंचवाये?' इस प्रकार तीन फोटो खींचे गये । एक में हरिराम, हरिराम की कुमारी और मैं । दूसरे में लक्ष्मी, लक्ष्मी की कुमारी और मैं तथा तीसरे में शारदा, उसकी कुमारी और मैं । इस फोटो में कुमारी की आकृति खराब हो गयी थी । उसने कुमारी का फोटो निकालकर फोटो देने को कहा। मैंने कहा कि उस फोटो में बिना कोई परिवर्तन किये, जैसी खींची गयी है, उसी तरह की कापी लाकर दो । उसने वैसा ही किया । फोटो आने पर देखा कि फोटो में कुमारी को आवृत्त

कर एक शिशु की आकृति उभर आयी है । यह शिशु कहाँ से आ गया, कोई समझ नहीं सका।''

मैं – माँ, कहीं वह शिशु ज्योति के बचपन का चेहरा तो नहीं है ?

माँ – (हंसकर) तुमने पहले यह कहा । अब तक किसी ने ऐसा नहीं कहा था । (भ्रमर से) ले, सुन ले, पिताजी क्या कह रहे हैं । और लोगों को बुलाकर माँ मेरी बात कहने लगी । मैंने सोचा, शायद यह बात माँ मेरे मुँह से कहलाना चाहती थी ।

इस तरह की बातें करते–करते चार बजे गये । इसी समय एक फोटोग्राफर आया । भ्रमर अपने शिवलिंग को लेकर माँ के साथ एक फोटो खिंचवायी। यह शिवलिंग (वानलिंग) माँ ने भ्रमर को दिया था। इसमें एक विशेषत्व है। इस लिंग के रंग में दिन–प्रति–दिन परिवर्तन होता जा रहा है और इसके भीतर माँ की मूर्ति की तरह एक मूर्ति क्रमशः प्रकट होती जा रही है । दो चित्र खींचे गये । एक में माँ भ्रमर के गले में हाथ डालकर खड़ी हैं । दूसरे में भ्रमर माँ की गोद में बैठी हैं । भ्रमर को माँ 'बड़ी माँ' कहकर पुकारती हैं । उसके प्रति माँ का असीम प्रेम है ।

शाम होने के कुछ पहले होटल वापस चला आया । शायद आज माँ टहलने नहीं गयीं । शाम के बाद पुनः माँ के पास जब आया तो देखा–माँ के चारों ओर अनेक काश्मीरी और बंगाली महिलाएं बैठी हैं। नक्षत्रों के बीच जिस प्रकार चाँद शोभायमान रहता है, ठीक उसी प्रकार इन सुन्दिरयों के बीच माँ लग रही थीं । माँ को आज जिस रूप में देखा, वैसा इसके पूर्व कभी नहीं देखा था । शांत, हास्य मूर्ति, आकृति से ज्योति चारों ओर बिखर रही थी। बदन पर अण्डी की एक चादर थी । शांत–सौंदर्य एवं शुभ्रता की जैसे अद्वितीय प्रतिमूर्ति थी।

महिलाएं माँ को भजन गाकर सुना रही थीं । सभी के अनुरोध पर माँ एक भजन गाने लगीं । यह भजन कितना मधुर, कितना दिव्य था, उसे भाषा द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता । अत्यन्त मीठे स्वर में भाव विह्वल नेत्रों से झूमती हुई माँ गाने लगी –

"हरि बोल, हरि बोल हरि, हरि बोल
केशव माधव गोविन्द बोल"

महिलाएं भी साथ–साथ गाती रहीं । मुझे ऐसा लगा जैसे आज स्वर्ग से सभी देवतागण इस गीत को सुनने के लिए आ गये हैं। जबतक माँ गा रही थीं तबतक हम लोग मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे । इसी प्रकार नाम–गीत गाते रहने पर भगवान् भी छिपे नहीं रह सकते । इस गीत की स्मृति को भुलाया नहीं जा सकता ।

माँ अधिक देर तक गा नहीं सकीं । बाद में महिलाएँ गाती रहीं। कल मैं रवाना हो जाऊँगा । फलतः आज अधिक रात तक बिना रुके होटल वापस आ गया ।

देहरादून से प्रस्थान

१ कार्तिक, शुक्रवार, बंगला १३४२ सन् (१८ अक्टूबर, १९३५ ई.) हम लोग हरिद्वार रवाना होने वाले हैं । सवेरे माँ को देखने के लिए गया। सोचा, इसी समय विदा लेकर लौट आऊँगा । हमारी गाड़ी ९ बजे रवाना होगी । फलतः पुनः माँ के पास जाना संभव नहीं होगा।

सूर्योदय के पूर्व ही माँ के यहां हाजिर हो गया । अभी अंधकार था। यहां आकर देखा कि माँ के निकट ज्योतिष बाबू, स्वामी शंकरानन्द, मौनी माँ[१] लक्ष्मीबाई, भ्रमर तथा स्थानीय दो–तीन महिलाएँ हैं । स्थानीय महिलाओं में एक महिला और उसकी पुत्री है । पुत्री बनारस हिन्दू

१. आप श्रीयुक्त अवनीमोहन बसु महाशय की पत्नी हैं । स्वामी और पुत्र के रहते हुए भी सन्यासिनी की तरह जीवन व्यतीत करती हैं। आपका नाम श्रीमती मनोरमा बसु है । माँ इन्हें 'मौनी माँ' कहती हैं।

विश्वविद्यालय में बी.ए. में पढ़ती है । ये लोग नित्य भोर में ४ बजे आकर माँ को भजन सुनाती हैं । जब ये लोग आकर भजन गाना प्रारम्भ करती हैं तब माँ सोकर उठ जाती हैं । चूंकि भ्रमर माँ के पास सोती हैं, इसलिए वह भी जाग जाती है । इससे उसे तकलीफ होती है ।

एक दिन माँ हँसती हुई बोली – "भ्रमर मुझसे एक दिन कहने लगीं– 'माँ, इनके भजन पर तुम क्यों जागकर उठ जाती हो ? सोती रह सकती हो । तब मैं भी सोती रह सकती हूँ । इतने भोर में उठा नहीं जाता ।' मैंने इससे कहा कि इनके आने पर मैं सोयी नहीं रह पाती ।'

हम लोगों ने भी देखा है कि जब कोई दर्शनार्थी आता है तब माँ बिना बातचीत किये रह नहीं पातीं । कभी लोगों से कमरा भरा रहने पर वे सिर से पैर तक चादर ओढ़कर सोयी रहतीं । बाहरी तौर पर मां उदासीन रहती हैं । माँ का कारबार केवल मन को लेकर है ।

यहाँ आते ही देखा – ज्योतिष बाबू दबे स्वर से स्वरचित एक गीत गा रहे हैं । गीत मुझे अच्छा लगा । इसके बाद सभी लोग मिलकर भजन करने लगे । यह भजन कितना सुन्दर था, उसे बिना सुने समझा नहीं जा सकता । धीरे–धीरे अन्धकार घटता गया और प्रकाश बढ़ता गया । सामने वृक्षों पर पक्षियाँ चहचहा रही हैं । माँ निश्चित रूप से शायद मंसूरी पहाड़ी की ओर देख रही हैं । उन्हें देखने पर लगता है जैसे कोई ध्यानरता योगिनी मूर्ति हैं । रात्रि और दिवा के संधिक्षण में कुहेलिकाच्छन्न जगत् के बीज, संगीत की ताल पर मानो आलोक रेखा प्रस्फुटित हो रही थी । इस गीत को सुनकर स्वतः जगज्जननी के चरणों पर मनप्राण निछावर हो रहे थे । इस स्वर्गीय सुख को छोड़कर आज चले जाना पड़ेगा । विश्व–जननी के जीवन्त विग्रह के निकट विदा माँगनी पड़ेगी, जानकर आँखें छलछला आयीं । अत्यन्त कठिनाई से इन आँसुओं को मैंने रोका । सूर्योदय हो गया ।

ज्योतिष बाबू माँ के पास से चले गये । गीत चलता रहा । मैं भी मन–ही–मन माँ को प्रणाम करने के बाद उठकर खड़ा हो गया। अपनी पत्नी और लड़की को लेकर रवाना हो गया । कमरे से बाहर निकलते ही देखा – ज्योतिष बाबू पूर्ववाले बरामदे में बैंठे हैं । मैंने उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने आवेग के साथ आलिंगन पाश में बाँध लिया । माँ के प्रति अनाविल आदर के कारण माँ के प्रत्येक भक्तों के प्रति इतने स्नेहशील हैं । अत्यन्त कठिनाई के साथ उनसे दो–चार बातें की । आँखों के पानी को रोकने के लिए मुँह दूसरी ओर फेर लिया । भ्रमर हम लोगों के साथ सदर दरवाजे तक आयी।

होटल में आकर जलपान किया । हम स्टेशन रवाना होने की तैयारी कर ही रहे थे कि ठीक उसी समय ज्योति बाबू आ गये। बोले –"आप लोग आज ही जा रहे हैं ?"

मैं–हाँ ।

ज्योति–माँ के साथ मुलाकात नहीं करेंगे ?

मैं–भोर के वक्त ही जाकर माँ से मिलकर विदा ले आया हूँ।

ज्योति–तब माँ ने मुझे यहाँ क्यों भेजा ? मैंने यह भी सुना कि उन्होंने कहा–'माँ ने आप लोगों को भेंट करने के लिए बुलवाया है ।'

ज्योति बाबू को विदा करते हुए मैंने कहा–"चलिये, मैं आ रहा हूँ ।"

विदा लेकर वापस आने के बाद मां ने मुझे क्यों बुलाया, समझ नहीं सका । बहरहाल, एक टाँगा लेकर सभी के साथ माँ के पास आया। आते समय होटल के मैनेजर से कहता आया कि मेरा बिल तैयार कर रखे ।

माँ के पास आते ही देखा – वे हम लोगों के आने की प्रतीक्षा में सामने के बरामदे पर खड़ी हैं । मैंने मां से पूछा – "मां, मुझे बुलवाया है क्या ?"

माँ – (हँसकर) मैं तो नहीं बुलवाया । मैं बुला रही हूँ, ज्योति ने शायद ऐसा कहा है ?

मैं – हां ।

लेकिन ज्योति बाबू ने इसे अस्वीकार कर दिया । मैं यह सुनकर अवाक् रह गया । सभी हँसने लगे ।

मां – तुम्हारे जाने के बाद मैंने ज्योतिष से पूछा कि क्या आज तुम चले जाओगे ? ज्योतिष ने कहा – 'हाँ, अमूल्य बाबू आज विदा हो रहे हैं।' ज्योति का जवाब सुनकर मैं कुछ नहीं बोली । लेकिन मैंने यह देखा कि पिताजी (अर्थात् मैं) पुनः लोट रहे हैं । इसके कुछ देर बाद ज्योति आ गया। उसने भी तुम्हारे बारे में पूछा । मैंने जब उसे यह कहा कि तुम लोग आज जाओगे तब इसने व्यस्त भाव से कहा – 'तब उनसे मुलाकात कर आऊँ ।' मैंने उससे कहा – 'तुम्हारी इच्छा हो तो जाओ' इसके बाद जो कुछ हुआ, उसे तुम जानते हो। मैंने देखा था कि तुम लौटकर आये हो, इसीलिए तुम वापस आये हो ।

इतना कहने के बाद माँ हँसने लगीं । साथ ही सभी हँसने लगे। समझते देर नहीं लगी कि मां की इच्छानुसार मुझे यहाँ पुनः आना पड़ा। क्योंकि माँ ने एक दिन ज्योतिष बाबू से कहा था – 'अगर मैं न बुलाऊँ तो किसी की इतनी हिम्मत है जो मेरे पास आये ।'

मैं चुपचाप खड़ा रहा ।

माँ कहने लगीं – 'तुम दोनों को सद्गुरु का आश्रय प्राप्त हुआ है । एक दूसरे को धर्म मार्ग में चलने में सहायता देते रहना । पति–पत्नी भिन्न पथ के पथिक होने पर अनेक बाधाएँ उपस्थित होती है। तुम लोग आपस में एक दूसरे की सहायता करते हुए धर्मपथ पर बढ़ते रहो।'

"और देखो, ढाका के आश्रम में जाकर कहना कि वे लोग मुझे जिस दिन ले जाना चाहेंगे, मैं उसी दिन चली आऊँगी ।"

मैंने सजल नयन से कहा – "मां, हम लोग तुम्हें नहीं ले जा सकते। आप अपनी कृपा से आइयेगा ।"

माँ ने आगे कहा – "सभी को कह देना कि दिन जो चला जाता है, वह वापस नहीं आता। फलतः चाहे इच्छा से या अनिच्छा से सभी लोग नाम लेकर समय गुजारें । यही मेरी प्रार्थना है ।"

मैंने मां को प्रणाम किया । मेरी पत्नी के प्रणाम करने पर उसकी चिबुक को पकड़कर उन्होंने प्यार किया । ठीक इसी समय गोपालजी[1] को देखकर मैं उन्हें प्रणाम करने गया । भक्त चूड़ामणि वृद्ध मेरी दृष्टि में श्रद्धेय हैं । उन्होंने मुझे प्रणाम करने नहीं दिया । मेरे हाथों को पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए आलिंगन में बांध लिया । बाद में बोले – "माँ की कृपा से हम सब एक हैं ।"

वाह ! माँ के भक्तों का कितना सरल मधुर भाव है । हम लोगों को आलिंगन करते देख माँ ने कहा – "यह (अर्थात् गोपालजी) प्रतिदिन इतनी देर तक नहीं रहता । आज तुम्हारे साथ इस रूप में भेंट होगी, शायद इसीलिए रह गया । अन्य जितने लोग वहां थे, सभी लोगों को प्रणाम करने के बाद मैं टांगे पर सवार हो गया । इस प्रकार विदा लेना कितना हृदय–विदारक होता है, इसे भुक्तभोगी अनुभव करते हैं। बड़े अच्छे लग्न पर ढाका से रवाना हुआ था, इसीलिए ये चार दिन माँ के निकट अत्यन्त आनन्द के साथ गुजर गये ।

---

१. श्रीयुक्त द्वारकानाथ रायना । देहरादून के वकील हैं । आनन्द चौक में रहते हैं । माँ के इनका नाम गोपालजी रखा हैं । गोपालजी और इनकी पत्नी माँ के भक्त हैं ।

मां का ढाका आगमन

२५ अगहन, बुधवार १३४२ सन् (२१ दिसम्बर, १९३४ ई.) दोपहर १२ बजे श्रीयुक्त भूपतिनाथ मित्र महाशय एक तार हाथ में लेकर आये और बताया कि आगामी २३ दिसम्बर, शुक्रवार को श्री श्री माँ और बाबा भोलानाथ ढाका आ रहे हैं । यह समाचार सुनकर मैं प्रसन्न हो उठा । बुध और गुरुवार को दिन भर यही चर्चा होती रही कि माँ आ रही हैं । सभी के चेहरे पर प्रसन्नता थी । सभी आनन्द से अधीर थे। माँ को देखने के लिए लोग कितने व्याकुल हैं, यह उनकी आकृति के चिह्न स्पष्ट रूप से प्रकट कर रहे थे ।

माँ का स्वागत करने के लिए हम लोग नारायणगंज गये । स्टीमर दोपहर एक बजकर दस मिनट पर आया। माँ और बाबा भोलानाथ ज्योंही जहाज से उतरे त्योंही भूपति बाबू ने उनके गले में माला पहनायी । हम लोग ढाका वाली गाड़ी पर आकर बैठ गये । माँ के साथ इस बार श्रीमती भ्रमर भी आयी हैं । गाड़ी में माँ देर तक नीरव बैठी रहीं । बाद में बातचीत करने लगीं, किन्तु उनका स्वर अस्पष्ट था । इस तरह अस्पष्ट बातें मां के मुख से कभी नहीं सुन पाया था । सुना कि देहरादून से चलते समय रास्ते में ऐसा हो गया है । माँ मानो अर्द्ध समाधि की स्थिति में हैं । मैं डर गया । कहीं मां मौनी न हो जाय ।

बहरहाल गाड़ी २॥ बजे ढाका पहुँच गयी। ढाका स्टेशन पर अनेक भक्त इंतजार कर रहे थे । जय ध्वनि के साथ मां और भोलानाथ बाबा की अभ्यर्थना की गयी । श्रीयुक्त शचीन्द्रचन्द्र घोष महाशय की कार में मां और बाबा को स्टेशन से आश्रम तक ले आया गया । हम लोग पैदल ही आये । आश्रम में आकर देखा कि महिलाओं ने मां को इस प्रकार घेर रखा है कि हम लोग मां के समीप जा नहीं सकते । लाचारी में बाहर मैदान में आकर इंतजार करने लगे ।

कुछ देर बाद मां और बाबा भोलानाथ दादा महाशय (श्री श्री माँ के पिता श्री युक्त विपिन बिहारी भट्टाचार्य) से भेंट करने के लिए स्वर्गीय ईश्वर घोष महाशय के बाग की ओर रवाना हुए । हम लोग भी चल पड़े । बाग में आकर माँ ने दादा महाशय (नानाजी) को प्रणाम करने के बाद पोखर के घाट पर आकर बैठ गयीं ।

स्वामी शंकरानन्द ने माँ से कहा – "माँ, तुमने दादा महाशय को तो प्रणाम किया, पर दीदीमां को नहीं किया ?"

माँ हंसकर बोली – "मैं यह भूल गयी ।"

बाद में दीदीमां को उन्होंने प्रणाम किया । जमीन से सिर लगाकर हम लोगों को प्रणाम किया । यहां तक कि अपने पैरों पर सिर झुकाकर स्वयं को भी प्रणाम किया ।

स्वामीजी ने पुनः कहा – "माँ, प्रणाम तो सब पूर्ण हो गया, पर एक असंपूर्ण रह गया ।"

माँ ने पूछा – "क्या असंपूर्ण रह गया ?"

स्वामीजी – तुमने भोलानाथ को प्रणाम नहीं किया ।

माँ ने वापस आकर भोलानाथ को प्रणाम किया। सारी कार्यवाही हंसती हुई खेल के भाव में करती रहीं । मैं अवाक् होकर मां की ओर देखता रहा। मां हम लोगों की ओर देखती हुई हंसने लगीं ।

दीदीमां के यहाँ से आश्रम आकर माँ मैदान में बैठ गयीं। एक ओर महिलाएं बैठीं, दूसरी ओर हम लोग बैठे । एक–एक कर अनेक महिलाएँ मां को प्रणाम करने के बाद वापस जाने लगीं । एक तीन–चार वर्ष का बालक सिर पर टोपी पहने माँ के सामने आकर खड़ा हो गया और हाथ जोड़ते हुए मां को उसने प्रणाम किया ।

उसके प्रणाम करने का ढंग देखकर हम लोग हंस पड़े । माँ भी खूब हंसने लगीं और उस बच्चे को लक्ष्य करती हुई बोलीं – "तुम तो साहब बन गये हो, बिलकुल साहब ।"

दीर्घ जीवन पुण्य से प्राप्त होता है

ठीक इसी समय श्रीयुक्त योगेशचन्द्र घोष महाशय अपनी पत्नी के साथ आये । दोनों ही काफी वृद्ध हैं । योगेश बाबू की पत्नी माँ के पास बैठीं और मां के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेती हुई बोलीं – और कितने दिन मुझे भोगना है ? मैं तो मर रही थी, पर फिर बच गयी । अब तुम बताओ कि मुझे कितने दिनों तक भोगना है ?

माँ – दीर्घ जीवन पुण्य का फल होता है । जितने दिनों तक जीवित रहा जाता है, उतना ही भोग कट जाता है । मृत्यु–चिन्ता करने की जरूरत नहीं, बल्कि यह सोचिये कि मेरा भोग कटता जा रहा है।

योगेश बाबू की पत्नी – मैं बुरी तरह बीमार हो गयी थी । (भूदेव बाबू की पत्नी को दिखाती हुई) मेरी यह लड़की और एक अन्य लड़की काफी सेवा करती रही ।

माँ–सेवा करना औरतों का कर्त्तव्य है । अपने सुख के लिए इनका जन्म नहीं हुआ है ।

योगेश बाबू की पत्नी–(योगेश बाबू को दिखाती हुई) आजकल मैं इन्हें लेकर हूँ । देखो न, इन्हें कैसा सजायी हूँ ।

योगेश बाबू जरा दूर बैठे थे । वे कोट, पैण्ट और टोपी पहने हुए थे ।

माँ–(हंसकर) तुम उन्हें गोपाल समझना । इसी प्रकार इन्हे सजाती रहना।

इसी प्रकार की बातें चल रही थीं । शाम का अंधेरा बढ़ रहा था । माँ अस्पष्ट रोशनी में बैठी बातें कर रही थीं । ठीक इसी समय भ्रमर आकर माँ को भीतर ले गयी । उस समय मंदिर में आरती

हो रही थी । आरती समाप्त होने के बाद हम लोग प्रसाद लेने के लिए आश्रम के भीतर गये । उसे समय माँ नाम घर में बैठी थीं और बालकवृन्द कीर्तन कर रहे थे । कीर्तन अच्छा लगा । लेकिन मैं यह सोचने लगा कि कीर्तन बन्द करके माँ को कुछ देर विश्राम करने देना चाहिए, कल तारापीठ से रवाना होकर आज ढाका आयी हैं । दिन–रात में जरा भी आराम करने का मौका नहीं मिला, तिस पर माँ उपवास पर हैं। लिहाजा आराम की सख्त जरूरत है ।

गृहाभ्यन्तर में माँ के सोने की इच्छा नहीं

बहरहाल कीर्तन समाप्त होने के बाद माँ से शयन करने का अनुरोध किया गया तब माँ ने कहा – "मैं अन्नपूर्णा मंदिर के बरामदे में सोऊँगी।"

अखण्डानन्दजी ने आपत्ति करते हुए कहा कि वहाँ तो ब्रह्मचारी लोग सोयेंगे ।

माँ – उनके सोने पर भी मेरे लायक जगह निकल आयेगी । जब एक बार मैंने कह दिया तब में यहीं रहूँगी ।

कुछ देर बाद अखण्डानन्दजी ने आकर माँ को सूचना दी कि भोलानाथ उन्हें बुला रहे हैं । माँ उनकी कुटिया की ओर चल पड़ीं। हम लोग पीछे–पीछे गये । वहाँ जाकर देखा–असाधारण समस्या है। बाबा भोलानाथ का कहना है कि माँ क्यों बाहर सोयेंगी । कमरे में क्या दोष है, आदि।

इधर माँ कोमल तथा दृढ़ स्वर में कह रही हैं कि वे बरामदे में ही सोयेंगी, पर कारण नहीं बता रही हैं । बाबा भोलानाथ मौन हैं, इसलिए वे अपनी बातें लिखकर बता रहे हैं । वे कह रहे हैं कि इसीलिए मैं ढाका नहीं आना चाहता था । ढाका आने पर कोई–न–कोई गोलमाल होगा, इसका अनुभव उन्हें पहले ही हो गया था ।

इस गोलमाल का सूत्रपात मंदिर के बरामदे में सोने से लेकर प्रारंभ हो रहा है (अर्थात् बाबा भोलानाथ का विचार है कि अब माँ कमरे में प्रवेश नहीं करेंगी । संन्यासिनी बनकर पहाड़ों पर घूमती रहेंगी) । यहाँ तक कि वे नाराज होकर बोले कि अगर माँ बरामदे में सोयेंगी तो वे किसी ओर चले जायेंगे ।

यह बात सुनकर मां जरा गंभीर होकर बोल उठी – "चले क्यों जाओगे? अगर तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, तुम भी बरामदे में सो जाना और नहीं तो इसी कमरे में सो जाओ । मेरे ख्याल के बारे में जानते ही हो । जब मेरे मन में ख्याल आ गया है कि बरामदे में रहूँगी तब मुझे वहीं रहना पड़ेगा। प्रत्येक समय मेरे मुँह से नहीं निकलती। पर यह जान लो कि विशेष कारण से ही मैं वहां रहना चाहती हूँ। (हम लोगों की ओर लक्ष्य करती हुई) तुम लोग भोलानाथ से कहकर मुझे बरामदे में सोने की अनुमति दिलाओ ।"

प्रमथ बाबू – हम लोग क्यों अनुमति लेंगे ? तुम भोलानाथ को राजी कराओ ।

भोलानाथ राजी नहीं हो रहे थे और इधर माँ भी जिद्द नहीं छोड़ रही थीं । इसी समय गणेश बाबू ने कहा– "माँ, कैलास पर हर–पार्वती में इसी प्रकार का झगड़ा होता है ?"

माँ–(गंभीर रूप में) तुमने हर–पार्वती देखा है ?

गणेश बाबू–नहीं, सुना है ।

माँ–(पहले की तरह गंभीर रूप में) सुनी हुई बात नहीं कहते। पहले हर–पार्वती को देख लो, तब कहना ।

यद्यपि माँ ने इस बात को धीर और शान्त रूप में प्रकट किया, पर ऐसा लगा जैसे सारी बातें कशाघात की तरह हमारे चेहरे से टकरा गयीं । माँ की बातें सुनने के बाद किसी को कुछ कहने की हिम्मत

नहीं हुई । अब कोई सामान्य बात कहने नहीं गया । मुझे यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने कमरे से बाहर आकर सारी घटना निशि बाबू को सुनाई । निशि बाबूं काफी चिन्तित हो उठे ।

उन्होंने कहा – "तारापीठ से यात्रा करते समय बाधा आयी थी। पता नहीं कौन सा अमंगल होने वाला है ?"

मैंने देखा कि बाहर खड़े रहने से कोई लाभ नहीं है। यह वाद–विवाद जितनी जल्दी समाप्त हो जाय, अच्छा है । यह सोचकर मैं माँ के पास आकर बैठ गया और बाबा भोलानाथ से कहा–"बाबा, मैं एक बात कहना चाहता हूँ ।"

भोलानाथ मेरी ओर देखने लगे ।

मैं–इसके पहले यह देखा गया है कि मां की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने पर अमंगल होता है । एक बार पुरी में रथयात्रा के समय रथयात्रा बिना देखे पुरी से रवाना होना चाहती थीं, उस समय बाधा देकर माँ को रोक लिया गया था । नतीजा यह हुआ कि निर्मल बाबू का लड़का कुएं में गिरकर मर गया ।

बाबा भोलानाथ ने सिर हिलाकर इसे अस्वीकार किया । उन्होंने इंगित करके दिखाया उनकी बात न मानने के कारण ऐसा हुआ था। उन्होंने लिखकर यह भी बताया कि मैंने माँ को बरामदे में सोने को जो मना किया है, वह हम लोगों के लिए ही । इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है ।

मैंने माँ से कहा–"माँ, तुम कहो कि अगर मंदिर के बरामदे में तुम सोओगी तो हम लोगों का कोई अमंगल नहीं होगा ।"

---

१. श्रीयुक्त निशिकान्त मित्र । आप माँ के पुराने भक्त हैं। आजकल संन्यासी की तरह जीवन बिता रहे हैं। माँ ने इन्हें देहरादून स्थित रायपुर के मंदिर में साधना करने का आदेश दिया है ।

माँ–नहीं, तुम लोगों का कोई अमंगल नहीं होगा ।

मैं–तुम यह भी कहो कि आज जो कमरे में प्रवेश नहीं करना चाह रही हो, इसका अर्थ यह नहीं है कि इसके बाद तुम सन्यासिनी बनकर कहीं चली जाओगी ।

मेरी बात सुनकर बाबा भोलानाथ हँस पड़े और इशारे से बताया कि वे अबतक यही बात कहते आ रहे हैं ।

माँ–मैं कहां चली जाऊँगी ?

मैं–जंगल या पहाड़ों पर जा सकती हो । तुम कहां जाओगी, यह हम कैसे बता सकते हैं ? तुम्हें न देखने पर यही सोचेंगे कि हमने तुम्हें खो दिया ।

माँ–यह सब बातें क्यों पैदा हुई ? ढाका आने की बात चलने पर मैंने कहा था कि अगर मेरा शरीर रहे और तुम लोग ढाका में रखना चाहो तो मैं चल सकती हूँ । मैं मंदिर के बरामदे में सोना चाहती हूँ, उसके साथ भविष्य में मैं क्या करूँगी या नहीं करूँगी, इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

यह सुनकर मैंने बाबा भोलानाथ से कहा–"माँ जब यह कह रही हैं कि मंदिर के बरामदे पर सोने से किसी का कोई अमंगल नहीं होगा तब आप किसी प्रकार की बाधा न डालें। आप प्रसन्न भाव से अनुमति दें ।"

फिर भी बाबा आशंका प्रकट करते रहे। प्रमथ बाबू भी बाबा का पक्ष लेने लगे ।

मैंने झल्लाकर प्रमथ बाबू से कहा–"आप लोग बाधा न डालें । माँ जब कह रही हैं कि वे मन्दिर के बरामदे पर सोयेंगी तब वह अन्यथा नहीं हो सकता और अन्यथा होना भी ठीक नहीं हैं । फिर माँ तो कह रही हैं कि अमंगल की कोई आशंका नहीं है ।"

बहरहाल यह निश्चय हुआ कि माँ बरामदे में सोयेंगी । मैं कमरे से बाहर चला आया । माँ मन्दिर के बरामदे पर जाकर बैठ गयीं। कुछ देर बाद जब मैं विदा लेकर चलने को तैयार हुआ तब मां ने कहा–"पिताजी, इस बार विशुद्धानन्द पिताजी से मुलाकात हुई थी। मैं लड़की की तरह सभी बातें कहती रही ।"

मैं–मां, कल आकर सारी बातें सुनूंगा ।

माँ–अच्छा (जरा सोचकर) कल आने दो और बात कह सकूँ।

यह सुनकर मुझे संदेह हुआ कि क्या माँ मौन होने वाली हैं?

मैं – तब माँ, आज ही सुनूँगा ।

माँ – नहीं, कल ही सुनना ।

शंकरानन्द – कल मैं माँ को स्मरण करा दूँगा ।

माँ – यही करना ।

मैं सोचने लगा–मां आज बाबा विशुद्धानन्द के साथ हुई मुलाकात का विवरण बताना चाहती थीं, मैंने बाधा देकर कोई अन्याय किया है? अगर कल मां मौन हो गयीं तब उन बातों को नहीं सुन पाऊँगा।

अखण्डानन्द स्वामीजी की जबानी सुना कि बाबा भोलानाथ ढाका आना नहीं चाहते थे । मां काफी समझा बुझाकर ले आयी हैं । यहां तक कि रामपुरहाट स्टेशन तक आने के बाद पिताजी कहते रहे– "तुम लोग इन्हें (माँ को) ले जाओ। मैं यहीं रहूँगा ।" किन्तु माँ के अनुरोध पर उनका यह संकल्प समाप्त हो गया ।

दूसरे दिन १४ दिसम्बर, १९३५ ई., शनिवार को भोर के वक्त मां के पास चला आया। जिस वक्त आश्रम में पहुँचा उस समय अंधेरा था । जाकर देखा कि माँ और भ्रमर बरामदे में सोये हुए हैं। दीदी मां पास ही बैठी हुई हैं । सुना कि मां आज काफी भोर में उठकर

मन्दिर के कुलदा दादा[1] से कुछ बातें करने के बाद पुनः सो गयी हैं। कुछ देर बाद बाबा भोलानाथ हाथ–मुँह धोकर जब आये तब मैंने उन्हें प्रणाम किया । इधर यतीन बाबू, राधिका बाबू आदि भक्तगण आने लगे । पर माँ पहले की तरह सोती रहीं । इसी बीच अखण्डानन्दजी प्रातःकिया समाप्त कर आये और मां के जागने की प्रतीक्षा बिना किये प्रणाम करने गये । स्वामीजी कम्बल हटाकर ज्योंही प्रणाम करने लगे त्योंही मां जागकर उठ बैठीं। स्वामीजी की हालत देखकर मैं तथा बाबा भोलानाथ हँस पड़े। देर होते देखकर मैंने माँ से विदा माँगी, क्योंकि मुझे कालेज जाना है।

माँ को प्रणाम करते समय उन्होंने कहा–"आज तुम तो काफी भोर में आये हो ।"

मैं–अगर यह जानती हो तो कम्बल ओढ़ कर सोती क्यों रही?

माँ हँस पड़ीं, पर आगे कुछ नहीं बोलीं ।

कालेज का काम समाप्त कर पुनः आश्रम में जब आया तब दिन के १० बज चुके थे । माँ आश्रम के नामघर में बैठी थीं । एकाएक उठकर बाहर आयीं और एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गयीं। मैं मन्दिर में प्रणाम करने के बाद माँ के पास आकर बैठ गया । उस समय माँ एक वृद्ध को उपदेश दे रही थीं ।

मन कैसे स्थिर होता है ?

वृद्ध ने प्रश्न किया था – "मन कैसे स्थिर होता है ?"

---

१. श्रीयुक्त कुलदाकान्त भट्टाचार्य । आप पी. डब्लू. डी. आफिस में कार्य करते हैं । गृहस्थी छोड़कर आश्रम में रहते हैं और अन्नपूर्णा मन्दिर में पूजा करते हैं । माँ के ऊपर ज्वलन्त विश्वास है । एक बार इनके लड़के को हैजा हुआ था । कुलदा बाबू ने डाक्टर को नहीं बुलाया । बोले – 'अगर माँ रक्षा करना चाहेंगी तो वह बचेगा वर्ना मर जायगा ।' लड़का मर गया । पर माँ के प्रति इनका विश्वास गहरा बना रहा ।

माँ कहती रहीं–चंचलता मन का स्वभाव है । वह स्वभावतः इधर–उधर जाना चाहता है । जब तक वह स्थिर नहीं होता । इसीलिए स्वधन पाने के प्रयत्न को मैं साधन कहती हूँ। मन को स्थिर करने के लिए ही साधना है। स्थिर हो जाने पर हो गया । मन को स्थिर करने के लिए एक भाव लेकर रहना चाहिए जैसे नाम करना, सदालोचना करना या सद्ग्रन्थ पाठ करना आदि। जिसे जो अच्छा लगे, उसी को लेकर अधिक–से–अधिक समय लगाये ।

वृद्ध–नाम करते वक्त अगर मन इधर–उधर हो जाय तो क्या उससे कोई लाभ होगा ?

माँ–फल क्यों नहीं होगा ? तुम चलते–चलते अगर आग पर पैर रख देते हो तो उसे देखो या न देखो, तुम्हारे पैर जल जायेंगे। इसी प्रकार नाम मन लगाकर करो या अन्यमनस्क भाव से करो, उसका फल तो रह ही जायगा। अक्सर ऐसा लगता है कि नाम करता जा रहा हूँ, पर उसका फल कहां मिल रहा है ? हम लोग नाम के फलाफल को देख नहीं पाते, परन्तु उसका फल वास्तव में प्राप्त हो जाता है। हम लोगों पर उसकी एक छाप पड़ जाती है । बाद में समझ में आता है कि नाम करना बेकार नहीं गया । मन लगाकर काम करना और अन्यमनस्क भाव से करने में अन्तर अवश्य है । मन से नाम करने पर फल शीघ्र प्राप्त होता है और अन्यमनस्क भाव से करने पर फल शीघ्र प्राप्त नहीं होता । पर फल मिलता है । इसीलिए कहती रहती हूँ कि नाम करना अच्छा है । सांसारिक दृष्टि से देखो, जो लोग सांसारिक विषयों पर अधिक ध्यान देते हैं, उन्हें सांसारिक ज्ञान अधिक होता है। इसी प्रकार शुद्ध भाव से अधिक देर तक रहने पर वह शुद्ध भाव में प्रकट होता है । यह ठीक है कि पहले–पहले अधिक देर तक नाम नहीं करते बनता, कारण यह अच्छा नहीं लगता। बच्चे पढ़ने–लिखने की अपेक्षा खेलना अधिक पसन्द करते हैं । बच्चों को पढ़ाने के लिए

जबरन बैठाना पड़ता है । उसी प्रकार नाम करने के लिए जबरन बैठना पड़ता है। इसके लिए अभ्यास करना पड़ता है। बरतन जब गन्दा हो जाता है, तब उसे साफ करने के लिए मांजना पड़ता है। एक बार घिसने से साफ नहीं होता । जितनी बार घिसा–मांजा जायगा, उतना ही साफ हो जायगा । दियासलाई जलाने के लिए रगड़ना पड़ता है। कब वह दन से जल उठेगी, यह कहा नहीं जा सकता । नाम करना भी उसी प्रकार का है । अभ्यास करते–करते कार्य सिद्ध हो जाता है ।''

''मन अगर इधर–उधर जाता है तो दुःख करने से कोई लाभ नहीं है । उस समय यही सोच लेना चाहिए कि मन जब मेरे अधिकार में न रहकर इधर–उधर जा रहा हैं तब मैं मन के अधिकार में न रहकर जबरन नाम करता रहूँगा । देखा होगा, बच्चे पतंग उड़ाते हैं। पतंग आसमान में इधर–उधर नाचती रहती है, पर वह बंधी रहती है परेता के साथ । पतंग है मन। उसे नाम रूपी तागे से बाँधकर रखना पड़ता है । इसी तरह बंधे रहने पर एक–न–एक दिन मन वश में हो जाता है । चंचलता जिस प्रकार मन का स्वभाव है, उसी प्रकार शान्त होना भी उसका स्वभाव है । उसे शांत करने के लिए एक आश्रय लेना पड़ता है । तुम लोग नौकरी के सिलसिले में एक–दूसरे की सहायता लेते हो । उसी प्रकार मुक्ति के लिए भी नाम का आश्रय लेना चाहिए। नित्य तीन घंटा नाम करना उचित है और क्रमशः इसे बढ़ाते जाओ। अगर किसी दिन किसी कारण से तीन घंटा नाम करना संभव न हो तो जितना समय न किया जाय, उसकी पूर्ति दूसरे दिन कर देना चाहिए। इसी बात का संकल्प करना चाहिए कि तीन से क्रमशः बढ़ाते–बढ़ाते छह घण्टा तक करूँगा और इसी प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए । सभी कार्यों में संकल्प की आवश्यकता होती है ।

"धर्म–लाभ के लिए बहुत से लोग गुरु का आश्रय ग्रहण करते हैं। गुरु का अर्थ हम वास्तव में भगवान् को समझते हैं । वे सर्वत्र हैं और हर वक्त हैं। उपदेश सभी स्थानों पर बिखरा पड़ा है । केवल चुन लेने की जरूरत है। यही उपदेश भगवान् नाना रूप से दे रहे हैं । पेड़–पशु से भी हम लोग उपदेश ग्रहण कर सकते हैं । इस अर्थ से गुरु सर्वव्यापी हैं ।"

इस तरह बातें माँ कहती रहीं । अन्त में वृद्ध से बोली– "पिताजी, तुम्हारे पास अवसर ही अवसर है। मेरी बातें याद रखना । जो दिन चला जाता है, वह लौटकर नहीं आता। इसलिए सर्वदा नाम करने का प्रयत्न करना।"

इसके बाद वृद्ध चला गया । कई महिलाएँ माँ के पास बैठी थीं । इनमें से कई महिलाएँ ऊँचे किस्म की बातें करने लगीं जिसमें आन्तरिकता नहीं।

माँ यह देखकर कभी–कभी हँसकर कहती 'माँ, खूब अच्छी बातें कहना सीख गयी हो ।'

हम लोग अपनी बुद्धि–विद्या के प्रति इतने मुग्ध रहते हैं कि अपनी मूर्खताओं के पहाड़ की ओर ध्यान नहीं जाता । वह महिला जरा नखरे के साथ बोली –"माँ, मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम्हारा प्रसाद प्राप्त करूँ । घर पर जो कुछ खाती हूँ, वह भी तुम्हारा ही प्रसाद है, पर आपके मुँह का प्रसाद पाने की मेरी बड़ी इच्छा हैं । क्या मेरी इस इच्छा की पूर्ति न होगी?"

इस प्रकार जब महिला ने दो–तीन बार कहा तब माँ ने कहा– "ठीक है । आश्रम में ठहरकर प्रसाद प्राप्त कर लो । (एक महिला से) जाओ माँ, तुम जाकर आज अधिक भोजन बनाओ । हम सभी प्रसाद ग्रहण करेंगे ।"

अन्त में देखा गया कि उक्त महिला ने प्रसाद के लिए इन्तजार नहीं किया । घर में बीमार हैं, कहकर चली गयीं । हाय रे ! यह है हमारा कर्मभोग। कृपा आने पर भी हम कृपा को वरण कर नहीं पाते ।

स्वामी विशुद्धानन्द से माँ की भेंट

उक्त महिला के जाने के बाद मैंने माँ से पूछा –"माँ, बाबा विशुद्धानन्द से आपकी मुलाकात हुई थी । उसके बारे में कुछ बताइये।"

माँ ने कहा–"इस बार काशी जाने पर, पिताजी से मुलाकात हुई थी, पर अधिक देर के लिए नहीं । शायद घंटे डेढ़ घंटे बातें हुईं । गोपी पिताजी हम लोगों को ले गये थे । हम लोग जाकर पिताजी के पास बैठे । पिताजीने हम लोगों के लिए बैठने का स्थान पहले से ही ठीक कर रखा था । मेरी बातचीत करने का ढंग जानते ही हो । मैंने पिताजी से दुलार के साथ कहा –'पिताजी, तुम अनेक लोगों को मैजिक वगैरह दिखाते हो, मुझे भी दिखाओ।'

पिताजी ने कहा– 'तुम तो ठीक से बैठी हो । यह क्या बाहर निकाल रही हो ?' बस मैं तुरंत लड़की बन गयी ।

मैंने उनसे कहा–'पिताजी, मैं आपकी लड़की हूँ । मैं भला क्या जानूँगी? तुम मुझे जो कुछ सिखाओगे, वही सीखूंगी । तुम अपनी सारी विद्या मुझे सिखा दो ।'

"पिताजी ने ज्योतिष को बुलाकर एक फूल की पंखुड़ियों से स्फटिक तैयार करके दिखाया । तरह–तरह के सुगन्ध तैयार किये । पिताजी जब यह सब कर रहे थे तभी मैंने ताली बजाकर कहा – 'पिताजी, आप जो कुछ कर रहे हैं, मैं सब समझ गयी, लेकिन बताऊँगी नहीं।'

उपस्थित लोग मुझसे कहने लगे–'बताओ न माँ, बाबाजी क्या कर रहे हैं ।'

मैंने कहा–'अगर मैं यह बता दूँगी तो पिताजी मेरे सिर पर डण्डा मारेंगे।'

पिताजी ने कहा–'बेटी, तुझे यह सब क्या दिखाऊँ। तू तो सब जानती है । मैं इन लोगों को दिखा रहा था ।' बाद में पिताजी ने मिठाई मँगाकर हमें खिलाया । पिताजी ने मुझे खिलाया । मैंने भी पिताजी को मिठाई खिलाई।'

पिताजी ने कहा–'बेटी, मुझे याद रखना । भूलना नहीं। जब इधर आना तब मुझसे जरूर मिलना ।'

मैंने चलते समय गोपी बाबू से कहा–"देखिये, पिताजी तुम लोगों को भुलावे में रख रहे हैं । इस चक्कर में मत फँसना । पिताजी के भीतर एक ओर चीज है, उसे बाहर निकालने का प्रयत्न करो ।"

दोपहर के १२ बज चुके थे । यह देख कर मैंने माँ से विदा लेने के लिए कहा – "माँ, अब उठ (चल) रहा हूँ ।"

माँ–केवल उठने (चढ़ने) का प्रयत्न करते रहना, उतरना मत।

मैंने मन–ही–मन हँसते हुए कहा–"माँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा ही हो ।"

तीसरे पहर आश्रम में जाकर देखा – भवानी बाबू[1] ने पाठ आरम्भ किया है । शाम तक पाठ करते रहे ।

पुरुषाकार, जीवभाव और ब्रह्मभाव

शाम के समय माँ टहलने के लिए गयीं और उसके बाद आकर मैदान में बैठ गयीं । माँ के मुँह से उपदेश सुनने के लिए लोग प्रयत्न करने लगे। गणेश बाबू एक प्रश्न करने जा रहे थे । सुना कि यही प्रश्न कल रात को मोती बाबू[2] ने माँ से किया था । उसी को पुनः

१. श्रीयुक्त भवानीचरण नियोगी । आप अवकाश प्राप्त जज हैं ।

२. श्रीयुक्त राजेन्द्रलाल राय । ढाका के प्रसिद्ध वकील श्रीयुक्त महेन्द्र चन्द्र राय के सुपुत्र । आप बैरिस्टर हैं और वर्तमान समय में ढाका में ही प्रैक्टिस करते हैं ।

दुहराया गया । प्रश्न यह था – कल माँ ने कहा था कि भगवान् को पाने के लिए चेष्टा करने की आवश्यकता है । लेकिन सिर्फ चेष्टा करने से ही भगवान् मिल सकते हैं, ऐसी बात नहीं है । इस परस्पर विरुद्ध उक्तियों में आखिर सामंजस्य कैसे हो सकता है ?

माँ ने आगे कहा – जब तक लोगों में चेष्टा हैं, तब तक चेष्टा करनी चाहिए । जब तक चेष्टा की बुद्धि है तब तक चेष्टा करना ही होगा । चेष्टा करते–करते विशुद्ध बुद्धि और विशुद्ध भाव का उदय होगा । यह विशुद्ध भाव क्या है, इसे भाषा द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता । जब उसका उदय होता है, तभी वह समझ में आता है। जब यही विशुद्ध भाव जागता है तब लोग समझ लेते हैं कि चेष्टा या कर्म में कोई तत्व नहीं है । तभी वह भगवान् के हाथ का खिलौना बन जाता है । वे जिस प्रकार नचाते हैं, उसी प्रकार वह नाचता है।"

"इस विशुद्ध भाव को जगाने के लिए एक मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए । वह भाव द्वैत भाव का हो या अद्वैत भाव का हो, इससे कुछ आता–जाता नहीं । "मैं ही सब", "मैं ही सब" अथवा "तुम्हीं सब", "तुम्हीं सब" इस तरह का एक भाव लेकर रहना चाहिए। इस भाव में रहते–रहते देखा जाता है कि बाद में दो नहीं है । "मैं" है अथवा "तुम" है । एक अखण्ड सत्ता में तब सब लय हो जाता है । यही ब्रह्म की अनुभूति है, इसी को भगवान् प्राप्ति कहा जाता है । बातचीत से इसे प्रकट नहीं किया जा सकता । उसे समझने के लिए लाभालाभ कहा गया । बातों में आने पर वह खंड हो जाता है। भाषा तो भासाई (तैरना)। इसीलिए कहा जाता है कि जीव होने पर शिव नहीं बना जाता । जीव भाव कैसा है, मैदान में घेरा लगाकर घर बनाने की तरह । मैदान तो पड़ा है । घेरा बनाकर घर तैयार करने पर भी इस घर के भीतर मैदान है और बाहर भी मैदान है। अगर घेरे को तोड़ देते हो तो वह मैदान फिर मैदान ही रहेगा ।

इसीलिए कहा जाता है कि लाभालाभ कुछ नहीं है । जीव तो स्वरूपतः भगवान् है । सिर्फ बन्धन के लिए उसे जीव कहा जाता है । बन्धन खुल जाने पर वह जो भगवान् है, भगवान् ही रह जाता है । इसीलिए पुनः कहा जाता है कि जितने जीव, उतने ही शिव। इस जीव की नदी के तरंग के साथ तुलना की जा सकती है । नदी के जल में लहर पैदा होती है । ये लहरें हैं जीव और पानी है भगवान् । लहरें लेकिन पानी में पैदा होती है जबकि वास्तव में वह पानी के अलावा और कुछ नहीं हैं । इसी प्रकार जीव की स्थिति भगवान् में हैं और वास्तव में वह भगवान् है । हममें बुद्धि भेद है इसीलिए लहर को हम लोग जल से अलग समझते हैं, वर्ना लहर और पानी में कोई भेद नहीं है । जिस तरह जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है हमारा अज्ञान ही भेद की सृष्टि करता है ।

"इसके अलावा साधारण रूप में देखने पर भी मनुष्य में ब्रह्म के सभी लक्षण दिखाई देते हैं । मनुष्य में भी एकत्व, असीमत्व और अव्यक्त भाव है । हम लोग पाँच मिनट तक किस बात की चिन्ता करते रहे, उसे सब बता नहीं सकते । क्या क्यो सोचता रहा, उसमें से अधिकार बातें बता सकते है, लेकिन सब नहीं बता सकते । इससे मन का असीमत्व प्रकट होता है । दूसरी ओर इस असीमत्व में भी एकत्व है । जैसे हम लोग एक-एक करके बातें करते हैं, एक-एक करके अक्षर लिखते हैं, एक-एक पैर बढ़ाकर चलते हैं, एक-एक ग्रास बनाकर खाते हैं, ये सब एकत्व के लक्षण हैं । दूसरी ओर देखो, हम लोगों में अव्यक्त भाव भी है । हम लोग कहते हैं कि फूल सुन्दर हैं, पर वह कैसा सुन्दर है यह व्यक्त नहीं कर पाते । शायद व्यक्त करते वक्त और भी अनेक बातें कह बैठते हैं, फिर भी सम्पूर्ण भाव व्यक्त नहीं कर पाते । कुछ अव्यक्त रह जाता है । अतएव जीव के भीतर ब्रह्म के लक्षण हैं, इसी से जीव स्वरूपतः ब्रह्म है । इसके अलावा

जीव में एक और वस्तु है जिसे हम सब आनन्द कहते हैं । जीव स्वभावतः आनन्द चाहता है । उसके भीतर यह आनन्द है तभी तो वह उसे चाहता है । अन्यथा वह उसे नहीं चाहता । वह आनन्द बिना माँगे रह नहीं सकता । गौर करने पर आनन्द और शान्ति की यह आकांक्षा समस्त जीवों में देख सकते हो। कीट-पतंग जैसे क्षुद्र प्राणी भी ताप की दिशा में जाना नहीं चाहते। वे भी चाहते हैं शान्ति और आराम। धूप में तपकर जीव-जन्तु छाया खोजते हैं। मनुष्य भी उसी प्रकार त्रिताप ज्वाला में तपकर शान्ति का स्थल, आनन्द के आकर भगवान् को खोजता है। त्रिताप से मुक्ति पाने के लिए अन्य ताप की सहायता लेनी पड़ती है। करना चाहिए। इसी को कहते हैं – तपस्या। ताप सहन करने को मैं तपस्या कहती हूँ। संसार में ताप भोग करने में जैसा कष्ट होता हैं, पहले पहल भगवान् का नाम लेते समय उसी प्रकार का कष्ट होता है। लेकिन कष्ट होने पर इसी कष्ट के द्वारा त्रिताप से मुक्त हुआ जा सकता है। इसलिए जरूरत है प्रयत्न की, जरूरत है कर्म की। पशु-पक्षियों में, भगवान् को पाने की कोई गरज नहीं है। यह सिर्फ मनुष्यों में है जीव को भगवान् ने अज्ञान के पर्दे से ढाक रखा है फिर भी ज्ञान का दरवाजा खुला रखा है। वह उसी दरवाजे से मुक्त हो सकता है। पर यह स्मरण रखना होगा कि परम वस्तु पाने के लिए, भगवान् को पाने के लिए ज्ञान और अज्ञान के ऊपर उठना होगा। जब तक ज्ञान और अज्ञान है अर्थात् भेद-बुद्धि है तबतक ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब प्राप्त होता है तब समस्त भेदज्ञान उसमें लय हो जाता है।''

मैं-अगर जीव जल-तरंग की तरह है तो इस जल-तरंग की सृष्टि किसने की?

माँ-जल ने स्वतः तरंग की सृष्टि की है। भगवान् स्वयं ही जीव बन गये हैं।

मै-तो क्या जीव का कर्म-बंधन नहीं है?

माँ-जब तक बंधन का ज्ञान या बुद्धि है तबतक बंधन है। इस बुद्धि के जाने के बाद कर्म-बंधन दूर हो जाता है। सबकुछ भगवान् की इच्छा से होता है। इसे अनुभव करने पर मुक्ति। मेरा कहना है, आज जो तुम भगवान् को चाह रहे हो, यह भी तो उन्हीं की इच्छा है।

गुरु की आवश्यकता-सद्‌गुरु प्राप्ति

एक वकील - माँ, मेरे कई प्रश्न हैं। गुरु की क्या अवश्यकता है? सद्‌गुरु कैसे प्राप्त किया जा सकता है? गुरुवंश लोप क्यों हो जाता है?

माँ-तुम लोग बच्चों को पढ़ाने के लिए मास्टर क्यों रखते हो? पढ़ने-लिखने के जैसे मास्टर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धार्मिक विषयों के लिए एक गुरु की जरूरत होती है।

वकील-पुस्तकों में तो सब बातें लिखी हैं, फिर गुरु की आवश्यकता?

माँ-यह पुस्तक स्वयं पढ़ी नहीं जाती। बाहरी पुस्तकें पढ़ ली जाती हैं। पर भीतर की पुस्तकें नहीं पढ़ी जाती। गुरु उसे पढ़ा देते हैं वशर्ते गुरु अगर गुरु की तरह हों।

"सद्‌गुरु की प्राप्ति के लिए विशुद्ध प्रयत्न की आवश्यकता होती है। प्रयत्न विशुद्ध होने पर सद्‌गुरु की प्राप्ति होती है। देखते होगे कि जब बच्चे माँ-माँ कहते हुए जमीन पर लोटते-पोटते हैं तब माँ स्थिर नहीं रह पाती। वे आने के लिए मजबूर हो जाती हैं। तुम लोग भी इसी प्रकार गुरु को बुलाओ। वे आने के लिए बाध्य हैं। देखो, हम लोग भगवान् के नौकर हैं। भगवान ही हमारे नौकर है। हम लोग जो चाहते हैं, वे हम लोगों को वही देने के लिए बाध्य है।"

"अब रहा गुरु वंश के ध्वंस की कथा। गुरु तो भगवान् हैं, उनका कैसे ध्वंस होगा? अगर लौकिक भाव से देखो तो गुरु-वंश की तरह न जाने कितने वंशों का ध्वंस हो रहा है। इस ध्वंस की विशेषता क्या है? इसके अलावा अगर कोई ठीक-ठीक से कर्तव्य नहीं कर पाता तो अपराध करता है और इसी दोष के लिए ध्वंस होना स्वाभाविक है। मैंने हर तरह से बताया, तुम इसे किसी भी रूप में ग्रहण कर सकते हो।"

अधिक रात हो जाने के कारण माँ को प्रणाम करने के बाद चला आया।

१५ दिसम्बर, १९३५ ई०, रविवार। आज सबेरे जब माँ के पास गया तो देखा कि वे अभी तक सोयी हुई हैं। कुछ देर बाद जब वे जागकर उठीं तो मैदान में टहलने के लिए चल दीं। हम लोग भी उनके साथ चल पड़े। थोड़ी दूर टहलने के बाद वापस आयीं और आश्रम के नामघर में जाकर बैठ गयीं। हम लोग भी माँ के पास बैठे।

अभ्यास के द्वारा स्वभाव का गठन

आज सबेरे के वक्त मोती बाबू हैट-कोट पहनकर आये हैं। इन्हें देखकर माँ ने कहा-"पिताजी आज साहब बनकर आये हैं। पिताजी, हैट-कोट क्यों पहनते हैं ?"

मोती बाबू-सर्दी के कारण ।

माँ-सर्दी के कारण नहीं, बल्कि यह कहो कि यह तुम्हारी आदत है। सर्दी तो सभी के लिए है, पर सभी ऐसी पोशाक नहीं पहनते।

मोती बाबू-मेरे पास कपड़े नहीं हैं।

माँ-कपड़े की क्या कमी है ? सभी दुकानों में कपड़े भरे पड़े हैं। यह जरूर कह सकते हो कि तुम्हारे लायक कपड़े नहीं हैं। देखो, अभ्यास से ही सब होता है। जिस बात का अभ्यास होता है,

वह स्वभाव बन जाता है। हम लोग अक्सर कहते हैं कि हम यह करते हैं, यह खाते हैं, जैसे कपड़े पहनते हैं, चाय पीते है आदि। लेकिन असल में हम न पहनते हैं और न पीते हैं। कपड़े हमें पहनते है और चाय हम लोगों को पीती है। अगर हम लोग पहनते या पीते तो अपनी इच्छानुसार उसे छोड़ भी सकते हैं। लेकिन हम लोगों में कितने लोग ऐसा कर सकते हैं ।

ब्रह्म का स्वरूप

कुछ देर बाद माँ नामघर से चलकर मैदान में आकर बैठ गयीं। बहुत से स्त्री-पुरुष माँ का दर्शन करने आये हैं। इन लोगों के बीच नगेन बाबू[१] को भी देखा।

नगेन बाबू-माँ, ब्रह्म का स्वरूप कैसा है ? तथा उनके गुण कैसे हैं? शास्त्रों में कहा जाता है कि उन्हें सत्, चित्, आनन्द कहा जाता है, क्या यही उनका गुण है?

माँ-उनके स्वभाव या स्वरूप को प्रकट नहीं किया जा सकता, क्योंकि स्वभाव कहने पर अभाव आ जाता है। भाषा के अन्तर्गत लाने पर वे खण्ड हो जाते हैं। हाँ, प्रकट करने के लिए उन्हें सत्-चित्-आनन्द कहा जाता है। वे है, इसलिए सत्; वे ज्ञान स्वरूप हैं, इसलिए चित्। इस सत् का ज्ञान होने पर ही आनन्द है। सत्य वस्तु को जान लेने पर आनन्द, इसीलिए सत्-चित् आनन्द। लेकिन वे आनन्द और निरानन्द के परे हैं।

नगेन बाबू-कुछ लोग ब्रह्म को आनन्द कहते हैं, कुछ ज्योति कहते हैं, कुछ रूप कहते हैं। इस बारे में आपका क्या विचार है? वास्तव में सत्य क्या है?

---

१. श्री युक्त नगेन्द्रनाथ दत्त। आप 'इस्ट बेंगल टाइम्स' के सम्पादक थे। जिन दिनों माँ शाहबाग में रहती थीं, उन्हीं दिनों से आप माँ के भक्त हैं।

माँ–क्या मेरे बताने पर तुम उसे पकड़ कर रख सकोगे? अगर कहो कि पकड़कर रख सकूँगा तो वह तुम्हें बता दूँ।

यह जवाब सुनकर नगेन बाबू परेशान हो उठे।

माँ–मैं तो कह चुकी हूँ कि सभी के निकट मेरी सभी बातें प्रकट नहीं होतीं। जिसका जैसा आधार है, वह उसी प्रकार का उत्तर मेरे निकट पाता है। मैं एक यंत्र मात्र हूँ। मुझे जैसा आघात करोगे, उसी प्रकार का शब्द सुनोगे। मैं तो कहती हूँ कि तुम लोग मेरे पास से शुद्ध सत्य प्राप्त कर लो। तुम लोग भी सुनो और मैं भी सुन लूँ।

नगेन बाबू–वेदों में ब्रह्म को सच्चिदानन्द कहा गया है। तुम ब्रह्म को इससे भी ऊपर बैठाकर किसी नये ज्ञान का प्रचार कर रही हो? क्या यही तुम्हारा कथन है?

माँ–मैं नया कुछ नहीं कह रही हूँ। शास्त्रों में जो है, वह ठीक है। लेकिन शास्त्रों ने कहा ही कितना है? शास्त्र का रूप कैसा है, छत पर चढ़ने के लिए सीढ़ी जैसा। शास्त्र केवल सीढ़ियों का वर्णन मात्र करता है। छत पर चढ़ने के बाद जो प्रत्यक्ष होता है, उसका वर्णन शास्त्रों में नहीं है, क्योंकि जो एक बार छत पर चढ़ गया, उसने तो स्वयं ही सब कुछ देख लिया। जो कुछ देखा, उसके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। मार्ग के वर्णन की आवश्यकता है। शास्त्रों में वे यही है। इसीलिए शास्त्र उन्हें सच्चिदानन्द कहते हैं। वास्तव में वे यही हैं, और दूसरी ओर उससे भी ऊपर हैं। तुमने पूछा था कि देव–देवी की जो मूर्तियाँ दिखाई देती हैं, वह सत्य हैं या नहीं। मेरा कहना है कि वे सभी सत्य हैं, दूसरी ओर सब मिथ्या है। ये सब सीढ़ियों के डण्डे हैं। ये सब जीवों के नाना अवस्था, नाना भाव हैं। जब जिस अवस्था में रहना पड़ता है, उस अवस्था में वही सत्य है। बाद में उससे ऊपर उठने पर उस भाव में लय हो जाता है। एक बार में लय हो जायगा, ऐसी बात नहीं है। लेकिन किसी–किसी के

लिए उसका अस्तित्व नहीं रहता। जैसे नीचेवाली सीढ़ी से ऊपर वाली पर चढ़ने से नीचेवाली का लोप नहीं होता। लेकिन जो ऊपर की सीढ़ी पर खड़ा है, उसके लिए न रहने के बराबर है। यह सब भाव सी इसी तरह के हैं। जब हम भाव के राज्य में रहते हैं तब सभी देवी-देवता हमारे निकट सत्य हैं। भाव के इस राज्य को छोड़कर जब हम सत्य के राज्य में जाते हैं तब भाव हममें लय हो जाता है, हमारे निकट वह मिथ्या हो जाता है। हमारे निकट मिथ्या हो जाता है, इसलिए सभी के निकट मिथ्या हो जायेगा, ऐसी बात नहीं है। वह रह जाता है। इस अर्थ से देव-देवी सत्य हैं। अतएव ब्रह्म खण्ड और अखण्ड में युगपत् हैं। वे खण्ड भी हैं और अखण्ड भी हैं। खण्ड में भी वे पूर्ण रूप में है और अखण्ड में भी वे पूर्ण रूप में है। जैसे मेरी ऊँगली स्पर्श करने पर मुझे स्पर्श करना होता है जबकि मैं ऊँगली नहीं हूँ। मेरे कपड़े स्पर्श करने पर भी मुझे स्पर्श किया गया जबकि मैं कपड़ा नहीं हूँ। मेरा अंश जैसे मैं हूँ, वही समग्र में भी मैं हूँ। एक होते हुए भी वे अनेक एवं अनेक होते हुए भी एक हैं। यही उनकी लीला है। बालू के एक कण में वे जिस रूप में पूर्ण हैं, मनुष्य के भीतर भी वे उसी रूप में पूर्ण हैं और अखण्ड में भी वे इसी रूप में पूर्ण हैं। परन्तु इतर जन्तु से मनुष्य में इतना अन्तर है कि मनुष्य में एक विशेष शक्ति है जिसके द्वारा वह पूर्णता प्राप्त कर लेता है। मनुष्य से मेरा मतलब उससे है जिसके मन में होश हुआ है, वही मनुष्य है। जिसके मन में होश नहीं हुआ है जो विषय-वासना में तन्मय है, उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता और न वह ब्रह्मज्ञान का अधिकारी है। इतर जन्तुओं में यह शक्ति नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। पर हममें उस शक्ति का प्रकाश नहीं या कदाचित् प्रकाश होता है। तुम लोग यह जानते हो कि भगवान् मत्स्यरूप में, कूर्मरूप में, वराहरूप में आविर्भूत हुए थे। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि वे मत्स्य-कूर्म आदि जीव-जन्तु में भी पूर्ण रूप में हैं और उनमें स्वयं प्रकट होकर

वे इस सत्य का प्रचार कर चुके हैं। अवतारवाद का यही रहस्य है। इसीलिए कहती हूँ कि खंड में भी वे हैं, अखंड में भी वे हैं, वे युगपत् उभय में हैं।''

हम लोग मैदान में बैंठै माँ का उपदेश सुन रहे थे। उसी समय ढाका विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार खानबहादुर नाजिरुद्दीन अहमद सबेरे टहलने के लिए उसी मैदान में आते हैं। उन्हें देखते ही नगेन बाबू और अवनी बाबू बुलाकर माँ के पास लाये। भूपति बाबू ने माँ से उनका परिचय कराते हुए कहा – ''आप मुसलमान हैं।''

माँ रजिस्ट्रार साहब की ओर देखकर हँसती हुई बोलीं – ''पिताजी, मैं भी मुसलमान हूँ।''

माँ की बातें सुनकर (स्व) विभूचरण गुहठाकुरता तथा श्रीयुक्त नगेन्द्र दत्त महाशय ने माँ द्वारा नमाज पढ़ने की कहानी रजिस्ट्रार साहब को सुनाई। मुझे ऐसा लगा कि माँ के उक्त कथन के अन्तर्गत उस कहानी का कोई सम्बन्ध नहीं है। ''मुसलमान'' शब्द का अर्थ है – 'भगवान् का आज्ञाकारी भृत्य।' शायद इसी अर्थ में माँ ने अपने को मुसलमान कहा।

रजिस्ट्रार साहब ने कुछ देर बैठने के बाद अन्य व्यक्ति के मार्फत माँ से प्रश्न पूछा। उन्होंने पूछा कि जब आप शान्ति प्राप्त कर चुकी हैं तब यहाँ-वहाँ क्यों घूमती रहती हैं?

अब माँ को यह प्रश्न कहा गया तब माँने कहा – ''अगर मैं एक जगह रह जाऊँगी तो यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि मैं एक जगह क्यों रहती हूँ''

कुछ देर माँ देव दुर्लभ हँसी हँसने के बाद बोलीं – ''पिताजी मैं बहुत अशान्त लड़की हूँ, इसीलिए एक जगह नहीं रह पाती। अगर दूसरी ओर देखो तो मैं कहूँगी कि तुम लोगों में आने जाने की बुद्धि है, इसीलिए तुम लोग कह रहे हो कि मैं इधर-उधर जाती हूँ। वास्तव

में मैं एक ही स्थान पर हूँ। यों कह सकती हूँ कि मैं इधर-उधर नहीं जाती मैं अपने ही घर में धूम रही हूँ। तुम लोग जब अपने घर पर रहते हो तब क्या अपने घर के किसी कोने में बैठे रहते हो ? तुम लोग भी तो अपने घर में घूमते रहते हो ? उसी प्रकार मैं भी अपने घर में घूमती रहती हूँ। यह संपूर्ण विश्व मेरा घर है। मैं घर में ही हूँ।"

शान्ति प्राप्ति के उपाय

रजिस्ट्रार-आप बहुत शान्ति में रहती हैं। हम लोगों को बहुत झंझट है। कैसे शांति प्राप्त किया जा सकता है? आप क्यों नहीं हम पर शांति छींट देती ?

माँ - (हंसकर) तुम पूछ रहे हो कि किस उपाय से शांति प्राप्त की जा सकती है। मेरा कहना है कि जब तुम यह देखोगे कि "किस उपाय से" यह भाव जागृत होगा तभी शांति का मार्ग खोज लोगें।

माँ के कहने का ढंग देखकर हम सब अट्टहास कर उठे।

माँ - अशान्ति की सामग्री लेकर रहोगे तो शान्ति कहाँ से प्राप्त करोगे ? जिस वस्तु को लेकर रहा जाता है, उसकी आँच शरीर को लगती है। जैसे गरम वस्तु के पास जाने पर गरम आंच लगती है और ठंढी सामग्री के पास जाने पर ठंढी आंच लगती है। विषय लेकर रहने, अशान्ति वाली वस्तु लेकर रहने पर अशान्ति आयेगी ही। सत् या शुद्ध वस्तु लेकर रहने पर अखण्ड शांति। इसके अलावा अन्य विषय केवल खण्ड शान्ति अर्थात् शान्ति और अशान्ति का मिश्रण। इसलिए कहती हूँ कि सर्वदा उन्हें स्मरण करते रहो। काली कहो या अल्लाह कहो या खुदा-खुदा कहो, इससे कुछ आता-जाता नहीं। क्योंकि सब एक हैं। असल कार्य है - सर्वदा उन्हें स्मरण करने का प्रयत्न करो। आज तुम लोगों को एक कहानी सुना रही हूँ-

"एक राजा था। धन–दौलत की कमी उसके पास नहीं थी। इतना रहने पर भी उसे शान्ति नहीं मिलती थी। एक दिन लोगों की जबानी उसने सुना कि गुरु से दीक्षा लेकर जप–तप करने से शान्ति मिलती है। इसके बाद वे अपने कुलगुरु को खोजने लगे। अबतक कभी उन्होंने अपने कुलगुरु की तलाश नहीं की थी। इधर कुलगुरु अभाव के कारण दरिद्र जीवन व्यतीत कर रहे थे। राजा उनसे दीक्षा लेना चाहते हैं, सुनकर वे आनन्द से विभोर हो उठे। उन्होंने राजा के निकट बताया कि उनके पास एक ऐसा मंत्र है जिसके जप करने से कुछ दिनों बाद राजा को शांति प्राप्त होगी। शुभ दिन देखकर राजा ने दीक्षा ली। इस उपलक्ष्य में गुरु ने अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर ली। उन्हें अब कोई अभाव नहीं रह गया। इधर राजा गुरु से मंत्र लेकर यथाविधि जप करने लगे, पर उनकी अशांति बनी रही। उपराम के चिह्न दिखाई नहीं दिये। तब राजा ने गुरुदेव को बुलाकर कहा – 'आपके कथनानुसार मैने दीक्षा ली। जप–तप भी आपके उपदेश के अनुसार करता जा रहा हूँ लेकिन शांति नहीं मिल रही है। मैं आपको और सात दिन का मौका दे रहा हूँ। अगर इस बीच मुझे शांति प्राप्त नहीं हुई और उसे प्राप्त करने का कोई नवीन मार्ग अगर नहीं बता सकेंगे तो सात दिन के बाद मैं आपके साथ पूरे परिवार को फांसी दे दूँगा।'

राजा की बात सुनकर गुरुदेव के होश उड़ गये। भूख–प्यास समाप्त हो गयी। निद्रा गायब हो गयी। वे आसन्न मृत्यु की चिन्ता में अस्थिर हो उठे। कुलगुरु का एक ही लड़का था – गोबर गणेश। पढ़ा–लिखा नहीं था। जंगल और इधर–उधर घूमा फिरा करता था। भोजन के समय घर आता और फिर कहाँ गायब हो जाता था, किसी को पता नहीं। धीरे–धीरे छः दिन बीत गये। सातवें दिन कुलगुरु के घर रसोई तक बनने की नौबत नहीं आयी। भय और दुश्चिन्ता से गुरु और गुरु–पत्नी की स्थिति मृतवत् हो गयी। दोपहर के वक्त गुरु–पुत्र भोजन के लिए आये तो कहीं कुछ तैयारी नहीं है। नाराज होकर

वह अपने माँ–बाप को गालियाँ देने लगा। माता–पिता ने भी उसे खूब गालियाँ दीं। यह दृश्य देखकर उसे आश्चर्य हुआ। कारण का पता लगाना शुरू किया, तब पिता ने सारी कहानी सुनाई। यह भी बताया कि अगर कल कोई मार्ग न बताया गया तो हमारी मौत निश्चित है।

यह सुनकर लड़के ने कहा –'इसके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं। आपलोग भोजन बनाने की तैयारी करें। मैं कल राजा को शान्ति का मार्ग बता दूँगा।'

लड़के की बात सुनकर गुरुदेव आश्वस्त हुए और स्नानादि के बाद आहार करने गये। दूसरे दिन पिता–पुत्र एक साथ राजमहल गये। गुरु को देखते ही राजा ने कहा – 'गुरुदेव आपके कथनानुसार पिछले सात दिनों से जपादि करता आ रहा हूँ, पर शान्ति प्राप्त नहीं हुई। मुझे शान्ति क्यों नहीं मिली, आज अगर आप नहीं बता पायेंगे या शान्ति पाने का कोई नया मार्ग नहीं दिखा सकेंगे तो अपने निश्चय के अनुसार आपको मौत की सजा दूँगा।'

गुरुदेव पूर्व शिक्षानुसार राजा से बोले – 'महाराज, आपको शान्ति क्यों नहीं मिली, इसका उत्तर मेरा पुत्र देगा।'

राजा ने गुरुपुत्र से पूछा – 'क्या तुम इस बात का उत्तर दे सकोगे ?'

गुरुपुत्र ने कहा – 'हाँ, महाराज, मैं उत्तर दूँगा। लेकिन आपको मेरे कथनानुसार कार्य करना पड़ेगा। मेरे कथनानुसार कार्य करने पर आप समझ जायेंगे कि आप अब तक शान्ति क्यों नहीं प्राप्त कर सके और शान्ति का मार्ग कौन सा है।'

राजा राजी हो गये। गुरुपुत्र के निर्देशानुसार राजा और कुलगुरु दो बड़ी रस्सियाँ लेकर जंगल के भीतर रवाना हुए। कुछ दूर जाने के बाद देखा गया कि तीन वृक्ष पास–पास हैं। गुरुपुत्र उन्हें इन्तजार करने को कहकर एक पेड़ से राजा को कसकर बाँध दिया और दूसरी

रस्सी लेकर अपने पिता को दूसरे वृक्ष से बाँध दिया। बीच वाले पेड़ पर चढ़कर वह प्रसन्न चित्त से गीत गाने लगा। इधर बन्धन की यंत्रणा से राजा व्याकुल हो उठे। उन्होंने गुरुपुत्र से कहा कि मेरी रस्सी खोल दो। लेकिन उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वह अपनी इच्छानुसार इस पेड़ से उस पेड़ पर उछलता–कुदता और गाता रहा तब राजा ने गुरुदेव से कहा – "मेरा बन्धन खोल दो।"

गुरुदेव बोले –"मैं तो स्वयं ही बंधा हुआ हूँ। आपको कैसे खोलूँगा ?"

दर्द से बेचैन होने के कारण राजा को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने सोचा – "ठीक ही तो है। संसार के बंधन में रहकर मैं शान्ति प्राप्त कैसे कर सकता हूँ ? इसके अलावा जो स्वयंबद्ध है, वह मुझे कैसे मुक्ति दिला सकता है ?"

इस तरह की बातें सोचते हुए राजा ने गुरुपुत्र को बुलाकर कहा – "अब मेरा बन्धन खोल दो। मुझे शान्ति का मार्ग मिल गया है।"

गुरुपुत्र ने तुरन्त उन्हें बंधन–मुक्त कर दिया। राजा घर वापस नहीं आये। संन्यास लेकर चले गये।

विषय में आबद्ध रहने पर शान्ति कैसे प्राप्त कर सकते हो ? मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि शान्ति प्राप्त करने के लिए जंगल में जाना पड़ता है। गृहस्थी में रहकर भी शान्ति प्राप्त की जा सकती है। संसार उन्हीं के निकट तापमय है जिन्होंने सं को सार बनाया है। इसीलिए कहती हूँ पिताजी, तुम लोग अपनी इस लड़की को गोद में उठा लो। तुम लोगों ने इसे माँ कहकर कोने में रख छोड़ा है। माँ तो बुढ़िया है। बुढ़िया को तुम लोग गोद में नहीं उठाते। मुझे अपनी लड़की समझकर गोद ले लो। यह मेरी प्रार्थना है।"

इस दिन दोपहर को कीर्तन होने की बात थी। तीसरे पहर जरा विलम्ब से आश्रम गया। उस समय भी कीर्तन हो रहा था। शाम के बाद माँ आश्रम के बाहर आकर बैठीं। तब बातचीत चालू हुई।

दीक्षा का समय, कुलगुरु, गुरु प्राप्ति आदि

अवनी बाबू[१] – माँ दीक्षा का समय अर्थात् दिन–तिथि आदि होती है ?

माँ–यह संस्कार पर निर्भर करता है। सद्गुरु जब दीक्षा देते हैं तब वार, तिथि, शुचि–अशुचि आदि पर विचार नहीं करते। दूसरी ओर कभी–कभी इस पर विचार करना पड़ता है।

क्षितीश बाबू[२]–'गुरु अपने आप आते हैं' इस बात का क्या अर्थ है ?

माँ–'सब तो अपने आप हो जाता है। हम लोग अज्ञानी हैं, इसलिए समझ नहीं पाते। लौकिक दृष्टि से देखने पर यह देखा जाता है कि लोगों में गुरु पाने की इच्छा जागृत होती है, और वे उसे खोज लेते हैं। इसके बात उनसे दीक्षा ग्रहण करते हैं। लेकिन वास्तव में यह सब अपने आप हो जाता है। समय होने पर सब अपने आप हो जाता है तब इच्छा जाग्रत होतो है और गुरु मिल जाते हैं। देखते होंगे कि बीज के बोने के बाद पौधा अपने आप निकलता है। उसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसी प्रकार बिना प्रयत्न के जगत् की सभी चीजें अपने आप होती जा रही हैं। अगर कोई यह सोच ले कि मेरे गुरु अपने आप मेरे पास आकर मुझे दीक्षा देंगे और वह स्थिर होकर बैठ जाय तो गुरु जरूर उसके निकट आयेंगे। लेकिन यह भाव साधारण लागों में नहीं होता। साधारण लोग गुरु को खोजकर उनसे दीक्षा लेते हैं।'

क्षितीश बाबू–कुलगुरु से दीक्षा ली जा सकती है ?

माँ–अगर भक्ति विश्वास रहे तो क्यों नहीं ली जा सकती ? गृहस्थों को कुलगुरु से ही दीक्षा लेनी चाहिए। कुलगुरु वंश के मंगल की चिन्ता करते हैं। अतएव उनसे मन्त्र लेकर कार्य करना उत्तम है।

---

१. श्री युक्त अवनीमोहन बसु। आप ढाका के एक वकील और माँ के भक्त हैं।

२. श्रीयुक्त क्षितिशचन्द्र चौधुरी। आप ढाका विश्व विद्यालय के रजिस्ट्रार कार्यालय के हेड क्लर्क थे।

क्षितीश बाबू–अच्छा, नाम करने का अर्थ हैं गुरुदत्त द्वारा नाम करना।

माँ–हाँ, नाम करने के अर्थ है इष्ट नाम जप करना।

क्षितिश बाबू–गुरु प्रदत्त नाम बीच–बीच में करने के बाद कीर्तनादि किया। क्या इसमें कोई दोष है ?

माँ–दोष कैसा ? यह सब तो अच्छा है। सभी नाम उनके हैं। सभी शुद्ध भाव के सहायक हैं।

मैं–नाम के साथ क्या संस्कार का कोई सम्बन्ध नहीं है ?

माँ–तुम्हारे प्रश्न का मतलब नहीं समझ पाई।

मैं–गुरु जो नाम देते हैं, वह तो नशे में आकर नहीं देते। शिष्य के संस्कार को लक्ष्य करके देते हैं।

माँ–जरूर।

मैं–ऐसी हालत में उस नाम को छोड़कर शिष्य अगर अन्य नाम जप करे तो वह किस तरह सहायता करता है ?

माँ–भाव तो एक ही है। सभी नाम तो वही एक भाव प्रकट करते हैं। अतएव नाम, पूजा, भजन जो कुछ भी क्यों न करो; उससे शुद्ध भाव की पुष्टि होगी।

मैं–माँ, तुम प्रत्येक बात का उत्तर उच्चस्तर में मत दो। पहले निम्न स्तर से आरम्भ करो, फिर उच्चस्तर तक जाओ तभी हम तुम्हारी बात ठीक से समझ सकेंगे। मेरा प्रश्न यह है कि हम लोग एक नाम लेकर जप करने लगे। हम लोग सिर्फ जप नहीं करते। ध्यान भी करते हैं। ठीक–ठीक ध्यान हम लोगों से नहीं होता। फिर भी हम लोग किसी एक मूर्ति की कल्पना कर लेते हैं या किसी चित्र का चिन्तन करते हैं। उद्देश्य मन को स्थिर करना। लेकिन एक नाम छोड़कर जब अन्य सामान्य नाम ग्रहण करेंगे तभी नाम के साथ–साथ भिन्न मूर्ति ध्यान

में आ जायगी। यदि क्रमशः हमलोग भिन्न नाम और भिन्न ध्यान करते रहें तो चित्त स्थिर न होकर चंचल हो जायगा। ऐसा चंचल चित्त धर्म का सहायक किस रूप में होगा ?

माँ–मैं तुम्हें पहले भी बता चुकी हूँ कि लोग ध्यान नहीं करते। ध्यान अपने आप हो जाता है। इसके अलावा यदि एक नाम किसी के मन में बैठ जाय तो वह भले ही कोई भी नाम सुने क्यों नहीं, उसे ऐसा लगता है कि वह एक ही नाम सुन रहा है। सभी नामों में वह एक ही नाम की ध्वनि पाता है। तुमने मुझे नीचे उतरकर उत्तर देने को कहा है, मैं उस प्रकार से भी दे रही हूँ। प्रथम नाम–अभ्यास करने के लिए एक नाम से आरम्भ करना अच्छा है। उसे मन पर बैठा लेने की चेष्टा करनी चाहिए। गुरु ने जो नाम दिया है या जो नाम अच्छा लगे, उसी का जाप करना चाहिए। बाद में मन पर जब वह बैठ जाता है तब उच्च अवस्था की प्राप्ति होती है। अगर और नीचे उतर कर आने को कहो तो कहूँगी कि जिन लोगों में धर्म भाव ठीक से प्रस्फुटित नहीं हुआ है, ऐसे लोग किसी भी नाम को ले सकते हैं, जैसी पूजा की इच्छा हो, कर सकते हैं। किसी प्रकार से धर्म–भाव को जगाये रखने के लिये पूजा–जप, ध्यान, कीर्तन, दान जो कुछ करेंगे, उससे उपकार प्राप्त करेंगे। अब तो समझ गये ?

मैं–हाँ माँ, समझ गया।

सिद्धि प्राप्ति–देव दर्शन

एक वकील–कैसे सिद्धि प्राप्त की जा सकती है और उस समय जीवात्मा क्या दर्शन करता है ?

माँ–पूर्ण रूप से शुद्ध होने पर ही सिद्ध हुआ जाता है और तब जीवात्मा सब सिद्ध दर्शन करता है। (सभी हँस पड़े) सिद्धि का अर्थ तुम क्या समझते हो ? सिद्धि तो अनेक प्रकार की हैं। जैसे अष्ट सिद्धि किसी भी विषय पर सिद्धि प्राप्त करना। तुम कौन सी सिद्धि बता रहे हो ?

फिर यह भी कह रहे हो कि सिद्धि प्राप्त करने पर क्या देखने में आता है ? मेरा कहना है कि सिद्धि प्राप्त करने पर सिद्ध (पका हुआ) देखने में आता है। जैसे आलू सिद्ध, परोरासिद्ध। (सभी हँस पड़े)। यह हँसने की बात नहीं है। यह पूर्ण सत्य है। वह देखता है कि सब 'मैं' हूं अथवा सब 'तुम' हो। फिर 'मैं', 'तुम' जगत् सब कुछ एक में लय हो जाता है। इसी को भगवान् की प्राप्ति या ब्रह्म दर्शन कहते हैं।

प्रमथ बाबू–यह जो सुनता हूँ कि भगवान् आकर दर्शन देते हैं। लोग उनसे बात करते हैं, क्या यह झूठ है ?

माँ–मेरा कहना है कि बिलकुल झूठ। (कुछ देर चुप रहने के बाद) पुनः कह रही हूँ कि वह पूर्ण सत्य है। (मेरी ओर देखती हुई)। यह सब तो सवेरे की बात है। जब तक हम लोग अभाव के स्वभाव में हैं तबतक यह सब दर्शन–स्पन्दन है। स्वभाव में स्थिति होने पर सब एकाकार हो जाता है।

प्रमथ बाबू–अभाव का स्वभाव समझ में नहीं आया, माँ। साफ–साफ कहें।

माँ–हम लोग इस समय अभाव में हैं। यही हम लोगों का स्वभाव हो गया है। जैसे हम लोगों को भूख लगती है, हम लोग अभाव बोध करते हैं, बाद में खाने पर अभाव दूर हो जाता है। इसके बात नींद का अभाव अनुभव करते हैं, नींद से जागने पर घूमने या गपशप करने का अभाव बोध करते हैं। इसी प्रकार एक न एक प्रकार का अभाव बना रहता है। हम लोग इसी अभाव के बीच स्थिति प्राप्त करते हैं। इसी को अभाव का स्वभाव कहा जाता है। इसी से होकर स्वभाव में जाना पड़ता है। स्वभाव में जाने की क्षमता मनुष्यों में है, इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य के भीतर जिस प्रकार अज्ञान का पर्दा है, ठीक उसी प्रकार ज्ञान के दरवाजे हैं। ज्ञान के दरवाजे से होकर लोग स्वभाव की ओर लौटते हैं, स्थिति प्राप्त करते हैं।

इसके बाद कीर्तन करनेवाले लोग एक-एक कर विदा माँगने लगे। कीर्तन अधिकारी ने माँ के पास आकर कहा– "माँ, पिछले वर्ष आपके यहाँ कीर्तन करने आया था, पर तुम नहीं थी इसलिए कीर्तन नहीं किया। पिछले साल मेरा ३०० रुपये नुकसान हो गया । डर है कि कहीं इस वर्ष भी ऐसी घटना न हो जाय। अब तुम यह बता दो कि इस बार मैं किधर कीर्तन करने जाऊँ ?"

माँ–यह सब बातें मैं नहीं बताती, कह नहीं पाती। तुम लोग उसका नाम लेकर निकल पड़ो। जिधर जाना हो, चल दो। चिन्ता किस बात की।

पूर्व जन्म का संस्कार

इसके बाद कीर्तनिया से माँ ने कहा–"पिताजी, बिना बाजा के मुझे एक गीत सुनाओ।"

यह सुनकर कीर्तनिया ने एक छोटे बच्चे को गाने को कहा। बच्चा माँ के पास आकर बैठ गया। माँ ने बच्चे से पूछा–"तुम्हारा नाम क्या है ?"

बालक–हरिदास।

माँ–क्या तुम लोगों ने इसका यह नाम रखा है। या बचपन से इसी नाम से इसे बुलाया जाता है ?

कीर्तनिया–इसका यह नाम रखा गया है।

माँ–(बच्चे से) तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

बालक–केरामत अली।

यह सुनकर माँ प्रसन्न हो उठीं और बच्चे के दोनों गालों को दबाकर प्यार किया।

माँ–देखो, कैसा योगायोग है। मुसलमान के घर जन्म लेने पर भी पूर्व संस्कार के कारण यहाँ (अर्थात् हिन्दुओं के सम्पर्क में) आ गया है और कृष्ण नाम गाता फिर रहा है। इसीलिए मैं कहती हूँ कि धर्म में जाति– वर्ण का भेद नहीं होता।

लड़के ने गाना शुरू किया–

"संसार माया छाड़िये कृष्ण नाम भज मन।"

अत्यन्त मधुर स्वर में गाता रहा। उपस्थित सभी लोगों को पसन्द आया।

माँ–पूर्वजन्म के संस्कार गायन के ढंग से पकड़ में आ जाते हैं। (बालक से) तुम्हारा कौन–कौन है ? किसके पास रहते हो ?

कीर्तनिया–इसका कोई नहीं है। हमारी पार्टी में रहता है और हम लोगों के साथ गाता फिरता है।

माँ–(बालक से) जब तुम्हारा कोई नहीं है तब तुम मेरे साथ रहो। मैं तुम्हारा गाना सुनूँगी। क्यों ?

ये बातें कितने मधुर स्वर में कही गयीं, यह बताना कठिन है। मानो माँ विश्व का समस्त स्नेह और ममता उड़ेलकर बोल रही थीं। बालक चुप रहा।

माँ–क्यों, तुम मेरे पास रहोगे ? तुम्हारा तो अपना कहने को वहां कोई नहीं है, मेरे पास भी नहीं है। तब मेरे पास तुम्हें रहने में कौन–सी आपत्ति है ? मेरे पास रहोगे, मुझे गाना सुनाओगे, क्यों ठीक है ?

बालक–मेरे ऊपर आप अपनी कृपा रखियेगा। (सभी हँस पड़े)।

माँ–मेरे साथ इसकी जाने की इच्छा नहीं है, इसलिए ऐसा उत्तर दिया।

बालक विदा मांगकर चला गया। मैं सोचने लगा कि अभी समय नहीं हुआ है जानते हुए भी माँ ने ऐसा क्यों किया ? इस बालक को अपने पास बुलाने के लिए गीत सुनने की इच्छा प्रकट की। यह मुसलमान का बालक है, किसी के बिना बताये माँ पहले से जान गयी थीं। इसीलिए 'हरिदास' नाम सुनने के बावजूद माँ ने पूछा-'क्या यह नाम इसे दिया गया है ?' यहाँ तक कि माँ इसके पूर्व जन्म के संस्कार के बारे में भी जानती हैं, इस सम्बन्ध में इंगित किया। फिर ऐसी स्थिति में उसे बुलाकर इस तरह के प्रश्न क्यों पूछे गये ? क्या यह कृपा करने का छल है ? माँ ने बालक को स्पर्श भी किया जबकि सचराचर वे ऐसा नहीं करतीं। किस उद्देश्य से माँ ने ऐसा किया, इसे केवल माँ ही जानती हैं।

कुछ देर बाद बाउल बाबू गाने के लिए आ गये। इन्हें देखते ही माँ ने पूछा-"पिताजी, कैसे हैं ?"

बाउल बाबू-तुम कैसी हो, पहले यह बताओ, तब हम लोग कैसे हैं, बतायेंगे। (माँ के पास बैठते हुए) मां, हम लोग बद्धजीव हैं। बाल-बच्चों की गृहस्थी में फँसे रहते हैं। तुम लोग पहाड़ पर रहती हो। सुना है कि पहाड़ पर रहने से समतल भूमि दिखाई नहीं देती।

माँ-पहाड़ पर रहने से नीचे के लोग दिखाई नहीं देते, ऐसी बात नहीं है। हाँ, तब सब बराबर मालूम पड़ता है।

बाउल बाबू-इतने दिनों बाद पिता के घर से (अर्थात् हिमालय पर्वत से) आयी हो। हम लोगों के लिए क्या लायी हो ?

माँ-मैं अपने को तुम लोगों के लिए लायी हूँ। मैं ही तो तुम सब।

इसी तरह की बातें बराबर चलती रहीं। बातचीत में माँ को लाजवाब करना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। रात नौ बजने के बाद माँ को आश्रम के भीतर ले जाया गया। मैं भी विदा लेकर चला आया।

बारीक माई—जादू की गोली

दूसरे दिन यानी १६ दिसम्बर, सन् १९३५ ई. माँ के भोजन का दिन है। सवेरे कुछ फल और मिठाई लेकर आश्रम गया। काफी लोग माँ को घेरकर बैठे थे। कुछ देर मैदान में टहलने के बाद माँ वापस आयीं। आकर अपनी कुटिया के पूर्ववाले बरामदे में बैठीं। इधर–उधर की बातचीत के बाद बारीक माई की चर्चा चल पड़ी।

बारीक माई एक पंजाबी महिला हैं। उनका वास्तविक नाम मुझे नहीं मालूम। माँ उन्हें बारीक माई कहती हैं। महिला विधवा हैं। वे इतनी मोटी हैं कि उन्हें मांस का पिण्ड ही कहा जा सकता है। वहीं उन्हें लोग मोटकी न कहें इसलिए माँ बारीक (दुबली) माई कहती थीं।

यद्यपि बारीक माई पढ़ी–लिखी नहीं थीं, तथापि भाषण वे धारा प्रवाह देती थीं। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों कांग्रेस की कार्यकर्ता थीं और सर्वत्र भाषण देती रहती थीं। गीत, कविता आदि बना लेती थीं। माँ के प्रति एक कविता बनायी थीं। उसमें एक लाईन का आशय यह था – 'अपने शरीर के चाम से तुम्हारा जूता बनाऊँगी।' इस तरह के गीत वे उच्च स्वर से गातीं तथा अध्यात्म रामायण वे इतने जोर से गातीं कि लोग मैदान छोड़कर भाग जाते थे। इसके कारण उनका खूब मजाक उड़ाया जाता था। लेकिन वे इन बातों की परवाह नहीं करती थी। ऐसी दृढ़ संकल्पवाली महिला थीं।

कांग्रेस में उनका कार्य करना लोगों को पसन्द नहीं था। जब घर के लोग समझाते–समझाते हार गये तब एक दिन उन्हें दोतल्ले के एक कमरे में बन्द कर बाहर से ताला लगा दिया। उनसे कहा गया कि जब तक वे इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करेंगी कि आगे कांग्रेस के कार्यक्रमों में भाग नहीं लेंगी तब तक ताला नहीं खोला जायगा। उन्होंने भी खाना–पीना–सोना बन्द कर दिया। कमरे में रखे सामानों को तोड़ने–फोड़ने लगीं। फिर भी उन्हें मुक्त नहीं किया गया।

जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इस कार्यवाही से उन्हें मुक्त नहीं किया जायगा तब वे दोतल्ले से कूदकर सीधे कांग्रेस दफ्तर पहुँच गयीं। अपने विशाल शरीर को लेकर दोतल्ले से कूदने में उन्हें जरा भी भय नहीं लगा। 'मंत्र की साधना या शरीर का पतन' यही उनके जीवन का मूल सूत्र था। कांग्रेस के कारण एक बार जेल की सजा भुगत चुकी हैं। जेल में जाकर वे गर्दभ स्वर में इस तरह गाने लगीं कि लोगों की नींद हराम होने के अलावा जेलों में बन्द रहना कठिन हो उठा। जेल के अधिकारी लाख प्रयत्न करके भी उनका गाना रोक नहीं सके। उन लोगों के धमकाने पर वे बोलीं – 'तुम लोगों ने मेरे हाथ–पैर बाँध रखा है, पर मेरी जबान को बन्द नहीं कर सकते। मैं चिल्लाऊँगी तुम लोगों की जो इच्छा हो, कर सकते हो।'

अन्त में अधिकारियों ने उन्हें छोड़ दिया। जेल से बाहर आकर बारीक माई ने 'सत्संग' का गठन किया। वहाँ सदालोचना, सद्ग्रन्थ का पाठ होता था। निश्चित दिन भजन–गीत होते थे। इसी प्रकार सदालोचना में अपना दिन गुजारने लगीं।

माँ ने मुझसे कहा–'जिन दिनों मैं हृषीकेश में थी, उन दिनों अक्सर मेरे पास आया करती थी। उसे मेरे पास आते देखकर उसके सत्संग के साथियों में से कोई पूछता कि तुम उस बंगाली महिला के पास क्यों जाती हो ? क्या तुम नहीं जानती कि बंगाली औरतें जादू जानती हैं। ये लोग मंत्र के जरिये मनुष्य को भेड़ा बना देते हैं। यह सब सुनते हुए भी वह मेरे पास बराबर आती रही। जब उसने यह अनुभव किया कि यहाँ आने से कोई लाभ नहीं है। तब मेरे यहाँ उसका आना–जाना बन्द हो गया।'

''एक बार शारदा कुछ दिनों की छुट्टी लेकर मेरे पास आयी। उसकी इच्छा हुई कि बारीक माई के गीत और पाठ सुनना चाहिए। वह उसकी तलाश करने लगी। एक दिन हम लोग पूर्णानन्द स्वामी

के यहाँ जा रहे थे। अचानक रास्ते में बारीक माई के साथ मुलाकात हो गयी। शारदा उसे पूर्णानन्द स्वामी के आश्रम में ले गयी। इसके बाद से वह बराबर मेरे यहाँ आने का नशा उसपर सवार हो गया। उन दिनों भी उसकी सहेलियाँ मेरे यहाँ आने को मना करती थीं, पर उसने इस पर ध्यान नहीं दिया। वह केवल मेरे पास आती ही नहीं थी, बल्कि मेरे यहाँ खाती, सोती तथा मेरे पास बैठी रहती थी। इस प्रकार चुपचाप रहना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। लेकिन कर भी क्या सकती थी। मेरा साथ छोड़कर कहीं जा नहीं पाती थी। उसके स्वभाव में इस प्रकार का परिवर्तन देखकर लोग विस्मित हो गये। यहाँ तक कि वह स्वयं भी कम विस्मित नहीं हुई।''

''इधर मैं जिस प्रकार एक दिन के बाद एक दिन आहार करती हूँ, वह भी उसी प्रकार करने लगी। मेरी मनाही उसने माना नहीं। लोगों के निकट मैं जादू जानती हूँ सुनकर तथा अपने में परिवर्तन देखकर उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि सचमुच में मैं जादू जानती हूँ। उसने सुना था कि रात को मैं जमीन से शून्य में उठ जाती हूँ। इस बात को देखने के लिए वह अक्सर रात को जागकर देखा करती थी। लेकिन इतना श्रम करने पर भी वह कुछ देख नहीं पायी। इसके बदले रात को मेरे साथ बातचीत करते रहने पर वह इतना समझ गयी कि मैं रात को सोती नहीं। तब उसने सोचा कि मैं सजग रहती हूँ, इसलिए ये शून्य में आती–जाती नहीं। फलतः रात को बैठी न रहकर वह नींद का बहाना बनाकर चुपचाप मुझ पर सतर्क दृष्टि रखने लगी। कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो जाने पर अनाहार और अनिद्रा के कारण वह काफी दुबली हो गयी। यहाँ तक कि एक दिन उसकी स्थिति नाजुक हो गयी। हाथ–पैर ठंडे हो गये, मुँह से गों–गों आवाज करने लगी। उसकी ऐसी हालत देखकर मैंने ज्योतिष से कहा–'इसकी हालत बहुत खराब है। आग लाकर जरा इसे सेंक दो और इसके शरीर पर हाथ फेर दो ।'

'ज्योतिष उसके बदन पर हाथ रखने के बाद बोला – माँ, इसे बुखार हुआ है।'

मैंने कहा–इसे बुखार नहीं है। तू सिर्फ बदन पर हाथ फेर दे।'

ज्योतिष मेरी आज्ञा के अनुसार हाथ फेरने लगा। लेकिन मैने देखा कि वह भय से इतना सिकुड़ गया कि उससे सेवा करना असंभव हो उठा। काँपते–काँपते अवश हो गया। यह देखकर मैं स्वयं उसके बदन पर हाथ फेरने लगी।

ज्योतिष ने मुझसे कहा–'जरा देखिये, उसकी सांस चल रही है या नहीं ?'

मैंने देखा कि उसकी सांस धीरे–धीरे चल रही है। अन्त में वह एकदम बन्द हो गयी। बहरहाल कुछ देर बदन पर हाथ फेरने के बाद उसकी हालत सुधरी। उसने आँखें खोलकर देखा। यह देखकर ज्योतिष ने आयुर्वेदिक दवा की दो गोलियाँ उसे खाने को दी। यह दवा ज्योतिष को गोपालजीने दी थी। देहरादून में जब यह बीमारी के कारण काफी दुर्बल हो गया था तब उसे सबल बनाने के लिए यही दवा दी गयी थी। शायद उक्त दवा की कुछ गोलियाँ अभी तक उसके पास थीं। यह दवा खाने के बाद वह कुछ स्वस्थ हुई। इस प्रकार रात गुजर गयी। दूसरे दिन सारी घटना उसे बताने के बाद कहा गया कि अगर रात को आगे से नहीं सोओगी तो मेरे निकट तुम नहीं रह पाओगी। उसने स्वीकार किया कि अब सो जाया करेगी।

''इस घटना को सुनकर उसकी सहेलियाँ कहने लगीं–'अभी तक तू यह नही समझ सकी कि बंगालिन मायाविनी ने तुझे जादू की गोली खिलायी है।' तेरा शरीर इसीलिए इतना खराब हो गया है।''

यह सब बातें सुनने तथा अपने शरीर की हालत देखकर उसे विश्वास हो गया कि शायद मैंने कुछ किया है। उसने मेरे निकट आना बिलकुल बन्द कर दिया। कुछ दिनों बाद अपना बिछौना आदि लेने

के लिए आयी। उस समय हम लोग हरिद्वार जाने को तैयार हो रहे थे। हम लोगों के लिए बस आ गयी थी। उसे देखते ही मैंने पूछा– 'क्यों माताजी, तुम्हारा जादू दूर हुआ ?'

यह सुनकर उसने सोचा कि मैं सब जानती हूँ, सब देख लेती हूँ झट मेरे पैरों को पकड़ती हुई बोल उठी–'माँ, मैं तुम्हारे साथ हरिद्वार चलूंगी।'

मैंने कहा–'अगर तुम यहाँ से चली न गयी होती तो मेरे साथ चल सकती थी। लेकिन अब कोई उपाय नहीं है। हमारी गाड़ी तैयार है और एक भी सीट खाली नहीं है।'

उसे छोड़कर हम लोग हरिद्वार चले आये। बाद में वह मेरे पास आयी थी। लेकिन उसे अपने पास न रखकर मैंने उसे उसके घर भेज दिया। बाद में वह समझ गयी कि वह जो अस्वस्थ हुई थी, जादू के कारण नहीं, बल्कि आहार–निद्रा त्याग के कारण हुई थी। अब तो तुम लोग सुन चुके कि कैसे बंगाली मायाविनी जादू की गोली खिलाती हैं। पर यह भी जान लो कि शुद्ध भाव से एक लक्ष्य होना भी एक जादू की तरह है। अगर वह भाव एक बार आ जाता है तब उसे हटाया नहीं जा सकता।''

आज बहुत से लोगों ने बाबा भोलानाथजी से दीक्षा ली। दोपहर से दीक्षा–दान आरम्भ हुआ। जब मैं शाम के समय पहुँचा तबतक दीक्षा का कार्यक्रम चलता रहा। शिव मन्दिर के भीतर मां तथा बाबा भोलानाथ बैठे थे, द्वार पर स्वामी शंकरानन्द जी थे। दीक्षाप्रार्थी एक–एक कर भीतर जा रहे थे। हम लोग मैदान में बैठे थे। रात को ७ बजे मां और बाबा भोलानाथ दीदी मां के यहाँ आहार करने गये। जब वे लोग वापस आये तब हम लोग नामघर के पास जाकर खड़े हुए। ठीक इसी समय भूपति बाबू ने आकर मुझसे कहा कि ढाका विश्वविद्यालय के भूतपूर्व इलेक्ट्रिशीयन स्वर्गीय सरोज बांधव घोष महाशय की पत्नी

मां के साथ मुलाकात करने आयी थीं। उनके बारे में मां से कहने पर मां ने कहा कि वह आकर उनसे कोई सवाल न पूछे वर्ना मां के मुँह से कोई बात नहीं निकलेगी।

मैंने भूपति बाबू से पूछा–"इसका वजह क्या है, इस बारे में आपने मां से क्यों नहीं पूछा?"

उन्होने कहा कि इस ओर उनका ध्यान नहीं गया। बाद में पूछुँगा।

अनाहत ध्वनि, योग विभूति

कुछ देर बाद मां नामघर में आयीं। लड़कियां एक-एक कर मां को प्रणाम करने के बाद जाने लगीं। जब लड़कियों की संख्या घट गयी तब भूपति बाबू ने मां से पूछा–"मां, तुमने तब कहा था कि कोई जब तक तुमसे कुछ नहीं पूछता तब तक तुम्हारे मुँह से कुछ नहीं निकलता। इसका कारण क्या है?"

मां–देखो, एक ध्वनि अनवरत मेरे भीतर होती रहती है। उस ध्वनि में एक चोट लगकर जब एक और ध्वनि नहीं होती तबतक मैं कुछ भी नहीं सुन पाती और न मेरे मुँह से कोई शब्द निकलता है। जब कोई प्रश्न पूछा जाता है तब उस ध्वनि पर आघात लगती है। उस वक्त उसी के अनुसार मेरे भीतर से एक उत्तर आता है।

कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कोई अपना कहता जा रहा है और मुझे नहीं दे रहा है। लगता है जैसे वह बड़बड़ाते हुए न जाने क्या कह रहा है। दूसरी ओर अगर कोई मन–ही–मन प्रश्न पूछता है तब मैं उसे उसी ढंग से जवाब देती हूँ। ऐसे प्रश्न या उत्तर दूसरा कोई नहीं सुन पाता। अक्सर ऐसा भी होता है कि मैं बात करती जा रही हूँ और उपस्थित लोग इन्हीं बातों के बीच अपनी–अपनी समस्याओं का उत्तर पा लेते हैं। मौखिक या मन में बिना प्रश्न किये ही अपने संशय का समाधान कर लेते हैं।

मुझे लक्ष्य करती हुई बोलीं–पिताजी ने मुझे नीचे उतरकर जवाब देने को कहा है, इसीलिए मैं नीचे उतर कर जवाब दे रही हूँ। साधना करते करते ऐसी स्थिति हो जाती है कि अगर कोई साधक के सामने आकर खड़ा हो जाता है तो उसके मन के भाव अपने–आप साधक के मन के भीतर तैरने लगते हैं। वह अपने मन का भाव जिस प्रकार समझ लेता है, ठीक उसी प्रकार दूसरों के भाव को भी समझ लेता है। कौन क्या भाव लेकर आया है, इसे वह उसके मुँह को देखते ही समझ लेता है। कण्ठस्वर सुन कर भी समझ लेता है। तुम लोगों ने देखा होगा कि शिशु बातें नहीं कर पाता, पर बुजुर्ग उसके हाव–भाव को देख कर उसके मन के भावों को समझ लेते हैं, ठीक इसी प्रकार जो लोग साधन–भजन करके उच्च स्तर तक पहुँच गये हैं, वे लोग हमारे जैसे बच्चों के हावभाव और दृष्टि से मन की बात समझ लेते हैं।

ये सब साधन की स्थितियाँ हैं। प्रत्येक साधक को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है। जब साधक को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है तब उसे खूब आनन्द मिलता है। यह आनन्द भी शक्ति के विकास के लिए है। कारण विभूतियाँ भगवान् की शक्ति के अलावा और क्या हैं। साधक साधना के बल से जिस परिमाण में विशुद्ध भाव प्राप्त करता है, उसके हृदय में उसी परिमाण में शक्ति का विकास होता है। लेकिन इन शक्तियों को प्राप्त करने के बाद उसे प्रकट नहीं करना चाहिए। जितना अपने–आप प्रकट हो जाता है, उससे क्षति नहीं होती। लेकिन साधक प्रायः अपनी इच्छा से उसे प्रकट कर देते है। इससे उसी का नुकसान होता है और आगे वह साधना–पथ पर अग्रसर नहीं हो पाता। विभूति प्रकट होने के साथ–साथ अगर अहंकार या प्रतिष्ठा की भावना उत्पन्न होती है तब वह साधना का अन्तराय हो जाता है। दूसरी विभूति प्राप्ति का आनन्द अगर साधक को साधना–पथ पर उत्साहित करता रहे तो दो–चार विभूति अपने–आप प्रकट हो जाने पर भी साधक का

कोई नुकसान नहीं होता। वह क्रमशः उच्च स्थिति से और उच्च स्थिति तक पहुँच सकता है।

अहंकार और प्रतिष्ठा साधना के प्रधान अन्तराय हैं। इसके आने पर विभूतियां नहीं रहतीं। तब यह समझने की जरूरत नहीं कि कोई पूर्ण विभूति बिना प्राप्त किये, साधना के अन्तिम छोर तक बिना गये उसे दूसरों को नहीं दे सकता। जैसे इंट्रेस पास करने के बाद नीचे के दर्जे के लड़को को पढ़ाया जा सकता है। इसीलिए अनेक साधु साधना की चरम सीमा तक न पहुँच कर भी अपने द्वारा उपलब्ध साधन धन अपने-अपने शिष्यों को देते हैं।

साधकों में जिन विभूतियों का विकास होता है, उसके भी कारण हैं। विभूति प्राप्त करना साधक के संस्कारों से होता है। तुमने सुना होगा कि अक्सर कुछ लोग कहते हैं-'अगर मुझमें इस तरह की शक्ति होती जिसके द्वारा मैं रोग दूर कर सकता तो मैं संसार में व्याप्त रोगजनित दुःखों को दूर कर देता।'

कुछ लोग अपने सुनाम और प्रतिष्ठा के लिए इन शक्तियों की आकांक्षा रखते हैं। उन लोगों के इन आकांक्षाओं से जिस संस्कार की सृष्टि होती है, वही पुनःसाधना के मार्ग में विभूति के रूप में दिखाई देती है। वह देखता है कि इतने दिनों से जिस शक्ति की आकांक्षा वह करता रहा, अब वह उसके पास आ गयी है। यही शक्ति ही तब साधना में विघ्न उत्पन्न करती है। इससे साधक का पतन हो सकता है। लेकिन साधक अगर इसमें आबद्ध न होकर साधना के मार्ग पर बढ़ता जाय तब यह सब विभूतियां लय हो जाती हैं। यहाँ लय हो जाने का यह अर्थ नहीं है कि वह नष्ट हो जाती हैं। विभूति उस समय साधक का स्वभाव बन जाता है।

प्रमथ बाबू-विभूति प्राप्त होने के बाद उसका पतन न हो, इसका उपाय क्या है?

माँ–वही बताया न, एक लक्ष्य में रहना चाहिए। लक्ष्य की ओर दृष्टि रखकर साधक चलता रहे तो उसका पतन नहीं होता। विभूति के आने पर उसे लेकर मगन न होकर साधना के मार्ग पर चलते रहने से विभूति और उसका अन्तराय नहीं होता। इसीलिए देखा जाता है कि अधिकतर साधकों की दो–एक विभूतियाँ प्रकट होकर रुक जाती हैं और साधक चरम अभीष्ट प्राप्त करता है।

मैं–माँ, विभूति स्वभाव में चली जाती है, इसका क्या अर्थ है?

माँ–मान लो एक व्यक्ति ने देवी–साधना आरम्भ की और इस साधना के जरिये उसने देवी को प्राप्त किया। इस प्राप्ति को हम खण्ड प्राप्ति कहेंगे तथा इसमें से जो विभूति प्रकट होगी, वह भी खण्ड विभूति होगी। लेकिन यही देवी भाव जब अखण्ड रूप से प्राप्त होगा तब भी विभूति रहेगी। उसे हम अखण्ड विभूति कहेंगे। यह अखण्ड विभूति, विभूति नहीं है। यह स्वभाव है। इसलिए उत्तम विभूति प्रकाश है स्वभाव विभूतिमय होना। स्वभाव ही विभूति, विभूति ही स्वभाव है।

मैं–विभूति में स्थिति प्राप्त करना, यह क्या है?

माँ–खण्ड विभूति प्राप्त करना ही विभूति में स्थिति प्राप्त करना। स्थिति प्राप्त करना कहने पर यह मत समझना कि विभूति चिरस्थायी हो गयी है, कारण विभूति चिरस्थायी हो नहीं सकती जबकि वह संस्कार पर निर्भर करती है। पर हम इस अर्थ में स्थिति कहते हैं कि साधक उस पर खड़ा है। वे अब साधना–पथ पर नहीं चल रहे हैं। मान लो तुम दालान से छत पर जाओगे। छत पर चढ़ने के लिए कुछ सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। अब कल्पना करो कि छत साधक का चरम अभीष्ट है और सीढ़ियाँ नाना प्रकार की विभूतियाँ। साधक छत पर चढ़ते–चढ़ते किसी सीढ़ी पर खड़े हो जाते हैं तब हम कहेंगे कि उन्होंने विभूति में स्थिति प्राप्त की है। अब वे साधना–मार्ग पर नहीं चल रहे हैं। इस स्थिति को प्राप्त करते ही पुनः गिर जाने की आशंका बनी रहती है। पतन होगा ही, ऐसी बात नहीं है, पर सम्भावना बनी रहेगी।

भूपति बाबू ने जब यह प्रश्न किया तब मैं वहाँ खड़ा था। सोच रहा था कि अगर माँ का उत्तर अस्पष्ट या संक्षिप्त हुआ तो मैं अधिक देर न रुककर घर चला जाऊँगा। मुझे खड़ा देखकर माँ ने कहा– "पिताजी तुम खड़े क्यों हो? शायद तुम जाना चाहते हो, इसीलिए पीछे खड़े हो?"

मैं–देखूँ, क्या होता है।

माँ–पिताजी के जाने का एक निर्दिष्ट समय है। इसे मैंने गौर किया है। जब वह समय आ जाता है तब पिताजी ठहरना नहीं चाहते।

नगेन बाबू–अच्छी बातें होने पर अमूल्य बाबू ठहर जाते हैं। जब बेकार बात होने लगती है तब चले जाते हैं।

माँ–नहीं, अच्छी बातों के बीच भी वे चले जाते हैं। शायद अक्सर अनिच्छा के साथ प्रतीक्षा करते हैं, फिर चले जाते हैं। यह पिताजी की एक आदत है। यह अच्छा है। (मुझसे) अच्छा, पिताजी, तुम ऐसा क्यों करते हो? बोलो? (हँसकर) बोलो? आज तुम्हें अच्छी तरह समझ समझ लेना चाहती हूँ। काम रहता है शायद इसलिए चले जाते हो? या यह सोचते हो कि माताजी घर पर बैठी होंगी?

मैं–तुम्हीं तो सब कह रही हो, मैं क्या बोलूँ?

माँ हो–हो कर हँस पड़ी और बाद में कहने लगीं–"तब और कुछ नहीं कहूँगी।"

इसके बाद विभूति बाबू के प्रश्न के उत्तर में विभूति के बारे में जो चर्चा चली थी बताने लगीं। निशि बाबू मेरे पास आकर बोले– "माँ से पूछिये कि साधना में पतन हो जाने पर क्या पुनः उठा जा सकता है?"

मैं–माँ, तुम्हारा एक लड़का यह जानना चाहता है कि अगर साधना करते–करते किसी का पतन हो जाय तो क्या पुनः उठा जा सकता है या नहीं?

माँ–गिरने पर उठना होता है। असल चीज तो चढ़ने–उतरने के बाहर है। (निशि बाबू से) पिताजी अपना प्रश्न स्वयं क्यों नहीं करते ?

मैं–माँ, लोग जब कचहरी में मुकदमा दायर करते हैं तब वे स्वयं जज से बहस कर सकते हैं, फिर भी लोग वकील के पास जाते हैं। उसी प्रकार जो व्यक्ति तुम्हारे निकट अनवरत बक–बक करता रहता है, प्रश्न करने की इच्छा लेकर उसके पास जाता है। यह स्वाभाविक है।

मेरी बात सुनकर माँ तथा निशि बाबू हँस पड़े।

माँ–तुम भी गम्भीर हो। अधिक बात नहीं करते। आजकल दो–चार बातें कहने लगे हो।

इन बातों के बाद प्रमथ बाबू से माँ ने गाने को कहा। प्रमथ बाबू ने भाव–विभोर होकर तीन गीत गाये। गीत समाप्त होने के बाद माँ ने कहा–भूपति पिताजी, अब तुम जा सकते हो। अमूल्य पिताजी, आप भी अब जा सकते हैं।

हम लोग माँ को प्रणाम करने के बाद विदा लेकर चले आये।

१७ दिसम्बर, सन् १९३५ ई. मंगलवार को आश्रम जाकर देखा कि श्री श्री माँ मैदान में घूमने गयी हैं। कुछ देर बाद मां वापस आयीं। हम लोग नामघर में जाकर बैठ गये। सी.आई.डी. इंस्पेक्टर श्रीयुक्त जितेन्द्रधर महाशय माँ से प्रश्न पूछने लगे।

जितेन बाबू–संसार में सुखी कैसे रहा जा सकता है?

माँ–सं (बहुरूपी) बनकर रहने से संसार में सुखी रहा जा सकता है. देखते नहीं, लोग नाना प्रकार के वेष धारण कर सं बने रहते हैं, लेकिन सं बनने पर भी वे लोग अपना स्वरूप नहीं भूलते। हम लोग सं बनते नहीं, सं को हम सब सार बनाते हैं, इसलिए हम संसारी हैं। जिन लोगों को लेकर हम गृहस्थी चलाते हैं, उन लोगों को भी

यदि हम सं की तरह अनित्य समझ लें तभी हम संसार में सुखी हो सकते हैं।

जितेन बाबू–अगर हम लोग संसारी बनकर सुखी और सन्तुष्ट रहें तो इसमें दोष क्या है?

माँ–मैं दोष के बारे में नही कह रही हूँ। अगर उसमें डूबकर रहा जाय तो अच्छा है। लेकिम डूबकर रहा नहीं जा सकता। डूबने से दम घुटने लगता है और हम हाँफ उठते हैं। देख लो, तुम लोग पोशाक वगैरह पहन कर निकलते हो। कुछ देर बाद पोशाक के भार से अस्थिर हो उठते हो। उसे उतारने के लिए बेचैन हो जाते हो और उतारने के बाद आराम पाते हो। उसी प्रकार मनुष्य स्वभावतः मुक्त है। वह मुक्त रहना पसन्द करता है। बन्धन से परेशानी महसूस करता है। यही वजह है कि संसारी बनने आकर वह गृहस्थी में रहना नहीं चाहता। गृहस्थी के बन्धन उसे बेचैन कर देते हैं। वह मुक्ति पाने के लिए छटपटाता है। एक बात और है। सभी आनन्द और शान्ति चाहते हैं। मनुष्य का स्वभाव ही आनन्द का स्वभाव है। वह इसी आनन्द में स्थिति प्राप्त करना चाहता है। इसलिए आनन्द की तलाश में चक्कर काटता है। अगर उसके भीतर आनन्द का यह ज्ञान न होता तो आनन्द की तलाश क्यों करता? अगाध आनन्द की अनुभूति उसके भीतर है, इसीलिए तो संसार–बंधन उसे कष्ट देते हैं। जीव भाव ही बद्ध भाव है। इस बद्ध भाव से मुक्त होने के लिए जीव आनन्द में स्थिति प्राप्त करता है।

जितेन बाबू–कुछ लोगों का मत है कि पूर्वजन्म नहीं होता। हम लोग भी यह अनुभव कर रहे हैं कि पूर्वजन्म में क्या थे या नहीं थे, यह हम लोगों को स्मरण नहीं है। ऐसी हालत में इस जन्म के वैषयिक सुख को लेकर क्यों न आनन्द मनाये? यह तो हम लोगों को सुख दे रहा है। हम लोग क्यों धर्म–धर्म करें?

माँ—यह बात सही है कि पूर्व जन्म में हम लोगों ने क्या किया है, यह स्मरण नहीं है, पर उसकी एक छाप हमारे ऊपर है। जैसे अक्सर ऐसा होता है कि कैसे हमारे हाथ—पैर जल गये, यह हमें स्मरण नहीं रहता। लेकिन जलते के दाग रह जाते है। वह हमें यंत्रणा देता है। ठीक उसी प्रकार पूर्व जन्म में मैंने क्या किया है, यह स्मरण नहीं रहता, फिर भी पूर्वजनित एक यंत्रणा हममें है। इसके अलावा स्मृति नामक एक चीज है अर्थात् हम लोगों की कभी ऐसी हालत थी कि जब कोई यंत्रणा नहीं थी, उस अवस्था की एक स्मृति भी हमारे पास है। इसीलिए हम लोग ज्वाला—यंत्रणा से मुक्ति चाहते हैं। अगर यह न होता तो शान्ति—मुक्ति की तलाश न कर पाते। तुम अगर इस संसार को लेकर सुखी हो सकते हो तो तुम्हें अभाव बोध नहीं होगा। लेकिन तुम आज जो कुछ सवाल कर रहे हो, उससे यह समझ में आ रहा है कि तुममें अभाव बोध है। अगर ऐसा न होता तो यह सवाल क्यों उठता। शरीर धारण करने पर शरीर का भोग है। पोशाक पहनने पर पोशाक की यंत्रणा होती है। कम—से—कम पोशाक की रक्षा करने के लिए एक चिन्ता होती है। वही तब यंत्रणा देती है। गृहस्थी करने पर ज्वाला—यंत्रणा आयेंगी। इसलिए यह प्रयत्न करना चाहिए जिससे इस यंत्रणा से सामयिक रूप से नहीं, हमेशा के लिए शान्ति प्राप्त हो सके।

जितेन बाबू—इस संसार में रहते हुए अगर संसार के सुखों को पकड़े रहने की चेष्टा करूँ तो सब हो जायगा।

माँ—पकड़ने का प्रयत्न करने पर खोना पड़ेगा। मैं जिस सुख के बारे में कह रही हूँ, उसे पकड़कर रखा नहीं जा सकता। वह अपने आप होता है और हमेशा के लिए होता है। यहाँ आनन्द चेष्टासाक्षेप नहीं है। आनन्द इसका स्वभाव है। विषय का आनन्द चेष्टासाक्षेप तथा वह खण्ड एवं क्षणस्थायी होता है। सच्चिदानन्द आनन्द चिरस्थायी। हमें

इस आनन्द को छोड़कर ऊपर उठना होगा। वह बात की बात है। इस समय यही कहा जा सकता है कि हम लोग संसार में जो आनन्द पा रहे हैं, उससे स्थायी आनन्द हमारे भीतर है। उसी में हमें स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

जितने बाबू–तो क्या गृहस्थ–धर्म कुछ नहीं है?

माँ–किसने कहा कि कुछ नहीं है। अगर वह नहीं है तो हम आये कहाँ से? कुछ भी आसमान से न तो टपकता है और न जमीन फोड़ कर निकलता है। पर हम लोग ठीक–ठीक गृहस्थ धर्म का पालन कहाँ करते हैं? पहले चार आश्रम था। जिसमें प्रथम है–ब्रह्मचर्य। आजकल वह है नहीं, ऐसा कहा जा सकता है। उसके न रहने से ही सभी आश्रमों में गण्डगोल हो गया है। गृहस्थ का अर्थ मैं यह समझती हूँ कि गृह को हस्तगत करना। पर हम गृह को हस्तगत नहीं करते, बल्कि गृह ही हमें हस्तगत कर रहा है।

जितेन बाबू–शान्ति प्राप्ति के दो उपाय हैं। प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग। हम निवृत्ति मार्ग की और क्यों जायेंगे?

माँ–मार्ग केवल एक ही है। निवृत्ति मार्ग की और प्रवृत्ति मार्ग, इसीलिए कहती हूँ कि त्याग नाम का कुछ नहीं है। है केवल भोग। मानव खण्ड भोग से परिपूर्ण भोग की ओर अग्रसर हो रहा है।

ठीक इसी समय ७।। की घंटी बजी। मेरे लिए ठहरना कठिन हो गया। कालेज चल पड़ा। तीसरे प्रहर आश्रम में आकर देखा कि महिलाएँ माँ को इस प्रकार घेरकर बैठी हैं कि उस व्यूह को भेदकर कोई भी पुरुष मां के पास पहुँच नहीं सकता। मैदान में बैठकर हम लोग गप लड़ाने लगे। शाम होने के कुछ पहले मोती बाबू आये। सुना कि मोती बाबू सवेरे सिद्धेश्वरी आश्रम में शिवजी के कमरे में जूता पहने माँ से मिलने के लिए चले गये थे। इस तरह प्रवेश करते समय किसी के निषेध की परवाह उन्होंने नहीं की।

मोती बाबू के साथ हम बातचीत करने लगे। वे माँ के आकर्षण में कैसे आ गये, इसकी कहानी सुना रहे थे। उन्होंने कहा–''मैं बचपन से मातृहीन हूँ। फलतः बचपन से ही मातृ–स्नेह का बुभुक्षु हूँ। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि बचपन में मुझे अपने लोगों से स्नेह नहीं मिला। स्नेह पर्याप्त मिला है। लेकिन उसका आतिशय्य मुझे यह स्मरण कराता रहा कि यह आन्तरिकता शून्य है। कहीं मुझे अपनी माँ की याद न सताये, इसलिए लोग मुझे अधिक प्यार देते थे।''

''एक दिन प्रमथ बाबू ने मुझसे आनन्दमयी माँ की चर्चा की। मैंने पहले से ही निश्चय कर लिया था कि मैं आनन्दमयी को **'माँ'** नहीं कहूँगा और न प्रणाम करूँगा। लेकिन इन्होंने मुझे जबरन **'माँ'** कहने को मजबूर किया।''

''माँ सुन्दरी हैं, इसलिए नहीं। मैं अनेक सुन्दरी महिलाओं के चित्र विलायत में देख चुका हूँ। लोब्रे में जितने चित्रों के संकलन हैं, उन्हें भी देखा है। उन सबकी तुलना में मां सुन्दरी नहीं है। लेकिन इनके चेहरे पर सरलता–मण्डित स्निग्ध भाव है जो वास्तव में दुर्लभ है। इनकी हँसी भी अपूर्व है। इस प्रकार की खिलखिलाहट देखने में नहीं आती। इस हँसी में मां का प्रत्येक अंग–प्रत्यंग सहयोग देता है।''

''प्रथम दिन जब आया तो मां के साथ जमकर बात किया था, बाद में फिर कोई बात नहीं हुई। इस पर मां ने कहा था कि मेरा मुँह वे बन्द करवा चुकी हैं। यह बेकार की बात है। मैं जान बूझकर बातें नही करता। मैं निर्वाक् होकर इनका देव–दुर्लभ दर्शन करता हूँ। ये जो कुछ बातें कहती हैं, वह सब मेरे कानों तक नहीं पहुँचतीं।''

''पिछले सोमवार को कचहरी का काम समाप्त होने के बाद मैं प्रमथ बाबू के साथ आश्रम में आया। प्रमथ बाबू की लड़की ने एक गुलाब का फूल दिया। मैंने उक्त फूल मां को दिया। मां फूल अपने हाथ में लेती हुई बोलीं–'जो व्यक्ति मुझे **'माँ'** कहकर नहीं पुकारेगा, यह निश्चय कर चुका है, उसने आज यह फूल दिया है।''

"बाद में वह फूल बेबी दीदी को देती हुई मां बोली–'यह मेरा आदर का फूल है। इसे जतन से रख दो।' इतना कहने के बाद एक कहानी कहने लगीं। उससे यह पता चला कि मां ने किसी को एक गुलदस्ता दिया था। उसने उसे ताले में बन्द कर रखा था। वह गुलदस्ता न जाने कैसे अदृश्य हो गया। यह सब बेकार की बातें हैं। बहरहाल बेबी दीदी को फूल दे देने के कारण मैं नाराज हो उठा। सोचा–'अगर तुम मेरी मां बनोगी तो तुम्हें कुछ भी क्यों न दूँ, उसे बड़े स्नेह से रख दोगी। इस वक्त तो देख रहा हूँ कि दूसरे को दिया। इसी क्रोध के कारण मैंने बेबी दीदी से कहा–'आप घर जाकर इस फूल को पाखाने में फेंक दीजियेगा।'

'मेरी बात सुनकर मां कुछ देर तक मेरे मुँह की ओर देखती रहीं। बाद में बेबी दीदी से बोलीं–फूल मुझे दो। मैं खा जाऊँ।'

बेबी दीदी ने फूल से एक पंखुड़ी निकालकर माँ के मुँह में डाल दी। तब मां ने सभी को एक–एक पंखुडी देने को कहा। अन्त में बेबी दीदी को घुण्डी चबाकर खानी पड़ी। यह देखकर मैंने सोचा कि जब मेरे दिये हुए फूल को इतने आदर के साथ खा गयीं तब यह जरूर मेरी मां हैं।

"आज सवेरे माँ के पास गया था। जूता पहने शिवजी वाले कमरे में मां को प्रणाम कर आया हूँ। तीसरे पहर मां को दो रुपये देने गया था। जब माँ के हाथ में रुपया देने गया तो माँ ने नहीं लिया। अखण्डानन्द स्वामी ने कहा कि माँ रुपया–पैसा स्पर्श नहीं करती। तब उन दोनों रुपयों को माँ के पैरों के पास फेंककर चला आया। उन दोनों रुपयों में एक रुपया गूंगा था। शास्त्र में है कि एक वृक्ष पर दो पंक्षी रहते थे। इनमें एक फल खाता और एक केवल टुकुर–टुकुर देखा करता था। मेरे दोनों रुपये भी इसी प्रकार के हैं। जो बेकार का है; वह वही है जो पक्षी फल खाता है और गूँगा वह है जो फल नहीं खाता, सिर्फ देखता रहता है।"

आज माँ के साथ बातचीत नहीं हो सकेगी, समझकर दूर से प्रणाम करने के बाद चला आया।

१८ दिसम्बर, सन् १९३५ ई., बुधवार को सवेरे आश्रम में जाकर देखा–ढाका के हेल्थ अफसर श्रीयुक्त प्रतापचन्द्र सेन और उनकी पत्नी आयी हैं। श्रीयुक्त प्रमथ बाबू तथा मोती बाबू भी मौजूद थे। कुछ देर बाद मां टहलने निकल गयी। हमलोग भी पीछे–पीछे चल पड़े। प्रमथ बाबू माँ को लेकर आगे–आगे चल रहे थे। मैंने सोचा कि शायद कोई गोपनीय बात कर रहे होंगे। तभी प्रमथ बाबू ने इशारे से मुझे साथ जाने को कहा।

प्रमथ बाबू कह रहे थे–"माँ, मोती को मैं तुम्हारे पास ले आया हूँ। अगर उसका कोई अमंगल हुआ तो तुम्हारी बदनामी होगी। मैं अपने बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। तुम मोती को देखना।"

प्रमथ बाबू की बातें सुनकर मुझे ज्योतिष बाबू की बातें याद आ गयीं। एक दिन रात के समय बारीक माँ की हालत देखकर ज्योतिष बाबू भी इसी प्रकार डर गये थे। एक तो हृषीकेश में इस बात का प्रचार हो गया था कि माँ जादू जानती है। अब अगर माँ के पास रहते हुए बारीक माई मर जाती हैं तो बड़ी बदनामी होगी। इस चिन्ता के कारण ज्योतिष बाबू उस रात को बुरी तरह डर गये थे।

प्रमथ बाबू की बातें सुनकर माँ मेरी ओर देखने लगीं। माँ की दृष्टि से मुझे ऐसा लगा कि मैं क्या चिन्ता कर रहा हूँ, शायद वह समझ गयी हैं। हम हँस पड़े। मन–ही–मन प्रमथ बाबू की प्रशंसा करने लगा। दूसरों के दुःख में जिनका प्राण गल जाय, उससे बढ़कर महान् व्यक्ति कोई नहीं हो सकता।

ठीक इसी समय मोती बाबू ने आकर पूछा–"माँ, क्या मैं अब जा सकता हूँ?"

माँ–तुम्हारी इच्छा।

मोती बाबू–मेरी इच्छा नहीं है, पर एक व्यक्ति (अर्थात् प्रताप बाबू[1]) मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह न तो यहाँ आयेगा और बिना मुझे साथ लिए वह जायेगा भी नहीं।

मैं–माँ, मैं प्रताप बाबू को तुम्हारे पास बुला लाऊँ?

माँ–तुम लोगों के निकट मैं माँ हूँ। वह तो मुझे माँ नहीं कहेगा।

बहरहाल प्रताप बाबू को माँ के पास ले आया।

माँ–(प्रताप बाबू से) पिताजी, तुम तो मुझे माँ कहोगे नहीं, पर मैं तुम्हारी बेटी हूँ। बेटी का एक अनुरोध तुम्हें मानना पड़ेगा।

इतना कहने के बाद माँ हँसने लगीं। धीरे–धीरे प्रताप बाबू की ओर बढ़कर उन्होंने प्रताप बाबू को स्पर्श किया। इस तरह माँ को स्पर्श करते देख मैंने प्रताप बाबू को भाग्यवान समझा। कारण माँ स्वेच्छा से किसी को स्पर्श नहीं करतीं।

माँ–(हँसकर) बोलो पिताजी, इस बेटी का एक अनुरोध मानोगे। जिस प्रकार तुम घर–गृहस्थी के कार्यो में मन लगाते हो, उसी प्रकार उनके कार्य में मन लगाया करो। तुम लोग अपनी ड्यूटि[2] नहीं करते? उसी प्रकार उन्हें बुलाना भी एक ड्यूटि है, मान लेना। बोलो पिताजी, यह करोगे? इस पगली बेटी का यह अनुरोध स्वीकार करोगे?

प्रताप बाबू–चेष्टा करूँगा।

माँ–चेष्टा नहीं, बोलो, जरूर करूँगा। देखो, तुम लोग जो कुछ कह रहे हो, वह अभाव का कार्य है। खाना, पीना, टहलना, अर्थ–उपार्जन ये सब अभाव के कार्य हैं। इससे अभाव बढ़ता जाता है। उन्हें पुकारने पर अभाव नहीं रहता। तब स्वभाव में प्रतिष्ठित हुआ जा सकता है। तुम जो कुछ कर रहे हो, वह उन्हीं का कार्य है, कारण

---

१. प्रताप बाबू मोती बाबू के बहनोई हैं ।

२. श्री श्री माँ आजकल दो–एक शब्द अंग्रेजी कह लेती हैं । पश्चिम में रहने के कारण हिन्दी भी बोलती हैं ।

जगत् में केवल वे ही हैं। पत्नी के रूप में भी वही, कर्तव्य के रूप में भी वही। लेकिन इधर लक्ष्य रखना चाहिए। इसीलिए कहती हूँ कि जिस प्रकार जीवन के सभी कर्म नियमानुसार कर रहे हो, उसी प्रकार नियम से कुछ देर उन्हे बुलाओ। क्यों, कर सकोगे पिताजी?

प्रताप बाबू–अच्छा बुलाऊँगा।

माँ–(मोती बाबू से) पिताजी, तुमसे भी कह रही हूँ कि तुम इन लोगों (अर्थात् प्रताप बाबू आदि) की बातें सुनना। कभी अबाध्य मत होना। अपने को शान्त, स्थिर रखने का प्रयत्न करना। तुम हर समय अपने को स्थिर नहीं रख पाते। स्थिर भाव से बिना किये, कोई कार्य सफल नहीं होता।

मोती बाबू–मैं तो इन लोगों की बात मानता हूँ। तुम मुझे स्थिर क्यों नहीं कर देती?

माँ–अपने को स्वयं स्थिर करने की चेष्टा करो। शान्त भाव बगैर आये शान्ति नहीं मिलती।

इतना कहने के बाद माँ आगे बढ़ गयीं। हम लोग पीछे-पीछे चल पड़े। प्रताप बाबू और उनकी पत्नी घर चले गये।

आश्रम में लौटने पर दीदीमा से भेंट हुई। कल दीदीमां रक्षाकाली की पूजा कर चुकी हैं। यह पूजा आम तौर पर श्मशान में होती है। लेकिन माँ की इच्छा के कारण आश्रम में हुई है और बाबा भोलानाथ ने पूजा की है।

मैं–(दीदीमाँ) दीदीमां, मेरी प्रसादी है न?

दीदीमाँ–प्रसादी तो है। क्या उसे तुम खाओगे?

मैं–ऐसा क्यो? प्रसाद क्यों नहीं खाऊँगा?

दीदी मां–एक तो खिचड़ी की प्रसादी, दूसरे ठंढी। इसीलिए कह रही थी कि तुम खाओगे या नहीं।

मैं शिव शंकर बाबू को लेकर भोगवाले कमरे में जाकर प्रसाद खाने बैठ गया। दीदी मां ढेर खिचड़ी परोस दीं। मैंने खाना प्रारम्भ किया। ठीक इसी समय न जाने कहाँ मां आ गयीं।

बोलीं–पिताजी, मुझे जरा दोगे?

मां की आवाज सुनते ही चौंककर पीछे की ओर देखा। तबतक मां अखण्डानन्द स्वामी के कमरे में चली गयीं। शिव बाबू ने मां को आते देखा था, इसीलिए वे विस्मित नहीं हुए, लेकिन मैं मां की आवाज सुनकर चौंक उठा था।

इसके बाद मां के भोग का प्रबंध होने लगा। काफी लोग मीठा, संतरा आदि लेकर मां को भोग चढ़ाने लगे। एक–एक व्यक्ति भोग चढ़ाते गये और हम प्रसाद ग्रहण करते रहे। सवेरे का भोजन इसी प्रकार हो गया।

लगभग ८ बजे मां नामघर में आयीं। एक बालिका ने मां को गीत सुनाया। मधुर गीत था। इस गीत को सुनकर नगेन बाबू रो पड़े। देर होते देख मैं मां को प्रणाम कर चला आया।

तीसरे पहर जाकर देखा कि चारों ओर अपार भीड़ है। आज खिचड़ी और मिठाई का भोग मां को दिया गया है। शायद इसी उपलक्ष्य में इतनी भीड़ है। प्रमथ बाबू और मोती बाबू भी दिखाई दिये। सुना कि मां मैदान में पेड़ के नीचे सोती रहीं। एक वृद्धा मां को भोग चढ़ाने के लिए अस्थिर हो उठीं। वे सभी से अनुरोध कर रही थीं कि कोई मां को बुला दे तो वे भोग चढ़ाकर चली जातीं। उनके लिए घर जाना आवश्यक है। मां को जगाने के लिए मोती बाबू ने भ्रमर से अनुरोध किया था, पर जब वह राजी नहीं हुई तब स्वयं उन्होने मां को जगाया। सुना कि मां बिना कुछ बोले जल्दी से आश्रम में चली आयी थीं।

खुकुनी दीदी भ्रमर से बातचीत कर रही थीं। वे और ज्योतिष बाबू आज चटगाँव से आये है। खुकुनी दीदी के मुहँ से तारापीठ के बारे में बातें सुनने लगा। सुना कि इस बार एक दिन तारापीठ में मां की हालत गम्भीर हो गयी थी। वे कभी रोती और कभी हँसती रहीं। मां का यह भाव देखकर सभी के होश फाख्ता हो गये थे, क्योंकि मां में यह भाव बहुत दिनों से देखा नहीं गया था। मां ने शायद यह कहा था कि शरीर न जाने कैसा-कैसा कर रहा है। बाद में तारा मन्दिर जाकर काफी देर तक सोती रहीं।

अन्त में जागकर जब उठीं तब खुकुनी दीदी से बोलीं-"तुम लोग अगर मुझे शरीर में रखना चाहती हो तो जो कुछ कहूँगी, वह करना पड़ेगा।"

मां की इन बातों को सुनकर सभी लोग सन्न रह गये। सभी नीरव रूप में मां को देखने लगे। कुछ देर इसी प्रकार बीत गया।

एकाएक मां ने कहा-"चलो, कीर्तन सुनें।"

इस वक्त नाट मन्दिर में खूब धूमधाम के साथ कीर्तन हो रहा था। कीर्तन में कुछ देर बैठने के बाद मां पुनः खड़ी हुई और ज्योतिष बाबू के पास आकर बोलीं-"अभी चटगांव चलूँगी।"

ज्योतिष बाबू ने कहा कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है।

मां ने कहा-"अगर तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है तो खुकुनी को साथ ले लो। अभी तुरंत चलना है।"

मां ने अखण्डानन्दजी से कहा-"पिताजी, खुकुनी को ज्योतिष के साथ भेजने से तुम्हें कोई आपत्ति है?"

स्वामीजी–मां, यह तो तुम्हारा आदेश है, इसमें किस बात की आपत्ति है? अगर ज्योतिष अस्वस्थ है तो एक पुरुष के जाने से अच्छा होता।

मां–खुकुनी तो पुरुष है ही। वह ब्रह्मचारी है। पुरुष के अलावा और क्या है?

यह घटना रात की है। मां ने तुरंत पण्डा से पूछा–"आज सबेरे तुम्हें गाड़ी ठीक करके रखने को कहा था। क्या तैयार है।"

पण्डा–हाँ, मां, गाड़ी तैयार है। हुक्म होते ही मैं ले आऊँगा।

उसे गाड़ी लाने को कहा गया। दीदी ने कहा–"हम दो प्राणी चुपचाप गाड़ी पर जाकर बैठ गये। इस समय मां को ऐसा रूप दिखाई दे रहा था कि अगर समस्त विश्व आकर बाधा देना चाहता तो मां को रोका नहीं जा सकता था।"

आगे खुकुनी दीदी कहानी बताने जा रही थी कि ठीक इसी समय नगेन बाबू आकर दीदी को भीतर बुला ले गये। दीदी की कहानी अधूरी रह गयी। आज इतने दिनों बाद समझ सका कि उस दिन बाबा भोलानाथ ने क्यों मां को मन्दिर के बाहर सोने पर आपत्ति कर रहे थे। उन्हें भय हुआ था कि कहीं मां वहां देहत्याग न कर दे।

तारापीठ की हालत देखकर लोगों ने यही सोचा था। बाबा ने हम लोगों के लिए ही आपत्ति प्रकट की थी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

शाम तक मैदान में था। शाम के बाद चिन्ताहरण बाबू का कीर्तन प्रारम्भ हुआ। मां औरतों से घिरी हुई कीर्तन सुनने लगीं। हम लोग नामघर में जाकर खड़े हो गये। उस दिन का कीर्तन जम नहीं रहा था। सभी लोग मां की बात सुनने को व्यग्र थे, कीर्तन में मन कैसे लगता?

१९ दिसम्बर,१९३५ ई., गुरुवार। मां इस दिन ढाका से पुनः रवाना हो जायेंगी। सबेरे से ही भीड़ बढ़ने लगी। भोर के समय जाकर देखा कि मां अन्नपूर्णा मन्दिर के बरामदे पर बैठी हैं। मां के चारों ओर काफी लोग हैं। मैं एक किनारे जाकर बैठ गया। एक लड़का मां से प्रश्न पूछ रहा था।

जातिभेद

बालक–शास्त्रों में जाति भेद का उल्लेख है। लेकिन हम लोगों के विचार से सभी मानव बराबर हैं। मानव–मानव भेद करना ठीक नहीं है। इसलिए मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि जाति भेद न मानने पर क्या पाप होता है?

माँ–अगर शास्त्र की बात तुम नहीं मानना चाहते तो स्वयं ही शास्त्र क्यों नहीं लिख लेते।

बालक–वह क्षमता हममें नहीं है, पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि जातिभेद न मानने पर पाप होता है या नहीं?

माँ–सन्देह रहने पर पाप।

बालक–जाति भेद न मानना दोष नहीं है, इस विषय के बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं है।

माँ–(हँसकर) तुम तो ब्रह्मज्ञानी लगते हो।

स्वामी शंकरानन्द–ब्रह्मज्ञान न होने तक संदेह रहता है।

माँ–बिना सन्देह के प्रश्न क्यों करते हो? संशय के बिना जिज्ञासा नहीं होती। संशय रहने पर पाप–पुण्य का प्रश्न उठता है।

श्री श्री माँ को देह पर रखने की जिम्मेदारी हम पर

इसी समय प्रमथ बाबू ने कहा—"माँ, अब काम की बातचीत की जाय। तुम पुनः ढाका आओगी या नहीं, यह बताओ।"

माँ—तुम लोग लाओगे तो आऊँगी।

प्रमथ बाबू—यह सब हवाई बातें नहीं सुनना चाहता। तुम स्वयं निश्चय करके बताओ कि तुम आओगी या नहीं?

सुरेन बाबू[१]—आपने पिछली बार कहा था कि पुनः मैं आऊँगी। इस बार कुछ कहकर जायें।

माँ—मैंने कहा था कि मैं पुनः आऊँगी?

सुरेन बाबू—हाँ ।

मां ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया। समझते देर नहीं लगी कि सुरेन बाबू ने गलत कहा है। माँ भविष्य में क्या करेंगी या क्या नहीं करेंगी, इसका इङ्गित प्रायः नहीं देतीं।

माँ—मैं पुनः आऊँगी, यह बात मैं नहीं कहती, और नहीं आऊगी यह भी नहीं कहती। मैं हमेशा कहती हूं कि अगर यह देह (शरीर) रहेगा और तुम लोग ले आओगे तो आऊँगी।

मैं—इच्छा करने पर क्या देह में रहा नहीं जा सकता?

माँ—वह तुम लोगों की इच्छा।

---

१. श्री सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय । आप पोस्ट आफिस में काम करते हैं ।

मैं – हम लोग कैसे तुम्हें देह में रख सकते हैं ?

माँ – माता–पिता किस तरह सन्तान की रक्षा करते हैं। संतान की मंगल–कामना करते हुए उनकी रक्षा करते हैं।

यह उत्तर सुनकर मैं मन–ही–मन आश्वस्त हो गया। माँ के शरीर–रक्षा का डर दूर हो गया। मैंने सोचा कि हम लोग जितने दिन चाहेंगे, उतने दिन हम लोगों के कल्याण के लिए शरीर में रहेंगी। उनका शरीर में रहना–न–रहना उनके सन्तानों की आकांक्षा पर निर्भर करता है।

भीड़ बढ़ती जा रही है देखकर प्रमथ बाबू ने माँ से नामघर में जाने का अनुरोध किया। माँ राजी हो गयीं। हम सब नामघर में जाकर बैठे।

शास्त्रज्ञान और आत्मज्ञान

सभी लोग यथास्थान बैठ गये। श्रीयुक्त अखिलचन्द्र चक्रवर्ती महाशय ने माँ से प्रश्न किया – माँ, निर्दोषानन्द ने जिन्होंने इस आश्रम में कुछ दिनों तक कठोपनिषद् पाठ किया था, हम लोगों को उपदेश दिया था कि हम लोग हमेशा इस बात का चिन्तन करते रहे – 'मैं ही वह परमात्मा हूँ' लेकिन यह भाव हममें नहीं आता। इसके अलावा हम लोग उस विराट् पुरुष के बारे में कोई कल्पना नहीं कर पाते। कुछ भी ध्यान करते समय हमेशा तुम्हारी मूर्ति सामने आती है। कल रात को मुझे नींद नहीं आयी, केवल तुम्हारे उपदेशों की चिन्ता करता रहा। तुम्हारी मूर्ति आंखों के सामने तैरती रही। ऐसी हालत में मैं ही वह परमात्मा हूँ, ऐसा ध्यान कैसे कर सकता हूँ?

माँ–परमात्मा अनुभूति का विषय है। शास्त्रों के अध्ययन या बातें सुनकर उनके बारे में कोई धारणा नहीं बनाना चाहिए। शास्त्र केवल मार्ग बताते हैं। शास्त्र को मैं स्व–अस्त्र कहती हूँ। शास्त्रों में विभिन्न मत हैं। उनमें प्रत्येक सत्य है। ऋषियों ने अपनी साधना के जरिये जो कुछ अनुभव किया है, उसे शास्त्रोंमें लिखा है। जिसने जिस अवस्था की प्राप्ति की है, उसका वर्णन शास्त्र में लिख गये हैं। उसके पाठ या सुनने से बात समझ में नहीं आती। लेकिन जब उस अवस्था तक पहुँचा जाता है तभी शास्त्रों की बातें ठीक–ठीक समझ में आती हैं। इस दृष्टि से सभी शास्त्र सत्य हैं।

''पूर्वकाल में हमारे यहाँ चार आश्रम थे। ब्रह्मचर्य आश्रम में शास्त्रों के अध्ययन से लोग जीवन के कर्तव्याकर्तव्य समझ लेते थे। उसी ज्ञान के आधार पर गृहस्थाश्रम को अपनाते थे और गृहस्थी में रहते हुए अपने ज्ञान को कार्य रूप में परिणत करते थे। गृहस्थाश्रम के कार्यो को समाप्त करने के बाद वानप्रस्थ अवलम्बन कर शास्त्रों से जो ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, उसे अनुभव का विषय बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसी से संन्यास–धर्म की प्राप्ति होती है। लेकिन इन दिनों ब्रह्मचर्य आश्रम का अभाव होने के कारण सब कुछ उलट–पुलट गया है। हमारा अभाव नहीं जा रहा हैं।''

''मैं पहले भी कह चुकी हूँ कि तुम लोग अभाव के स्वभाव में हो। तुम लोग जो कुछ लेकर हो, वह सब तो अस्थायी है। नौकरी से जो कुछ अर्थ प्राप्त करते हो, गृहस्थी में व्यय कर रहे हो। कुछ भी बचता नहीं। कल इस शरीर का फोटो खींचा गया। मैंने कहा–

'इस शरीर का फोटो क्या होगा? यह भी तो परिवर्तनशील है। आज जो कुछ है, दो दिन बाद उसमें परिवर्तन हो जायगा।' जो नहीं रहता, उसी को लेकर रहने का अर्थ है अभाव का स्वभाव। जो चिरस्थायी है, उसे पाने की चेष्टा करना चाहिए। उसे पाने के लिऐ एक लक्ष्य होना आवश्यक है। एक लक्ष्य होने के लिए मैं ही सब' अथवा 'सब तुम' इनमें एक भाव लेकर रहना चाहिए। बाद में देखा जाता है कि केवल एक ही वस्तु जगत् में है और कुछ नहीं है। जगत् की समस्त वस्तु में वे पूर्ण रूप में वर्तमान हैं।

''इसीलिए मैं कहती हूँ कि जीव भाव है–बद्धभाव। जैसे मैदान में घेरा डालकर घेरा बना लेते हो, लेकिन यह घेरा भी मैदान के भीतर ही है। मैं पुनः यह भी कहती हूँ कि जीव के भीतर अज्ञान का परदा रहने पर भी उसके दरवाजे खुले रहते हैं। जैसे हम लोग घर के भीतर बैठे हैं। खिड़की–दरवाजों से सूर्य का प्रकाश आ रहा है। हम लोग धूप देख रहे हैं, पर वह हमारे शरीर पर लग नहीं रही है। इच्छा होने पर दरवाजे से बाहर जाकर धूप में खड़े हो सकते हैं। जीव को बद्ध भाव से मुक्त होने के लिए अनेक दरवाजे हैं। गुरु कहो, मूर्ति कहो, ये सब दरवाजे हैं। इनके माध्यम से बद्ध भाव से मुक्त हुआ जा सकता है। चाहिए केवल एक लक्ष्य का होना। सभी परमात्मा के विकास हैं। इसीलिए गुरु को भगवान् समझना चाहिए। गुरु को मानव समझने या गुरु भगवान् हैं, यह बुद्धि न होने पर कुछ नहीं होगा। इसी प्रकार देवमूर्ति को शिला समझने पर कुछ नहीं होगा। इसीलिए मैं कहा करती हूँ कि जीव कभी भगवान् नहीं बन सकता। जीव तो जीव ही रहेगा। जब उसे हम भगवान् समझते हैं तब तो

वह भगवान् हैं। इसी प्रकार जब गुरु को भगवान् समझते हैं तब वे भगवान् हैं। फिर जब उन्हें मनुष्य समझते हैं तब वे मानव हैं। जिसके प्रति एक लक्ष्य होगा, उसी में भगवत् बुद्धि रहनी चाहिए।''

आजकल माताएँ लक्ष्मी पूजन करती हैं। उद्देश्य–काफी धन–दौलत हो। तुम लोग जैसे सरस्वती पूजा करते हो ताकि विद्या आवे और अर्थ उपार्जन कर सुख से गृहस्थी बसा सको। लेकिन मेरा कहना है कि इस तरह की पूजा से कोई लाभ नहीं, क्योंकि यह सब विद्या और धन चिरस्थायी नहीं होते। यह पूजा अभाव की पूजा है। पूजा अगर करनी है तो लक्ष्मी की न करके महालक्ष्मी की करनी चाहिए। इससे जो धन प्राप्त होता है, उसका क्षय नहीं होता। इसी प्रकार सरस्वती की पूजा न करके महासरस्वती की पूजा करनी चाहिए जिससे हमें ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो सके। इससे हम अभाव के राज्य से स्वभाव के राज्य में पहुँच जायेंगे। स्वभाव के राज्य में पहुँचने के लिए अपने यंत्र बनाना पड़ता है। तब समझ में आता है कि केवल एक मात्र वे ही हैं और वे ही सब कर रहे हैं।

''इसीलिए मैं बराबर कहती हूँ कि सभी लोग सर्वदा नाम करते रहे। जो दिन चला जाता है, वह नहीं आयेगा। कुछ नहीं हुआ कहकर निराश मत होओ। कारण कुछ हुआ नहीं, यह भाव प्रमाणित करता है कि कुछ हुआ है। चाहिए सिर्फ अभाव बोध। मुझसे नाम नहीं हो रहा है। मैं ठीक से नाम नहीं कर पा रहा हूँ। क्या करने से ठीक से नाम कर पा सकता हूँ? इस प्रकार के अभाव बोध होते ही सिद्धि पास आजाती हैं। लेकिन हममें अभाव बोध नहीं

है। हमें भूख नहीं लगती। जब तुम लोगों को भूख नहीं लगती तब दवा खाकर भूख बढ़ाते हो, भगवान् का नाम भी उसी प्रकार का है। नाम करते ही अभाव बोध होता है और उन्हें पाने के लिए लोग अस्थिर हो जाते हैं।"

ठीक इसी समय माँ को देखने के लिए दो-तीन वेश्याएँ आई। वे सब आकर अन्य महिलाओं के आगे-पीछे बैठ गयीं।

यह देखकर प्रमथ बाबू ने कहा-"मैं इन लोगों को महिलाओं के साथ बैठने नहीं दूँगा।"

इतना कहकर उन लोगों को प्रमथ बाबू ने हटा दिया। उनकी जगह पर अन्य महिलाएँ आकर बैठ गयीं। तभी दीदीमाँ आकर बखेड़ा करने लगीं। माँ की बातचीत बन्द हो गयी।

माँ प्रमथ बाबू की ओर देखती हुई हँसकर बोलीं-"क्यों पिताजी, अब ठीक हुआ?"

माँ मी बातों का अर्थ शायद यह था कि वेश्याओं को वेश्या कहकर घृणा करने से अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। माँ की बात सुन कर हम लोग हँस पड़े।

दो वेश्याएँ दूसरी ओर से माँ के पास जाकर खड़ी हो गयीं और अपनी बीमारी के बारे में कहने लगीं।

माँ ने उन लोगों से कहा-"इस शरीर से यह सब बातें नहीं निकलती। यह शरीर बड़ा अबाध्य है। माता जी, मेरा कहना है कि तुम लोग नाम करती रहो।"

ठीक इसी समय स्वामी शंकरानन्द जी आये और कहा—"माँ को पाँच मिनट के लिए ले जा रहा हूँ। एक महिला अपनी गोपनीय बातें कहना चाहती हैं। आप लोग पाँच मिनट प्रतीक्षा कीजिये।"

माँ ने कहा—"पाँच मिनट में होगा?"

माँ की बातों से अन्दाजा लग गया कि अब मां की बातें समाप्त हो गयीं। और वास्तव में फिर माँ से आगे कोई बात नहीं हो सकी इसके बाद माँ जब तक रहीं तब तक महिलाओं से घिरी रहीं। बीच-बीच में मां के फोटो खींचे जा रहे थे। हम लोग आश्रम के बाहर चहलकदमी करते रहे।

माँ का ढाका से बिदा होना

विदा का समय पास आ गया। मां घर से बाहर आकर आश्रम के आंगन में आकर खड़ी हो गयीं। सभी लोग उनके चरण स्पर्श कर प्रणाम करने लगे। भीड़ देखकर मैंने दूर से ही प्रणाम किया। प्रणाम करके ज्यों खड़ा हुआ त्योंही देखा कि मां मेरी ओर देखती हुई मन्द-मन्द मुस्करा रहीं हैं। उस समय भी श्री-चरणों में अगणित लोग प्रणाम कर रहे थे। मां की हँसी देखकर समझ गया कि मां ने मेरा प्रणाम स्वीकार कर लिया है। मां के निकट दूर या निकट का प्रश्न नहीं है। यह बात देहरादून में बता चुकी हैं। आज उसी को इन्होंने प्रत्यक्ष कर दिखाया।

मां मोटर में जाकर बैठ गयीं। आश्रम के बाहर आते ही खुकुनी दीदी से मुलाकात हुई। उन्होंने प्रणाम करने के बाद कहा—"दीदी कल की कहानी अधूरी रह गयी।"

दीदी ने कहा–"आपको शायद नहीं मालूम कि कल शाम को मां अचानक कह बैठीं–'तुम कहानी सुना रही थी। जाओ, उसे पूरी कर आओ।' मैं जब बाहर आयी तब आप दिखाई नहीं दिये।" इतना कहने के बाद दीदी हँसने लगीं।

इस हँसी का यह अर्थ है कि मां से कुछ भी छिपा नहीं रहता। क्योंकि दीदी जब मैदान में हमारे पास बैठी थीं तब उस समय मां आश्रम के शोरगुल के बीच थीं। दीदी को न तो उन्होंने देखा था और वे कहानी सुना रही हैं, यह भी नहीं जानती थीं। जबकि उनके निकट अज्ञात कुछ भी नहीं था। कहानी अधूरी रह गयी थी, इसे भी समझ गयी थीं। मां केवल अन्तर्यामी ही नहीं, वे तो "सर्वतोऽक्षि" भी हैं। उनके निकट कुछ भी छिपा नहीं है।

हम लोग मां को विदा देकर भग्न हृदय से घर लौट आये। इधर कुछ दिनों तक उत्तेजना में था। आज केवल अवसाद ही अवसाद रह गया।

द्वितीय खण्ड

श्री श्री माँ आनन्दमयी

प्रथम अध्याय

नवद्वीप में सात दिन

सन् १९३६ ई. । दिसम्बर का महीना । आगे बड़े दिनों की छुट्टी होनेवाली है । इस बार छुट्टियों में कहाँ जाऊँगा, यह निश्चय नहीं किया था । बन्द होने के पहले ही सुना था कि श्री श्री माँ नवद्वीप आयी हैं, पर उनसे मुलाकात करने की प्रबल आकांक्षा नहीं उत्पन्न हुई थी । जाड़े के मौसम में बाल-बच्चों के साथ कहीं यात्रा करना बड़ा कष्टदायक होता है । इसके अलावा मेरी छुट्टी के पूरे दिनों तक माँ नवद्वीप में रहेंगी, इस सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं था ।

बाद में सुना कि मेरे मित्र श्रीयुक्त यतीन्द्र मोहन दासगुप्त सपत्नीक नवद्वीप रवाना हो गये हैं । श्री श्री माँ की अनुमति बिना लिए अचानक वहाँ तक जाना उचित होगा या नहीं, इस सम्बन्ध में ऊहापोह करने लगा । बहरहाल, २४ दिसम्बर, सन् १९३५ ई. गुरुवार को सवेरे श्रीयुक्त भूपति नाथ मित्र एक पत्र लिए मेरे यहाँ आये । पत्र नवद्वीप से यतीन्द्र बाबू ने भेजा है । उस पत्र में अन्य समाचारों के अलावा यह भी लिखा था कि श्री श्री माँ शायद जनवरी महीने के प्रथम सप्ताह तक नवद्वीप में ठहरेंगी। यह समाचार सुनकर मन व्याकुल हो उठा । सोचा एक बार अगर नवद्वीप चला जाय तो कैसा रहे । नयी जगह और माँ का दर्शन दोनों ही हो जायगा। मुझे लगा जैसे इस पत्र के माध्यम से माँ ने मानो मुझे बुलाया है पत्र में ऐसा कोई आभास नहीं था। लेकिन लग ऐसा ही रहा था जबकि माँ की सारी गतिविधि

अनिश्चित है । यतीन बाबू जब यह लिख रहे हैं कि १०–१५ दिन माँ नवद्वीप में रहेंगी तब मेरे जाने की बात को समझ लिया जा सकता है । भूपति बाबू को विदा करने के बाद मैंने अपनी पत्नी से परामर्श किया । अन्त में तय हुआ कि कल ही नवद्वीप रवाना हुआ जाय।

२५ दिसम्बर, शुक्रवार को कलकत्ता मेल से रवाना हुआ । रात ३ बजे रानाघाट स्टेशन पर दो घण्टे प्रतीक्षा करने के बाद नवद्वीप वाली गाडी मिली । कृष्णनगर में गाड़ी बदलकर दूसरे दिन ८.३० बजे नवद्वीप घाट स्टेशन आया । नाव से इस पार आकर हेतमपुर के महाराजा की धर्मशाला की ओर चल पड़े । दूर से ही धर्मशाले के पास परिचित चेहरों की भीड़ देखकर मन प्रसन्न हो उठा । दूर से ही देखा कि श्री श्री माँ अपने कमरे से बाहर आकर बरामदे में मुँह धो रही हैं । यतीश बाबू की लड़की 'बुनी' मुँह धुला रही है।

धर्मशाला में आने पर श्रीयुक्त यतीन बाबू और श्रीयुक्त राधिका बाबू[1] के साथ मुलाकात हुई । राधिका बाबू ने कहा–"आपको आते देख माँ कमरे से बाहर निकली और बोली – 'अमूल्य की तरह देखने में आ रहा है ।' पर मैं आपको पहचान नहीं सका था ।"

श्री श्री माँ जबतक मुँह धो रही थीं तब तक मैं सीढ़ी पर खड़ा रहा। जब उठकर खड़ी हुई तब मैंने प्रणाम किया ।

माँ ने कहा – "मैं पहले ही सोच रही थी कि पिताजी का (अर्थात् मेरा) बन्द (अवकाश) बेकार जायगा क्या ?"

मैं मन ही मन कह उठा – "माँ, तुमने मन में सोचा तभी तो आज यहाँ आ सका हूँ ।"

माँ ने आगे कहा – "सुना कि कल दोपहर को १२ बजे ढाका से रवाना हुए हो । सोच लो कि अभी तक रास्ते में ही हो, क्योंकि अभी तुरंत हम लोग नाव में घूमने चलेंगे ।"

---

१. श्रीयुक्त राधिकानाथ तरफदार, एम. ए., बी. एल. । आप ढाका में वकालत करते हैं । माँ के भक्त हैं ।

मैंने सोचा–'तथास्तु ।'

माँ कमरे के भीतर चली गयीं । यतीन बाबू और राधिका बाबू से दो–चार बातें करने के बाद अपना सामान एक कमरे में रखने का प्रबन्ध करने लगा । धर्मशाला स्थित कुएँ पर हाथ–पैर धोने के बाद थोड़ा जलपान किया और तब माँ के पास जाकर बैठ गया । अभी माँ के साथ बातचीत कर ही रहा था कि श्रीयुक्त त्रिगुणा बाबू[1] यतीश बाबू आदि आये । माँ ने इन लोगों से नाव ठीक करने को कहा ।

त्रिगुणा बाबू ने कहा – "माँ, आप चलने को तैयार हो जाँय तो नाव तुरंत ही ठीक हो जायगी ।"

माँ ने कहा – "तुम लोग आगे बढ़ो । मैं आ रही हूँ ।" इतना कहकर माँ हँस पड़ी ।

त्रिगुणा बाबू, प्राणकुमार बाबू किराये की नाव ठीक करने के लिए बाहर चले गये । मैं माँ के पास बैठा रहा । माँ ने मुझसे कहा– "देखो, तुम लोग, जो ढाका से आये हो, वे सब एक नाव पर जाँय। यतीश के घर के सभी लोग एक नाव पर जायेंगे । इस प्रकार जाने पर लोग अपने–अपने बाल–बच्चों का ख्याल रखेंगे, वर्ना बच्चों को परेशानी होगी ।"

माँ ने पुनः मुझसे पूछा– "तुम नहा चुके हो ?"

मैं–हाँ, माँ ।

माँ–स्नान कितनी देर के लिए ? यह स्नान करने पर पुनः स्नान करना पड़ता है । एक बार स्नान करने से स्नान का अन्त नहीं होता। इतना कहकर माँ हँसने लगीं ।

---

१. डा. श्री त्रिगुणानाथ वंद्योपाध्याय, एम. ए. । आप श्रीरामपुर कालेज के प्रोफेसर है ।

मैं माँ की बातों का गूढ़ अर्थ समझने का प्रयत्न करने लगा। सोचने लगा—क्या माँ ने हम लोगों के अशुद्ध चित्त को लक्ष्य करके ऐसा कहा ? वास्तव में बात तो सही है । माँ के पास बैठा हूँ। इस वक्त मन में कोई पंकिलता नहीं आ रही है । कुछ देर बाद जब माँ के पास से चला जाऊँगा तब नाना प्रकार की चिन्ताएँ सताने लगेंगी। वैषयिक भाव चित्त को कलुषित करने लगेंगे । माँ का एक बार दर्शन कर हमेशा के लिए शुद्ध–बुद्ध नहीं हो पा रहा हूँ । शायद इसीलिए हम लोगों को बार–बार "स्नान" की आवश्यकता होती है । बार–बार प्रयत्न करके शुद्ध होना पड़ता है ।

प्रणाम का रहस्य

ठीक इसी समय शिशिर आदि काफी लोग कमरे में आ गये। शिशिर न जाने किस विषय को लेकर माँ से बहस करने लगा । जब माँ से जीत नहीं सका तब गर्दन झुकाकर सिर खुजलाने लगा । यह देखकर माँ ने कहा–"देखो, सब कितना सुन्दर है । अपनी गलती समझ जाने पर सिर अपने आप झुक जाता है । जब लोग दिशाहीन हो जाते हैं तब सिर खुजलाते है । अगर उस समय गौर करें तो देखेंगे कि उनका सिर एक ओर झुका हुआ है । यही है– प्रणाम का रहस्य । प्रणाम करते समय लोग सिर क्यों झुकाते हैं ? वह तब अपनी क्षुद्रता समझ लेता है । जिसके आगे वह अपना सिर झुका रहा है, उसकी तुलना में वह कितना तुच्छ है, यह वह समझ लेता है । जब तक अहम बुद्धि रहती है तब तक गर्दन सीधा करके रखते हैं । सिर ऊँचा रखना गर्व का भाव, अहंकार का भाव प्रदर्शित करता है । नीचा सिर दीनता को प्रकट करता है ।"

माँ इन बातों को बड़े भाव से बता रही थीं जिसके कारण हम हँस पड़े।

कुछ देर बाद हम लोग नाव पर आये । पता नहीं, किस बात पर नाराज होकर शिशिर धर्मशाला वापस चला गया । उसे बुलाने के लिए दो बार आदमी भेजा गया, पर वह वापस नहीं आया । इसी समय राधिका बाबू हम लोगों का साथ देने के लिए आ गये। नाव चल पड़ी । हम लोग बहाव के उल्टी ओर चल रहे थे । नाव पर ही खाने-पीने का प्रबन्ध हो रहा था । कचौड़ी, पुरी, खीर आदि। त्रिगुणा बाबू कीर्तन गाने लगे । उनका साथ यतीश बाबू आदि देने लगे । ४-५ नावें एक साथ बँधी चल रही थीं । श्री श्री माँ एक नाव से दूसरे नाव पर जा-जाकर सभी को संतुष्ट कर रही थीं । इस प्रकार २.३० बजे तक उफान की ओर चलते रहें । बाद में गंगा किनारे नावों को बांध दिया गया । हम लोग किनारे उतर पड़े । कुछ लोग गंगा में स्नान करने लगे । माँ को रेती पर भोग दिया गया । हम लोग भी रेती पर प्रसाद खाने लगे।

सेवा करना बड़ा कठिन कार्य है

भोजन के पश्चात् हम लोग माँ को घेर कर बैठ गये । तरह-तरह की बातें होने लगीं । उत्तरकाशी जाते समय धरासू नामक एक जगह है। माँ ने कहा-"वहाँ मैंने देखा कि गंगा के स्रोत में बड़े-बड़े पत्थर पड़े थे। पत्थरों का ऊपरी भाग समतल और प्रशस्त था। गंगा का पानी उसके ऊपर से कलकल कर बह रहा है । यह देखकर मैं पानी में उतरकर इस पत्थर से उस पत्थर पर उछलकर जाने लगी। आगे एक बड़ा पत्थर देखकर बोली कि इस स्थान पर आटा सान कर रोटी बनाया जाय तो अच्छा रहेगा । क्योंकि यह पत्थर समतल है और हाथ बढ़ाते ही गंगा का पानी मिल जायगा । यह बात सुनकर ज्योतिष वहाँ आटा सानने लगा । पत्थर देखनें में भले साफ-सुथरा हो, पर यात्री गण हमेशा वहाँ मल-मूत्र करते हैं । बहरबाल ज्योतिष उस पत्थर को गंगा जल से खूब अच्छी तरह धोकर आटा सानने

लगा । बाद में उसी पत्थर पर आग सुलगा कर रोटी बनाने लगा। वहाँ लकड़ी की कमी नहीं थी, क्योंकि गंगा के स्रोत में अनेक लकड़ियाँ बहकर आ रही थीं । बस, उन्हें पकड़ना पड़ता है । आग के ताप से जब पत्थर गरम हो गया तब मैंने देखा कि पत्थर के छोटे-छोटे छेद में विष्ठा है । अब तक भीगा था, इसलिए दिखाई नहीं दे रहा था । अब गरम हो जाने के कारण उसके प्रत्येक शिरा में विष्ठा दिखाई देने लगा है । मैं बैठी हुई यह देख रही थी, पर ज्योतिष ने इस ओर गौर नहीं किया। उसने उस विष्ठा वाली रोटी मुझे खिलायी । मैंने अम्लान भाव से खायी ।''

इतना कहकर माँ खूब हँसने लगीं । हम लोग भी साथ देने लगे। सेवा करते समय कितनी सतर्कता बरतनी चाहिए, माँ ने इस कहानी के जरिये समझाया । साथ ही यह भी समझ में आ गया कि भावग्राही जनार्दन ।

दल भ्रष्ट होने पर पहले की तरह मेल नहीं होता

यह पहले कहा जा चुका है कि शिशिर नाराज होकर धर्मशाला वापस चला गया था । हम लोगों ने सोचा था कि वह अब नहीं आयेगा । लेकिन भोजन के थोड़ी देर बाद देखा गया कि वह नाव से आ रहा है । सभी उसका मजाक उड़ाने लगे । शायद वह मन-ही-मन लज्जित हो रहा था । किसी के साथ मेल न कर पाने के कारण अकेला ही नाव लेकर इधर-उधर चक्कर काटने लगा ।

उसे इस तरह करते देख माँ ने कहा-''एक बार दल भ्रष्ट हो जाने पर पुनः पहले की तरह मेल नहीं होता । मिलने पर बाधाएँ आती हैं । धर्म-मार्ग में भी यही स्थिति है । धर्म भाव लेकर कुछ दिन चलने पर पुनः गृहस्थी के मामले में पहले की तरह मन नहीं लगता ।''

सुना था कि माँ ने विमला माँ और निर्मला माँ को ले आने के लिए अवनी मोहन शर्मा को कलकत्ता भेजा है । आज ही वे लोग आने वाले हैं । इसीलिए माँ आज शाम को धर्मशाला में मौजूद रहेंगी। इधर हम लोग सोच रहे थे कि शाम तक धर्मशाला पहुँचना सम्भव नहीं होगा, कारण भोजनादि करते–करते शाम के ५ बज गये । धर्मशाला के घाट तक पहुँचने में कम से कम १/२ घण्टे लगेंगे । सभी ऐसा ही अन्दाज कर रहे थे । बाद में देखा गया कि ५ बजे रवाना होकर हम लोग शाम को घाट पर पहुँच गये । इतनी जल्दी कैसे आ गये, यह सोचकर चकित रह गये ।

संध्या के समय श्री श्री माँ का दर्शन करने के लिए एक संन्यासी आये । उनकी आयु ४० या ४२ वर्ष के लगभग थी । बड़े शान्त और विनीत लगे । माँ ने उन्हें बैठने के लिए आसन देने को कहा। इसके बाद कुछ कहने के लिए अनुरोध किया ।

पर साधु ने विनीत भाव से कहा–"माँ मैं भला क्या जानता हूँ । आप ही कुछ कहिये, हम लोग सुनें ।"

साधु के साथ माँ ने कोई बातचीत नहीं की । सुना कि संन्यासी हरिद्वार स्थित कैलास आश्रम में रहते हैं । बरामदे में कुछ देर बातचीत होने के बाद हम लोग कमरे के भीतर आकर बैठ गये ।

देवता के स्पर्श से शुचि–अशुचि का विचार

कमरे के भीतर जब सभी लोग यथास्थान बैठ गये तब श्रीयुक्त नीतीशचन्द्र गुहा ने माँ से प्रश्न पूछा–"माँ, देवता को स्पर्श करते वक्त शुचि–अशुचि का विचार कैसा ? माँ के निकट जाऊँगा, माँ को स्पर्श करूँगा । यहाँ शुचि–अशुचि विचार क्यों आता है ? मेरी माँ मुझे इन बातों पर विचारने को कहती हैं, पर मुझे इसमें कोई तथ्य नहीं मालूम पड़ता ।"

माँ–देवता को स्पर्श करते समय यह अनुभव हो कि वे माँ हैं तब यह विचार नहीं आता । लेकिन यह स्थिति कितने लोगों में होती है ? इसीलिए शास्त्र की बात मानना चाहिए । अगर तुम लोगों में वास्तविक रूप से यह अवस्था आ गयी हो यानी देवता को माँ के रूप में सचमुच सोच लेते हो तो विचार करने की आवश्यकता नहीं हैं वर्ना विचार करना ही पड़ेगा ।

निर्मला माँ का नवद्वीप आगमन

जब इस प्रकार की बातें चल रही थीं, ठीक इसी समय निर्मला माँ अपने पति "हेमभाई" के साथ धर्मशाला में आयीं । अवनी बाबू भी आये । उन्होने कहा कि विमला माँ कल तक यहाँ आ जायेंगी ।

निर्मला माँ आते ही माँ की गोद में गिर पड़ी । माँ भी उन्हें प्यार करने लगीं । श्री हेमभाई को बैठने के लिए अलग से आसन दिया गया । ये लोग दक्षिणेश्वर आद्यापीठ से आ रहे हैं । निर्मला माँ के बारे में जो बातें ज्ञात हुई, वे इस प्रकार हैं –

निर्मला माँ सामान्य घर की बहू हैं । चार सन्तानों की माँ बनीं, पर इन दिनों केवल एक ही जीवित है । इन दिनो गृहस्थी की स्थिति अच्छी है । एक दिन दोपहर को न जाने किसी उत्सव के उपलक्ष्य में आद्यापीठ गयी थीं । साथ में पति भी थे । वहाँ अन्नदा ठाकुर की भावावस्था देखकर इन्हें अपने गृहस्थ जीवन के प्रति विरक्ति हो गयी । इस दिन आप घर वापस नहीं लौट सकीं । एक अनजाने नशे में मग्न रहीं । दूसरे दिन जब घर वापस आयीं तब तक नशा सवार था । इसके बाद अक्सर भावावेश में रहने लगी । कुछ दिनों बाद एक पुत्र को इन्होनें जन्म दिया । सन्तान की सेवा और देख–रेख में सारा समय गुजरने लगा। साधन–भजन करने का मौका नहीं मिलता था । इसी से दुःखी होकर सजल नयन से गुरु के निकट प्रार्थना की– "ठाकुर, यह शिशु तुम्हारा दान है, तुम इसे ग्रहण करो । इसके पीछे मैं तुम्हारी याद नहीं कर पाती ।"

कुछ दिनों के बाद बच्चे की मौत हो गयी । बच्चें की मौत के बाद निर्मला माँ अपने को शाप-मुक्त समझने लगीं । शिशु के श्मशान पर मठ की स्थापना करने के बाद वे अपने पति के साथ गुरुदेव के आश्रम यानी आद्यापीठ चली आयीं । निर्मला माँ स्वभाव से निर्जनता पसन्द करती हैं, इसलिए अन्नदा ठाकुर ने आद्यापीठ से कुछ दूर एक कुटिया बनवाकर उसमें रहने का आदेश दिया । आप अब तक उसी कुटिया में रहती आयी हैं । आजकल आपके पति विभिन्न स्थानों में इन्हें साथ लेकर जाते हैं । गुरु महिमा का प्रचार और आद्यापीठ आश्रम की उन्नति करना शायद इनका एकमात्र उद्देश्य है ।

निर्मला माँ को देखने पर ऐसा लगा जैसे वे अत्यन्त शान्त प्रकृति की हैं । आवाज में मीठापन और सरलता है । अवनी बाबू इनके भक्त हैं ।

इन लोगों के जलपान कर लेने के बाद कीर्तन आरम्भ हुआ । वे रोने लगीं । यह देखकर माँ ने कीर्तन बन्द कर देने का आदेश दिया । रात के ११/१२ बजे हम लोग सोने गये ।

श्री श्री माँ की आँखों में चोट के निशान

२७ दिसम्बर, १९३६ ई. । आज भोर के समय माँ को प्रणाम करने गया । यतीश बाबू की लड़कियाँ कीर्तन कर रही थीं । कीर्तन करने के बाद सब अपने-अपने कार्य में लग गये । मैं भी हाथ-मुँह धोने के बाद माँ के पास आकर बैठ गया । निर्मला माँ आज सवेरे धर्मशाला में नहीं आयीं । वे धर्मशाला के पास ही एक अलग मकान में ठहरी हुई हैं ।

हम लोग माँ के पास बैठे थे, ठीक इसी समय एक वैष्णवी आयी । रंग काला और लम्बे कद की । हाथ में एकतारा । माँ ने इनका नाम 'एकतारा' रखा है

कल मैंने माँ की आँखों में चोट के काले दाग को देखकर पूछ था–"माँ, आपकी आँख में क्या हुआ है ?"

माँ ने कहा था–"नवद्वीप में आने पर सीढ़ी से फिसलकर गिर पड़ी थी । सिर में चोट लग गयीं ।" सिर के दाहिनी ओर चोट के निशान थे ।

माँ ने कहा था–"यहाँ आने के बाद एक दिन अधिक रात गये पेशाब करने के लिए बाहर निकली । साथ में 'बुनी' थी । बाहर जरूर आ गयी, पर अच्छी तरह आँखे नहीं खुली थी, क्योंकि मुझमें यह एक भाव है कि अगर एक बार अच्छी तरह आँखें खोल दूँगी तो फिर पलक बन्द नहीं कर पाती । 'बुनी' मेरे पीछे–पीछे आ रही थी । वह बच्ची है, मेरी हालत कैसे समझ सकती है ? रायपुर (देहरादून) के मन्दिर में जब थी तब मेरे साथ–साथ ज्योतिष हर वक्त रहता था । वहाँ के मन्दिर की सीढ़ियाँ, इस धर्मशाले की सीढ़ियों से खराब थीं । लेकिन वहाँ कभी नहीं गिरी । इसका कारण यह है कि कहीं जाने पर ज्योतिष मेरे आगे–आगे चलता था । मैं उसके पीछे–पीछे चलती थी । आँखे भले ही पूरी तरह से न खुलने पर भी ज्योतिष के चलने के ढंग के आधार पर मार्ग की स्थिति समझ लेती थी । बहरहाल उस दिन बरामदे से आते समय मैंने हवा में पैर बढाया और बरामदे से नीचे लुढ़क गयी । सिर पर हाथ फेरते ही ज्ञात हुआ कि गुमटा उभड़ आया है । कोहनी छील गयी है । सिर को दबाती हुई बिछौने पर आकर लेट गयी ताकि कोई देख न सके । हाथ में चोट लगी है, इसे कोई देख नहीं सका । दूसरे दिन गुमटा पिचक गया है । लेकिन आँखों के नीचे काली रेखा उभड़ी हुई है । यहाँ आने के पहले कोई गिर पड़े, उसके पहले ही मैं गिर पड़ी ।"

एक भक्त–माँ, शायद इसीलिए कोई अब तक सीढ़ी से नहीं गिरा ।

माँ–आज तक कोई नहीं गिरा, यह कह सकते हो ।

माँ की आँखों के नीचे काला दाग देखकर वैष्णवी ने माँ से पूछा—"माँ, तुम्हारी आँखों में क्या हुआ है ?"

माँ—नवद्वीप के जो कर्त्ता—धर्त्ता हैं, उन्होंने मेरी आँखों में काजल लगाया है । अपना अंगराग दिया है ।

सभी लोग यह सुनकर हँस पड़े ।

वैष्णवी—बायी आँख लेकिन ठीक है ।

माँ—हाँ, केवल दक्षिण अंगे में ही उन्होंने अंगराग लगाया है ।

इतना कहकर माँ खूब हँसने लगीं ।

संस्कार के अनुसार विचार

श्रीयुक्त अटल बिहारी भट्टाचार्य, स्वामी शंकरानन्द, श्रीयुक्त नीरद बाबू आदि कमरे में हैं । नीरद बाबू आज ही नवद्वीप आये हैं । आप राजशाही में नौकरी करते हैं । माँ के साथ आपका परिचय है । बड़े शान्त प्रकृति के व्यक्ति हैं ।

माँ ने उनसे कहा—"इस बार राजशाही जाकर तुम्हारी खोज करती रही, पर तुमसे मुलाकात नहीं हुई ।"

अटल बिहारी बाबू ने नीरद बाबू के बारे में कहा—"यह मेरा छात्र है ।"

माँ—अच्छा ! तुमने इसे पढ़ाया हैं ? पहले तुम्हारे छात्र मेरे मुँह से संस्कृत के श्लोक सुनकर कहा करते थे—'हमारे मास्टर साहब (अर्थात् अटल बाबू) इनके पास आते—जाते हैं । उन्होंने इन्हें यह सब श्लोक सिखाया है ।'

इतना कहकर माँ खूब हँसने लगीं । आगे माँ ने कहा—"सिर्फ यही नहीं, वे सब यह भी कहते—'यह नशा वगैरह भी करती हैं । देखते नहीं, इनकी आँखें कितनी लाल हैं, मुँह की हालत देखो । ठीक नशेबाजों की तरह ।'

सभी खूब हँसने लगे ।

माँ पुनः कहने लगीं–उनकी गलती नहीं थी । सभी अपने–अपने संस्कार के अनुसार विचार करते हैं, मेरी वेष–भूषा देखकर तरह–तरह के लोग तरह–तरह की बातें करते हैं, इसमें आश्चर्य की क्या बात हैं ? एक बार की बात हैं । हावरा स्टेशन पर विमला माँ और मैं गाड़ी की प्रतीक्षा में बैठे थे । दोनों दो दिशाओं की ओर जायेंगे। दोनों के बाल बिखरें थे और सिर पर सिन्दूर पोता हुआ था । हालत समझ सकते हो। हम लोग दूर–दूर थे । मैंने विमला के पास जाकर कहा–'आइये माताजी, हम लोग पास–पास बैठें ।' यही किया गया। बाद में देखा कि दो मेम साहब तिरछी नजर से हमें देख रहीं थी और मंद–मंद मुस्कुरा रही थीं । हम लोग जहाँ बैठे थे, वहीं से टहलते हुए वे आगे जा रहे थे और पीछे वापस आ रहे थे । हमारी ओर देखते हुए फुसफुसकर न जाने क्या कह रहे थे । यह दृश्य देखकर मैंने विमला माँ से कहा कि आओ, हम दोनों खूब जोर से हँसे । इतना कहकर हम अट्टहास कर उठे । उस हँसी को देखकर वे भौंचक्के रह गये ।"

माँ इसी कहानी को इतने सुन्दर ढंग से कह रही थीं कि हम लोग भी हँस पड़े । माँ ने पुनः कहा–इसके लिए इन्हें (मेमों को) दोष नहीं दिया जा सकता । वे अपने संस्कार के अनुसार बातें कर रही थीं ।

भक्तों के साथ माँ का व्यंग्य–परिहास

कुछ देर बाद नीतीश बाबू ने आकर माँ से कहा–"माँ, शंकरानन्द स्वामीजी अपना फतुही एक व्यक्ति को दान में देकर स्वयं नंगे बदन खड़े हैं ।"

माँ ने कहा–"पिताजी ने ठीक किया है । स्वामी का काम त्याग का होता है ।"

यह बात सुनकर स्वामी शंकरानन्द ने अपने त्याग की घटना तुच्छ बनाने के लिए कहा—"इस प्रकार का दान करने में हर्ज क्या है । एक पुराना कुर्ता गया, माँगने पर अब नया कुर्ता मिलेगा ।"

यह बात सुनकर माँ हँसती हुई बोलीं—"तुम शायद नयी चीजों के स्वामी हो ?"

इस बात पर खूब हँसी हूई । ठीक इसी समय एक भक्त स्नानकर श्री श्री माँ का पादोदक ग्रहण करने के लिए पूजा पात्र में पानी लेकर आया और माँ के चरण से स्पर्श कराया ।

माँ ने पूछा—"पिताजी, तुमने कुछ खाया है ? जाओ, जाकर कुछ खा लो ।"

माँ की स्नेहपूर्ण बातें सुनकर भक्त गद्‌गद होकर बोला—"मेरे खाने की चिंता क्या है ।" पादोदक पात्र को ऊपर हवा में उठाते हुए पुनः कहा—"यह तो मेरी खाने की सामग्री है । इसके रहते और किसी चीज की जरूरत नहीं ।"

माँ हँसकर बोली—"केवल चरणामृत से पेट नहीं भरेगा ।"

इस बात से सभी लोग एक बार पुनः हँस पड़े और भक्त लज्जित हो उठा ।

समय काफी हो जाने के कारण हम लोग गंगा में स्नान कर होटल में भोजन करने चले गये । बाद में लोग मुझे उलाहना देने लगे । फलस्वरूप शाम से सभी के साथ धर्मशाले में भोजन करने लगा । इतने लोगों के भोजन का सारा व्यय श्रीयुक्त शचीन बाबू को ही देना पड़ता था ।

श्रीयुक्त धनंजय भट्टाचार्य और श्री श्री माँ

आज तीसरे पहर श्री श्री माँ गंगा में नौका विहार करने नहीं गयीं । धर्मशाले में काफी लोग आ गये । माँ गंगा की ओर बरामदे में बैठी रहीं ।

ठीक इसी समय श्रीयुक्त धनंजय भट्टाचार्य नामक एक प्रौढ़ व्यक्ति श्री श्री माँ से मिलने के लिए आये । कभी आप बहरमपुर में अध्यापक थे । आजकल पेन्शन लेकर नवद्वीप में रह रहे हैं । आप काशी के प्रसिद्ध योगी श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के शिष्य हैं ।

स्वामी शंकरानन्द ने भट्टाचार्य महाशय का परिचय दिया । भट्टाचार्य महाशय ने माँ को संबोधन करते हुए कहा–"माँ, जीवन में काफी उपार्जन कर चुका हूँ । कई लड़के–लड़कियाँ । सभी लड़के नौकरी पर लगे हैं और खुशहाल है । लड़कियों का विवाह अच्छे परिवार में हुआ है । कहने का आशय यह है कि अब मुझे संसार में कुछ करना नहीं रह गया । अब मेरे दिन नजदीक आ रहे हैं । अब यही इच्छा होती है कि 'माँ–माँ' कहते हुए प्राण निकले । क्या मुझे माँ की कृपा प्राप्त होगी ?"

माँ–हम लोग 'माँ–माँ' कहकर पुकारते हैं, यह भी तो उनकी कृपा है ।

वृद्ध–माँ तो पाषाणी है, कितना पुकारता हूँ, पर कहाँ उनके दर्शन होते है ।

माँ–पाषाण भी गल जाता है । रोने–धोने पर माँ क्या बिना आये रह सकती है ? देखा होगा, जब बच्चे रोते हैं तब काम छोड़कर दौडी हुई आती हैं । हाँ, रोना ठीक–ठीक होना चाहिए । वे सर्वदा हमारी ओर कान–आँख लगाये बैठी हैं । जब हम सचमुच व्याकुल हो उठते हैं तब वे आकर दर्शन देती हैं ।

आगे भट्टाचार्य महाशय ने कहा–"माँ, मैंने एक बार अपने गुरुदेव से पूछा था कि मन के विकार कैसे दूर होते हैं ? उत्तर में उन्होंने कहा था कि सुन्दरी स्त्री को मातृभाव में दर्शन और पूजा करने से मन के विकार दूर हो जाते हैं ।"

"एक बार मैं काशी में भास्करानन्द स्वामी से मुलाकात करने गया था । वे आमतौर पर किसी से मिलते नहीं थे । मैंने जाकर उन्हें ज्यों ही प्रणाम किया त्यों ही वे लाठी उठाकर मारने को तैयार हुए । मैंने उनके चरण पकड़ कर कहा–"बाबा, इस काशीधाम में तुम्हारे हाथ से मार खाकर अगर मेरे प्राण चले जायें तो यह मेरे लिए सुख का विषय होगा । मैं आपका चरण नहीं छोडूंगा । आपकी जो इच्छा हो, कर सकते हैं ।" इन बातों को सुनकर स्वामी भास्करानन्द संतुष्ट हुए और मेरा परिचय पूछा, मैंने अपना परिचय देकर जिन यौगिक–क्रियाओं को करता हूं, उसे बताया । उन्होंने दो–एक क्रिया दिखाते हुए सहस्रार में ध्यान करने को कहा । उनके उपदेशानुसार एक दिन ध्यान करते समय एक प्रकाण्ड ज्योति का दर्शन किया । अक्सर ज्योति दर्शन कर लेता हूँ । अच्छा माँ, माँ की दया क्या नहीं होगी ?"

माँ–वे तो ज्योति के रूप में तुम्हें दर्शन देते हैं । फिर किस बात की चिन्ता ?

भट्टाचार्य महाशय प्रायः ज्योति दर्शन करते हैं, इस बात का उल्लेख करते हुए उन्होंने माँ से पूछा–"यह सब देवता क्या बातें करते हैं ?"

माँ–ऋषि मुनिगण दर्शन देकर हमारी कामना पूर्ण करने में सहायता करते हैं।

वृद्ध–बीच–बीच में ध्वनि सुनाई देती हैं ।

माँ–उस ध्वनि का कोई ढंग हैं ?

वृद्ध–वह लम्बी ध्वनि होती हैं ।

माँ–उसे नाद कहते हैं । इस प्रकार का दर्शन श्रवण जिन्हें होता है, उसका भाग्य खूब अच्छा होता है ।

भट्टाचार्यजी ने आगे कहा–एक बार मेरा लड़का अस्वस्थ हो गया था । डाक्टरों ने जवाब दे दिया था । मैं माँ के कमरे में पूजा करने लगा । पूजा समाप्त होने के साथ ही लड़के को पसीना हुआ और बुखार दूर हो गया । इसके बाद फिर बुखार नहीं आया । एक बार विवाह के उपलक्ष्य में घर पर निमंत्रण का आयोजन हुआ था । ठीक इसी समय आसमान में बादल छा गये । बच्चे मेरे क्रियाकलाप से परिचित थे । उन लोगों ने मुझे क्रिया करने को कहा । मैं इनकी बातों को सुनकर क्रिया करना प्रारम्भ किया । माँ को खूब पुकारा। अन्त में देखा गया कि बादल छँट गये और धूप निकल आयी । ऐसी घटना अक्सर हो जाती थी । तुम्हारा नाम सुनकर आज मैं तुम्हें देखने चला आया । तुम्हें देखकर मैं बहुत तृप्ति अनुभव कर रहा हूँ । आज तुम्हें ध्यान में रखने का प्रयत्न करूँगा ।''

माँ–तुम भी तो माँ की मूर्ति हो ।

वृद्ध–सो कैसे ?

माँ–वर्ना माँ की पूजा कैसे कर पाते ?

वृद्ध–यह ठीक है ।

इतना कह कर वृद्ध हँसने लगे। शेष लोग उनका साथ देने लगे।

एक बोल में सब मिलता है

भट्टाचार्य ने पुनः कहना शुरू किया–''दुःख में माँ सांत्वना देती हैं । मैं माँ से केवल सांत्वना चाहता हूँ ।''

श्री श्री माँ इस प्रश्न का बिना उत्तर दिये, चुप बैठी रहीं ।

वृद्ध–आज मेरे लिए बड़े आनन्द का दिन है जो आनन्दमयी को पा गया हूँ । जरा दया रखियेगा । उम्र बढ़ने के साथ जरा उद्विग्न हो गया हूँ । जरा आप उपदेश दें ।

माँ–उपदेश तो एक ही है । जब तक पकड़कर रहा जा सके तब तक केवल एक को पकड़कर रहना चाहिए ।

वृद्ध–यह क्यों नहीं हो सकेगा ? मन में साहस है कि यह कर सकूँगा ।

माँ–यही आवश्यक है ।

वृद्ध–इस आशा से आया था कि मां से उपदेश सुनूँगा ।

माँ–पिताजी, बेटी कहीं कुछ कह पाती है ? बेटी एक ही बोल बोलती है–एक बोल में एक ही मिलता है । जरूरत है केवल एक लक्ष्य होना ।

वृद्ध–पक्षी एक बोल बोलता है, वह देख कहाँ पाता हूँ ?

माँ–मनुष्य एक बोली में ही देख पाता है । वे दर्शन देंगे, इसलिए वे एक बोली बुलवा लेते हैं, एक काम करवा लेते हैं । मेरा क्या है, क्या नहीं है, इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं । मेरा कर्त्तव्य है केवल एक को लेकर रहना । एक नाम, एक ध्यान, एक चिन्ता लेकर एक लक्ष्य होना । अपने विश्वासों को दृढ़ करना होगा । दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है जब कि उसका भयानक अभाव है । कर्म करके वासना को समाप्त नहीं किया जा सकता । एक के बाद एक करके अनन्त वासनाएँ हैं । केवल एक वासना लेकर रहने पर – केवल भगवान् को प्राप्त करने की वासना लेकर रहने पर, अन्य वासनाओं का लोप हो जाता है । जैसे डाली–पत्ते पर ध्यान न देकर दिन पर दिन पेड़ की जड़में पानी देते रहो तो देखोगे कि उस वृक्ष के पुराने पत्ते झड़कर नये पत्ते जन्म ले रहे हैं । उसी प्रकार दूसरी ओर लक्ष्य न रखकर केवल नाम करते रहने पर मनुष्य पूर्व जन्मों के संस्कारों से मुक्त होकर नया जीवन प्राप्त करता हैं ।

वृद्ध–आपको देखकर ऐसा लगता है जैसे आपको प्राप्त हो गया हूँ ।

माँ–(वृद्ध के प्रति निर्देश करती हुई) यह तो तुम्हें पा गया हूँ। तुम जिसे चाहते हो, वही यह मूर्ति है ।

इतना कहकर माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

आगे मां ने पुनः कहना प्रारंभ किया–व्याकुल होना होगा । व्याकुलता हमारा स्वभाव है । उन्हें पाने की व्याकुलता हम लोगों में अपने–आप आती है । स्वधन प्राप्त होने पर यह व्याकुलता चली जाती है । रुपया–पैसा या धन यह खराब नहीं है, अगर इससे असली चीज़ पाने के लिए कर्म किया जाय तो । अगर भगवान् की ओर लक्ष्य रहे तो रुपये–पैसे के द्वारा शरीर पुष्ट करना भी पाप नहीं है । चेष्टा से आसक्ति का त्याग नहीं होता । केवल उन्हें पाने की आसक्ति बढ़ाने पर अन्य आसक्तियों को छोड़ा जा सकता है । त्याग के लिये व्यस्तता कैसी ? जागतिक चीजों का स्वभाव ही त्याग है । आनन्द और शान्ति सभी के लक्ष्य हैं । यह बात सभी में है । इसका त्याग तो होता नहीं। जिसका त्याग होना है, वह हो जायगा ।

वृद्ध–आपसे एक नया उपदेश मैंने ग्रहण किया । 'एक को लेकर' रहना, एक लक्ष्य होना । यह एक आशा की बात है कि उन्हें पाया जा सकता हैं । पर अभी मार्ग बन्द है । मेरा समय समाप्त हो रहा है । अब मुझे जाना पड़ेगा ।

माँ–कहाँ जाओगे पिताजी ? जाना–आना है क्या ?

वृद्ध–(हँसकर) एक घर छोड़कर दूसरे घर में ।

माँ–तुम्हारा घर कौन सा है ?

वृद्ध इस प्रश्न का मर्म समझ नहीं सके और श्री श्री माँ की ओर देखने लगे ।

माँ–तुम्हारा घर श्वासोंका घर हैं । जब तक श्वास है तब–तक तुम्हारा घर हैं । इसके समाप्त होते हो घर टूट जाता है । पर जरूरत होने पर दूसरे घर में जा सकते हो ।

माँ की बातें सुनकर वृद्ध खूब प्रसन्न हो गया और कहा–"आपने जो कुछ कहा, वह सत्य है और यह बातें शास्त्र की हैं ।"

वृद्ध की शान्त–गम्भीर आकृति पर हर्ष–विस्मय के भाव एक साथ प्रस्फुटित हो गये । शाम हो गयी थी यह देखकर वे धीरे–धीरे चले गये । हमलोग बरामदे से कमरे के भीतर चले आये ।

शास्त्र और परमतत्त्व

दो संन्यासी श्री श्री माँ से मिलने के लिए आये । माँ ने उन लोगों को बैठने के लिए आसन देने को कहा । इनमें से एक संन्यासी कल भी आये थे । आप कुछ बोलते नहीं, केवल चुपचाप माँ की बातें सुनते रहते हैं । माँ के अधिक अनुरोध करने पर दो–एक बात कहते हैं । दूसरे संन्यासी पंजाब के रहनेवाले हैं । आप दर्शन–शास्त्रों का अध्ययन कर चुके हैं, आजकल नवद्वीप में न्यायशास्त्र का पाठ कर रहे हैं । इन लोगों की बातचीत हिन्दी में होती रही ।

संन्यासी ने पूछा – "माँ, जन्म–मृत्यु का क्या कारण है ?"

माँ–कारण तो केवल एक ही है । सब कुछ एक से जन्म ले रहा है, एक ही स्थिति प्राप्त कर रहा है । फिर एक ही में लय हो जा रहा है ।

यह उत्तर सुनकर संन्यासी सन्तुष्ट नहीं हुए । उन्होंने चिन्तन करना प्रारम्भ किया । माँ उनके साथ दो–चार बातें करने के बाद चुप हो गयीं ।

संन्यासी ने पुनः प्रश्न किया तो मां ने उत्तर दिया – "पिताजी, मेरे मुँह से हरवक्त जवाब नहीं निकलता । मेरे पास शास्त्रों का ज्ञान नहीं है जो आपके प्रश्नों का जवाब दे सकूँ । मैं कुछ भी नहीं जानती । तुम लोग मुझसे जो कुछ बुलवा लेते हो, वही बोल देती हुँ। तुम मुझसे कहलवा नहीं सके, इसलिए जवाब नहीं पा सके । यह तुम्हारी गलती हैं । मैं तो हमेशा कहा करती हूँ कि तुम लोग अच्छी–अच्छी बातें मेरे मुँह से निकलवा लो । तुम लोग सुनो और मैं भी सुनूँ ।"

अटल बाबू आदि जो लोग वहाँ मौजूद थे, उन लोगों ने संन्यासीजी को बताया–"माँ ने शास्त्रो का अध्ययन नहीं किया है । आप जो कुछ जानती हैं, वह सब अनुभूति से होता है अतएव माँ से शास्त्र सम्बन्धी बातें करने से कोई लाभ नहीं होगा । तत्त्वज्ञान तो अनुभूति के द्वारा होता है, शास्त्रों के चिन्तन से नहीं ।"

यह बात सुनकर संन्यासी ने कहा – "मैं तो माँ के निकट अनुभूति की बातें सुनने आया हूँ । 'मैं दोनों को मिलाकर यह जानना चाहता हूँ कि अनुभूति कितना शास्त्र सम्मत हैं ।"

संन्यासी ने पुनः मां से प्रश्न किया–"शास्त्रों में विभिन्न उक्तियाँ हैं । उनमें से कुछ परस्पर विरोधी है । इनमें से किसका अनुसरण करना उचित है ?"

माँ–शास्त्र की सभी उक्तियाँ सत्य है । साधक और साधना के माध्यम से जिसे अनुभव किया है, उसे ही शास्त्रों में व्यक्त किया है, पर वह व्यक्त कितना हुआ है ? (हँसकर) शास्त्रों को मैं टाइम टेबुल कहती हूँ । एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए कितने स्टेशनों से गुजरना पड़ेगा, यह टाइम टेबुलों में लिखा रहता है । लेकिन वह सब स्थान के नाम मात्र है । केवल नाम पढ़कर उसके बारे में कोई धारणा नहीं बनायी जा सकती । इसके अलावा एक जगह से दूसरी जगह तक जाने के मार्ग में जितने स्थानों से गुजरना पड़ता है, उनमें

से सभी के नाम टाइम टेबुल में नहीं रहते । केवल प्रधान-प्रधान स्थानों के नाम रहते हैं । शास्त्रों में भी उसी प्रकार साधन राज्यों की सारी बात नहीं हैं । केवल कुछ अवस्था की बात हैं । लेकिन इनमें से किसी एक अवस्था को प्राप्त कर लेने पर भीतर से जितनी अनुभूतियाँ आती हैं तथा एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक जाने में जितने छोटे-बड़े असंख्य अनुभव होते है, इन सभी का वर्णन शास्त्रों में नहीं है। इसीलिए शास्त्रों की बातें साधन-राज्य की अंतिम बातें समझना सरासर गलत हैं । इसके अलावा शास्त्रों में भिन्न-भिन्न उक्तियाँ इसलिए हैं कि साधकों के भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत संस्कार थे । आध्यात्मिक अनुभूति व्यक्तिगत संस्कार के अनुसार होती है । सभी की एक जैसी नहीं होती । इसीलिए कहती हूँ कि शास्त्र में जितना व्यक्त किया गया है, वह भी उतना ठीक है और जो व्यक्त नहीं हुआ है, वह भी उतना ही ठीक है । तुम लोग रसगुल्ला खाने के बाद यह बता सकते हो कि यह "इतना मीठा है," । "इतना मीठा है"- लेकिन रसगुल्ले का समस्त आस्वाद व्यक्त नहीं होता उसी प्रकार परम-तत्त्व को अनुभव करने के बाद उसके बारे में सम्पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता ।

संन्यासी-ऐसी हालत में मेरा क्या कर्तव्य है ? परमपद पाने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?

माँ-भगवान् को प्राप्त करने के लिए गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलना एक मात्र कर्त्तव्य है । कार्य आरम्भ करने पर सब अपने आप हो जाता है । मान लो, तुम्हें गंगा-घाट जाना है। किसी व्यक्ति से तुमने रास्ता पूछा । उसने तुम्हें मार्ग बता दिया । अगर तुम चलते-चलते गलत रास्ते की ओर मुड़ जाते हो तब राह चलते लोग भी पुनः ठीक रास्ता बता देंगे या राह चलते किसी और से पूछ कर तुम ठीक समय पर गंगा किनारे पहुँच जाओगे । असल कार्य है-

चलना। फलस्वरूप जिन्होंने तुम्हें पहले पहल मार्ग बताया, वे अपने साथ तुम्हें गंगा किनारे तक भले ही न लायें, पर तुम अपने प्रयत्नो से गंगा किनारे तक पहुच जाओगे। धर्म के बारे में यही हाल है। एक मार्ग पर चलना प्रारम्भ करने पर नाना प्रकार की सहायता प्राप्त कर सकोगे।

इस प्रकार बातें समाप्त होने पर माँ जलपान करने चली गयीं। दोनों संन्यासी भी प्रस्थान कर गये।

विमला माँ का नवद्वीप आगमन

आज शाम के बाद विमला माँ को साथ लेकर आनन्द भाई[1] नवद्वीप आ गये। श्री श्री माँ इन्हें तथा निर्मला माँ, हेम भाई आदि को साथ लेकर भोजन करने बैठी। उस समय आपस में परिहास होता रहा। भोजन समाप्त होने पर इन लोगों को साथ लेकर कमरे में आयीं। बीच में माँ बैठीं और उनकी दाहिनी ओर विमला माँ और आनन्द भाई तथा बायीं ओर निर्मला माँ और हेम भाई बैठे थे।

माँ परिहास करती हुई बोलीं–"निर्मल आकाश में विमल आनन्द।"

इन लोगों को इस तरह बैठा देखकर यतीश बाबू की माँ ने कहा– "आज हम लोग दुर्गा मूर्ति देखकर धन्य हुए। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा सभी आज उपस्थित हैं।"

माँ हँसती हुई बोलीं–"असुर–सिंह कहाँ हैं ?"

स्वामी शंकरानन्द ने कहा–"द्वारिका गये हुए हैं।"

सभी लोग अट्टहास कर उठे। बाबा भोलानाथ इन दिनों द्वारिका रवाना हुए थे।

---

१. आनन्द भाई विमला माँ के पति हैं। ये लोग भी आद्यापीठ के श्री श्री आनन्दा ठाकुर महाशय के शिष्य हैं। पहले आनन्द भाई गृहस्थी से अलग होकर गुरु के निकट रहने लगे। कुछ दिनों बाद विमला माँ ने भी पति के मार्ग का अनुसरण किया। आजकल ये लोग भी आद्यापीठ में ही रहते हैं।

माँ–(हँसकर) तुमने भोलानाथ को सिंह कहा । ठहरो, भोलानाथ को आने दो ।

शंकरानन्द–मैंने ठीक ही कहा है । भोलानाथ के अलावा तुम्हारा गुरुभार और कौन बर्दाश्त कर सकता है ? जिन लोगों को मेरी बात पर हँसी आयी है, वे लोग देवी के वाहन सिंह के वास्तविक मर्म से परिचित नहीं हैं । मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ कि इस बात को सुनकर भोलानाथ जी असन्तुष्ट नहीं होंगे । वे मेरी बातों का अर्थ समझ लेंगे।

माँ–अच्छा, असुर कौन हैं ?

शंकरानन्द (वक्षस्थल फुलाते हुए) मैं । असुर तो मैं हूँ ।

सभी पुनः हो–होकर हँस पड़े ।

माँ पुनः विमला माँ और निर्मला माँ के साथ विनोद करने लगीं । हेम भाई चुपचाप बैठे थे । आनन्द भाई बराबर बातें कर रहे थे । नाना प्रकार की कविताएँ सुनाते रहे । मैं कुछ देर तक बैठा आनन्द भाई की बातें सुनाता रहा । उनकी सारी बातें नहीं समझ सका । अन्त में सोने चला गया ।

२८ दिसम्बर, सन् १९३६ ई. सोमवार । आज सवेरे माँ के यहाँ गया । कल यतीश बाबू कलकत्ता चले गये हैं । आज उषाकीर्तन नहीं हुआ । निर्मला माँ और आनन्द भाई माँ के निकट बैठे थे । निर्मला माँ तो एक प्रकार से चुपचाप बैठी रहीं । उसे लक्ष्य करके आनन्द भाई नाना प्रकार की बातें कहने लगे ।

सवेरे का वक्त इसी तरह की बातचीत से समाप्त हो गया ।

आज के लिए श्रीयुक्त शक्तिपद लाहिड़ी नामक एक इनकम टैक्स अफसर अपने यहाँ भोजन करने का निमंत्रण दे गये हैं । अपने यहाँ वे श्री श्री माँ को भोग देने का प्रबन्ध कर चुके हैं । गंगा के उस पार महेशगंज में उनका घर हैं । नाव से जाना पड़ेगा । नाव का प्रबन्ध भी वे कर गये हैं । महेशगंज जाने के पूर्व माँ को सामान्य भोग धर्मशाले में दिया गया । हम लोगोंने प्रसाद ग्रहण किया ।

भाव द्वारा सेवा ही वास्तविक सेवा है

जिस समय माँ को भोग दिया जा रहा था, ठीक उसी समय एक सज्जन सपत्नीक आये । सुना कि आप काटोवा स्थित सहकारी समिति के इन्स्पेक्टर हैं । आपने गौर-निताई की मूर्ति बनवाने का आर्डर दिया था । आज उसे लेने के लिए आए हैं । श्री श्री माँ के बारे में सुनकर दर्शन करने चले आये हैं । उक्त सज्जन देखने पर सरल और उनकी पत्नी भक्तिमती लगीं । श्री श्री माँ का भोग समाप्त होने पर माँ के पास आकर उन्होंने प्रणाम किया ।

माँ ने कहा-"तुम्हें कहीं देखा हैं, ऐसा लगता हैं ?"

लेकिन उक्त सज्जन यह नहीं बता सके कि इसके पूर्व कब-कहाँ माँ के साथ मुलाकात हुई थी । उन्होंने नवद्वीप आने का कारण बताया । सुनकर माँ संतुष्ट हो गयीं ।

सज्जन-माँ, गृही लोगों को कैसे चलना चाहिए, इस सम्बन्ध में कुछ उपदेश दीजिये ।

माँ-बात तो एक ही है । तुम ठाकुर को लेने आये हो । ठाकुर अगर साथ-साथ रहें तो उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है । साथ रहना ही असली बात है । साथ छूट जाने से मुश्किल होगी । सर्वदा ठाकुरजी की सेवा करते रहना ।

सज्जन-किस तरह सेवा करना चाहिए, इस बारे में उपदेश दीजिये ।

माँ-ठाकुर साथ रहने पर उपदेश भीतर से आता है । मन लगाकर सेवा करने का प्रयत्न करना । अगर ऐसा हुआ तो प्राण आ जायगा । सुना होगा, लोग कहा करते हैं कि मन-प्राण से सेवा करना, वह ऐसा ही होता है । सर्वदा मन लगाये रहने का प्रयत्न करना ।

इसके अलावा सेवा करना एक बात है और सेवा होना अलग बात है । जो लोग सेवा करना जानते है, उनसे सेवा करने के नियम समझकर कार्य आरम्भ करना चाहिए । कार्य करते-करते भाव उदय होता है। आगे चलकर उस भाव के द्वारा सेवा होती रहती है । भाव के द्वारा हुई सेवा असली सेवा है । भाव के माध्यम से सेवा करने का कोई साधारण नियम नहीं है । यह सम्पूर्ण व्यक्तिगत है । इसके बारे में किसी उपदेश की जरूरत नहीं । नियम के अनुसार सेवा करते-करते जब भाव का उदय होता है तब किस भाव से सेवा करना चाहिए, यह भाव ही बता देता है । देखा होगा, सभी एक ही पुस्तक पढ़ते हैं, इनमें कोई भाषण दे लेता है और कोई कविता लिखता है । वह भाषण या कविता इन लोगों ने किसी पुस्तक में नहीं पढ़ा हैं । यह सब उनके भीतर से आता हैं । सेवा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही जानना। प्रकृत सेवा, भाव के माध्यम से सेवा किसी को सिखाना नहीं पड़ता। यह भीतर से आता हैं । (उक्त सज्जन की पत्नी की ओर देखती हुई) माताजी जिस प्रकार पति-सेवा करती हैं, उसी प्रकार सभी लोगों की सेवा करनी चाहिए । हम सब तो महिला हैं । स्वामी तो केवल एक हैं । भगवान् ही हमारे स्वामी हैं । वे ही एक मात्र पुरुष हैं और बाकी लोग महिला हैं ।

महेशगंज जाने का समय हो गया था । हम लोग रवाना हो गये । श्री श्री माँ आगे-आगे चल रही थीं । हम लोग उनके पीछे-पीछे चल रहे थे । नाव तैयार थी । मार्ग में एक महिला ने पूछा-"माँ, मेरा इस तरह का कर्म (सांसारिक कर्म) और कितने दिन बाकी रह गया ?"

माँ-जितने दिन संसार हैं । यह गठरी बिना खोले काम नहीं चलेगा। सारी कठिनाई इसके कारण है ।

महिला-मेरा संस्कार अब और कितने दिन हैं ?

माँ–अभी कुछ दिन और है ।

महिला–अब सह्य नहीं हो रहा है ।

माँ–नहीं, अभी शक्ति है। 'नहीं हो रहा है' कहने की शक्ति है।

इतना कहने के बाद माँ हमलोगों की ओर देखती हुई हँसने लगीं। माँ की बातें सुनकर लगा जैसे भगवान् पर निर्भर रहने का व्यक्तिगत प्रयत्न लेशमात्र रहते बोध नहीं आता ।

हम लोग नाव पर सवार हुए । दो या अढ़ाई घण्टे बाद हम लोग शक्तिपद बाबू के घर पहुँचे । वहाँ माँ को भोग दिया गया । हम लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया । शाम होने के कुछ पहले हमलोग वहाँ से रवाना हुए । नदी के किनारे आकर देखा कि सभी नाव पर आराम से बैठे हुए हैं । माँ की नाव पर सबसे अधिक भीड़ थी । एक नाव पर प्राणकुमार बाबू, अटल बाबू के बहनोई आदि कुछ लोग बैठे थे । मैं इसी नाव पर जाकर बैठ गया । नाव छूटने के कुछ पहले माँ तीन नावों को पार करती हुई मेरे नाव पर आकर खड़ी हो गयीं ।

यहाँ आकर बोलीं–'इस नाव पर जितने लोग बैठे हैं, सभी निरीह हैं । इनका मुँह कभी नहीं खुलेगा कि माँ, तुम हमारी नाव पर आ जाओ ।'

इसे कहते हैं अहैतुकी कृपा : शाम होने के कुछ देर बाद नवद्वीप पहुँचे तो देखा–खुकुनी दीदी, स्वामी अखण्डानन्द तथा विनय भूषण सपत्नीक आये हैं । माँ का दर्शन करने के लिए घाट किनारे प्रतीक्षा कर रहे हैं । धर्मशाला तक पहुँचने में रात हो जाने के कारण आज कोई बाहरी व्यक्ति मौजूद नहीं था । केवल आपस के लोग माँ के निकट बैठे ।

आनन्द भाई और निर्मला माँ को उपलक्ष्य करती हुई श्री श्री माँ का हम लोगों को उपदेश देना

आज नये भक्तों के आगमन से हमारे दल की संख्या बढ़ गयी थी । भीड़ अधिक होने के कारण कीर्तन की व्यवस्था नहीं हुई । इसका कारण यह है कि कीर्तन होने पर निर्मला माँ और विमला माँ भावावेश में आ जाती है । कहा जाता है कि उस अवस्था में काफी कष्ट होता है । शायद इसीलिए आनन्द भाई कीर्तन का विरोध करते हैं । फलतः कमरे में बैठकर केवल बातचीत होती रही ।

कुछ दिन पहले निर्मला माँ जमशेदपुर स्थित कुछ भक्तों के काफी दिनों से अनुरोध करने पर वहाँ गयी थीं । वहाँ हुए कीर्तन में आपको भावावेश हुआ था । आनन्द भाई ने उक्त घटना का उल्लेख करते हुए कहा–निर्मला माँ को फटकारते हुए कहा था कि अब भाव दिखाकर घूमने की जरूरत नहीं । उनकी बातों में व्यंग्य का पुट था, इसलिए निर्मला माँ जरा दुखित हुई । उपस्थित सभी लोगों ने अनुभव किया कि आनन्द भाई का फटकारना अयथार्थ और बेमौके का है । इधर निर्मला माँ के पति निर्विकार भाव से बैठे रहे । उपस्थित व्यक्तियों में त्रिगुणा बाबू यद्यपि रूढ़ नहीं, पर स्पष्टवक्ता हैं । उन्होंने संयत भाषा में अपना वक्तव्य इस ढंग से दिया कि आनन्द भाई भी समझ गये कि निर्मला माँ के पति हेम भाई की मौजूदगी में उनके (निर्मला माँ के) बारे में कुछ भी कहना, एक प्रकार से अनधिकार चर्चा है। अबतक जो वादानुवाद हो रहा था, इस ओर श्री श्री माँ का ध्यान नहीं था । वे नीरव भाव से पाषाण मूर्ति की तरह बैठी रहीं । लेकिन ज्योंही त्रिगुणाबाबूने आनन्द भाई के प्रति अपनी बातें समाप्त कीं, त्योंही माँ ने आपत्ति प्रकट करते हुए त्रिगुणा बाबू से कहा कि ये आनन्दभाईसे इसके लिये क्षमा माँग लें । त्रिगुणा बाबूने ऐसा ही किया । वादानुवाद यही रुक गया और आनन्द भाई सोने चले गये। निर्मला माँ के सोने का प्रबन्ध माँ के बिछावन के पास हुआ । वे सो गयी। हेम भाई भी सोने चले गये ।

आनन्द भाई जब सोने चले गये तब माँ ने अवनी बाबू से कहा– "क्यों पिताजी, आज तुम कीर्तन करोगे, कहते थे ?"

अवनी बाबू–हाँ, माँ।

माँ–कब करोगे ?

अवनी बाबू ने कहा–बस, कर रहा हूँ ।

इतना कहने के बाद उन्होंने कीर्तन करना प्रारम्भ किया । कीर्तन चलता रहा । कीर्तन की आवाज सुनते ही आनन्द भाई आये और माँ के पास बैठ गये । माँ बिना कुछ बोले कीर्तन सुनती रहीं । अवनी बाबू क्रमशः स्वर तेज करते गये और रह रहकर निर्मला माँ की ओर देख लेते थे । आनन्द भाई की आकृति गंभीर हो गयी । कुछ देर कीर्तन होने के बाद निर्मला माँ सिसक–सिसक कर रोने लगीं । यह दृश्य देख आनन्द भाई गुस्से से लाल–पीले होकर कमरे से बाहर चले गये । तुरत कीर्तन बन्द हो गया । माँ अवनी बाबू को दोष देने लगीं।

अवनी बाबू–मैंने क्या किया ? तुमने तो मुझे कीर्तन करने को कहा ।

माँ–मैंने तुम्हें धीरे–धीरे करने को कहा था । तुम क्रमशः स्वर तेज करते गये, आखिर क्यों ? इसके अलावा निर्मला माँ को तुम एक बार भावावेश में देखना चाहते थे, इसीलिए कीर्तन करते समय निर्मला की ओर बराबर गौर कर रहे थे कि तुम्हारे कीर्तन का कितना असर उन पर हो रहा है । माताजी को इस स्थिति तक लाने के लिए तुम उच्चस्वर तक पहुँच गये थे ।

माँ की बातें सुनकर हम लोग हँसने लगे । बड़ी मजेदार बात रही । माँ स्वयं अवनी बाबू से कीर्तन करने की आज्ञा देकर इस वक्त डाँट रही हैं । यह डाँट, माँ की डाँट रही इसमें तिक्तता जरा भी नहीं थी ।

मां की डाँट सुनकर अवनी बाबू रोने लगे । यह दृश्य देखकर हम लोग हँसना भूल गये । तभी निर्मला माँ को इस कमरे से हटाकर दूसरे कमरे में ले जाया गया ।

माँ हम लोगों से कहने लगीं – "सुनो, आनन्द पिताजी नाराज हुए हैं । इसमें उनका दोष नहीं हैं । यह तुम लोग देख ही रहे हो कि वे निर्मला मां से कितना स्नेह करते हैं । कीर्तन में निर्मला मां का शरीर खराब हो जाता है, इसीलिए कीर्तन करने के पीछे उनकी आपत्ति है । वह माँ से स्नेह करता है और स्नेह के अधिकार को लेकर इस तरह की बातें करता हैं तथा उसकी गतिविधि को नियंत्रित करना चाहता हैं । तुम लोगों को यह सब देखकर दुःख होता है, पर ऐसी बातों में कुछ कहने के पहले तुम लोगों को सोचना चाहिए कि तुम लोग किस अधिकार से ऐसी घटनाओं में दखल दे रहे हो। बिना सोचे–विचारे बात कहने पर लज्जित होना पड़ेगा । ऐसे मौके पर तुम्हें यह सोचना होगा कि यह सब भगवान् की लीला हैं । उन्होंने एक व्यक्ति के भीतर धर्मभाव जगाया है, दूसरी ओर वे ही एक व्यक्ति के माध्यम से बाधा उत्पन्न कर रहे हैं ।"

एक भक्त – माँ अगर कोई हमारे गुरु की निन्दा करे तो हमे क्या करना चाहिए ?

माँ – निन्दा सुनने पर चुप रहना ही अच्छा है । उस वक्त यही सोच लेना चाहिए कि गुरु इच्छा से मैं उनकी निन्दा सुनने को बाध्य हुआ हूँ । इससे धैर्य बढ़ता हैं ।

नाम से ही हठयोग होता है

इसके बाद श्री श्री माँ निर्मला माँ की अवस्था की व्याख्या करने लगीं – "कीर्तन सुनने के बाद माँ के शरीर में विकार आरंभ हो जाता हैं । शायद कलेजा टूटकर चूर–चूर हो जाता हैं । यह हठयोग के लक्षण हैं । साधना की प्रथम स्टेज पर ये सब विकार होते हैं।

बाद में यह सब नहीं होता । सुना होगा कि हठयोग का अभ्यास करते हुए नाना प्रकार के आसन के द्वारा शरीर को नाना प्रकार से विकृत करते हैं । साधना की प्रथम अवस्था में नाम के प्रभाव से हठयोग की यह सब क्रिया अपने आप शरीर में हो जाती हैं । कीर्तन या नाम ध्वनि सुनते ही शरीर विकल हो उठता है । शरीर में भयंकर कष्ट होता है । इस समय कीर्तन सुनना कष्टदायक हो जाता है । दूसरी ओर कीर्तन बन्द कर देने पर यह दर्द और भी कष्टदायक बन जाता है । सुना होगा कि माताजी कह रही थीं–''कीर्तन सुनने पर खूब कष्ट होता है, पर इतना मधुर नाम है कि बिना सुने रहा नहीं जाता । इससे मेरा दर्द बढ़ जाता हैं ।' जब ऐसी हालत हो जाय तब धैर्य धारण करना चाहिए । इसी को कहते तपस्या । इसीलिए तपस्या को मैंने 'ताप–सहा' (ताप सहना) कहती हूँ । नाम–ध्वनि सुनने पर भी अगर धैर्य धारण कर कुछ दिनों तक नाम–गायन सुना जाय तब वह यंत्रणा नहीं होती ।''

इन बातों को माँ नाना ढंग से समझाती रहीं । रात के ३ बज चुके थे यह देखकर मैं सोने चला गया ।

गंगा को फल–दान

२९ दिसम्बर, सन् १९३६ ई. मंगलवार । आज सवेरे माँ गंगा की ओर टहलने जायेंगी, यह इच्छा प्रकट कर चुकी हैं । हम लोग माँ के साथ चल पड़े । चार नावें किराये पर ली गयीं । आज नाव पर भोजन की व्यवस्था नहीं की गयी थी । कुछ देर तक घूमने के बाद माँ चली आयेंगी, ऐसा उन्होंने कहा था । शची बाबू कलकत्ता से माँ के लिए काफी फल ले आये थे । एक दौरी फल नाव पर ले आया गया था । चारों नाव एक साथ बांधकर आगे बढ़ाने के लिए कहा गया । प्रातःकाल के सूर्य की किरणें छोटी–छोटी तरंगों के बीच नृत्य कर रही थीं । ऊपर नीलाकाश, नीचे स्वच्छ सलिला,

कलुषनाशिनी जाह्नवी और बीच में खड़ी है शरदिन्दु निभानना, श्वेतवसना, आलुलायित कुंतला, चिदानन्द स्वरूपिणी, चिरहास्यमयी हमारी मां। यह एक अद्भूत दृश्य था। भक्तगण तन्मय होकर सुमधुर स्वर में कीर्तन कर रहे हैं। नवद्वीप के घाटों पर नहानेवाले दर्शक यह दृश्य देखकर मुग्ध हो चित्रार्पितों की तरह हमारी ओर देख रहे हैं। उन लोगों को इस तरह देखते देखकर मां आनन्दित हो उठीं।

फल देकर माँ को भोग दिया गया। मां ने कहा कि शची बाबू जितने फल लाये हैं, उनमें से एक–एक गंगा को दे दो। उसे किस ढंग से चढ़ाया जाय, यह भी बताया। शची बाबू एक–एक फल अंजलि की तरह दोनों हाथों से जैसे यज्ञ में आहुति दी जाती है, ठीक उसी प्रकार गंगा में अर्पण करने लगे। संतरा, सेब, अमरूद आदि गंगा में तैरने लगे। कीमती फलों को इस तरह बहते देख माझी अपने आपको रोक नहीं सके। वे सब उसे पकड़ने के लिए लपके। मां ने उन्हें पकड़ने को मना किया और देर तक बहते हुए फलों की ओर देखती रहीं।

नौका पर ही हम लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। विमला मां, निर्मला मां हमारे साथ थीं। कुछ देर तक नाव पर घूमने के बाद मां धर्मशाले में चली आयीं।

पिछली रात को निर्मला मां और आनन्दभाई में कचकच होने के कारण मेरे मन में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। मां से उस बारे में पूछने के लिए अवकाश खोज रहा था। धर्मशाला जाकर मैंने मां को जब अकेला पाया तो पूछा – "मां, अन्तर में जब धर्म–भाव जागृत होता है तब धर्म–भाव विकास के मार्ग में जितनी बाधाएँ आती हैं, क्या वे सब आकस्मिक हैं या ऐसा होना साधना–जगत् के नियम हैं?"

मेरा प्रश्न समाप्त हुआ और तभी आनन्द भाई आ गये। मां ने कहा – "इस वक्त तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दूँगी। किसी और समय पूछ लेना।"

धर्मशाले के बाहर बरामदे पर आकर मां बैठ गयीं। तरह तरह की बातें होती रहीं। ठीक इसी समय श्रीयुक्त शची बाबू बाबा भोलानाथ द्वारा भेजा गया एक तार लेकर आये और मां से कहा – "मां, भोलानाथजी अस्वस्थ हैं। तार भेजा है। इस वक्त क्या करना चाहिए?"

मां – तुम लोगों ने भोलानाथ के पास जो पत्र भेजा है, उसे न पाकर शायद यह तार भेजा है। उस पत्र का उत्तर आता है या नहीं, यह देख लो।

शची बाबू – परदेश में अस्वस्थ होकर बाबा ने तार भेजा और हम लोग चुप होकर बैठे रहें। क्या हम लोगों को तार नहीं भेजना चाहिए?

मां – परेशान होने की जरूरत नहीं। यह ठीक है कि तुम लोग जो उचित समझो करो।

मां ने इन बातों को इस ढंग से व्यक्त किया जैसे भोलानाथ इनका कोई नहीं है। वृद्ध दादा महाशय और दीदी मां भी भोलानाथ के साथ थे। उनके लिए मां ने उद्वेग प्रकट नहीं किया। मां का निर्लिप्त भाव गौर करने लायक है। लेकिन हम लोग दुर्बल मन के हैं, मां का यह निर्लिप्त भाव हमारी बेचैनी को बढ़ाता है। शची बाबू ने एक जवाबी तार भेजा। तीसरे पहर जवाब आया कि भोलानाथ ठीक हैं।

नवद्वीप से निर्मला का विदा होना

आज तीसरे पहर चार बजे निर्मला मां और हेम भाई चले जायेंगे। कल ही चले जाने की इच्छा हेम भाई प्रकट कर चुके थे। पर मां ने रोक लिया था। अगर कल वे लोग चले जाते तो रात वाली घटना न होती। नवद्वीप में शेष समय मौज से कट जाते। लेकिन मां की इच्छा दूसरी है। मुझे ऐसा लगा जैसे मां ने स्वयं ही हम लोगों में झगड़े की सृष्टि की है और उसी को उपलक्ष्य बनाकर उपदेश दे रही हैं। नवद्वीप आकर इस बार मैंने मां की यही लीला देखी।

आज दोपहर को श्री श्री मां ने निर्मला मां से कहा–"माताजी, आज तुम मुझे एक गीत सुनाओ।"

निर्मला मां ने कहा – "मैं अपनी इच्छा से गीत नहीं गा पाती। मेरा गायन अपने आप हो जाता है। जब गाने की इच्छा होती है तब उसे दबा नहीं पाती। दूसरी ओर अगर कोई गाना सुनना चाहता है तो गा नहीं पाती।"

मां ने कहा – "मुझे एक गीत सुनाना ही पड़ेगा।"

निर्मला मां चुपचाप बैठी रहीं।

लगभग तीन बजे मां ने लोगों से कहा कि सभी लोग तैयार हो जायें। देवालय जाना है, मेरे साथ। निर्मला माँ को बुलवाया गया। कुछ देर बाद देखा गया कि धर्मशाला के प्रांगण में चहलकदमी करती हुई वे गा रही हैं। यह एक अद्भुत दृश्य था। भाव से मुँह आत्मविभोर, दोनों आंखों से आंसू ढलक रहे हैं। दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाकर संगीत की ताल पर गद्गद भाव से गा रही हैं –

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द॥

इस तरह का मधुर संगीत सुनने से पाषाण भी पसीज जाता है। इस गीत को सुनने के बाद ऐसा लगा जैसे कभी गौरांग देव नवद्वीप के द्वार–द्वार इसी तरह गाते हुए नगरवासियों को पागल बनाते रहे। जिन लोगों ने निर्मला माताजी का गीत सुना, उनकी आंखों में प्रेमाश्रु छलक उठे। किसी की जबान नहीं खुली। श्री श्री मां प्रसन्न भाव से निर्मला मां को देखने लगीं।

निर्मला मां आगे गाने लगीं –

जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण
हरे कृष्ण हरे हरे।
ए नाम बल बदने सुनाओ काने।
बिलाओ जीवेर द्वारे–द्वारे।

इसी तरह गीत गाती हुई वे धर्मशाला के बाहर निकलकर गंगा की ओर चल पड़ीं। हम लोग भी उनके पीछे–पीछे चल पड़े। तीसरे पहर की हिमसिक्त हवा में गंगा तट से आती हुई इस दिव्य संगीत की ध्वनि हमारे कानों तक पहुँचने लगी। जाह्नवी के किनारे से क्षीण से क्षीणतर संगीत की ध्वनि आती रही –

ए नाम बल बदने सुनाओ काने।
बिलाओ जीवेर द्वारे–द्वारे।

सभी के चेहरे पर उदासी छा गयी। लगा जैसे त्रिदिव का एक दृश्य चलचित्र की तरह हमारे अश्रुसिक्त आँखों के सामने प्रकट होकर गायब हो गया।

गंगा घाट से निर्मला माँ नाव से स्टेशन जायेंगी और वहीं से बहरमपुर रवाना होंगी। निर्मला माँ के सलज्ज और नम्र स्वभाव से हम लोग मुग्ध हो गये थे। उन्होंने जिस ढंग से विदा ली, उससे हमारे मन में आदर की गहरी रेखा अंकित हो गयी। जब भी निर्मला माँ की याद आती है तभी उनके चरणों में श्रद्धा से मेरा सिर झुक जाता है। शुद्ध वस्तु का आकर्षण–बोध शायद इसी तरह होता है।

निर्मला माँ के जाने के बाद माँ ने हम लोगों से कहा –"इसके (निर्मला माँ के) गीत के साथ तुम लोगों ने साथ नहीं दिया। अगर उसका साथ देते तो अपूर्व बात देख पाते।"

जो होने को नहीं है, वह नहीं हुआ। उसे लेकर दुःख प्रकट करने से कोई लाभ नहीं। लेकिन जो कुछ देखा और जो कुछ सुना, वह मेरे पूर्व जन्म के पुण्य फल के कारण प्राप्त हुआ है।

ललिता सखी और श्री श्री माँ

शाम होने के कुछ पहले माँ सभी लोगों को साथ लेकर धर्मशाला से बाहर निकलीं। धर्मशाला से कुछ दूर "समाजबाड़ी" है। माँ समाजबाड़ी के भीतर गयीं। सदर दरवाजे से भीतर प्रवेश करने पर दाहिनी ओर एक बृहत् नाट मंदिर है। नाट मंदिर में एक पण्डितजी बैठे पाठ करे रहे थे। बाहर कुछ श्रोता बैठे हुए थे। श्री श्री माँ नाट मंदिर के भीतर न जाकर बाहर कुछ देर तक खड़ी रहीं। बाद में नाट मन्दिर से आगे बढ़ गयीं। कुछ दूर जाने पर देखा – एक मोटी महिला ने जो कि पंजाब की रहनेवाली मालूम पड़ती थी, पास आकर माँ को प्रणाम किया। उनकी वेष–भूषा से ऐसा लगा जैसे आप ही इस मन्दिर की मालकिन हैं। उक्त महिला माँ को प्रणाम करने के बाद हम लोगों को एक दालान के बरामदे में ले गयीं और वहाँ बैठने के लिए आसन दिया। मैं उक्त महिला के निकट बैठा। तब उसका चेहरा गौर से देखने का अवसर मिला। अच्छी तरह मुँह देखने तथा गले की आवाज सुनकर समझते देर नहीं लगी कि अबतक जिसे महिला समझ रहा था, वे महिला नहीं, पुरुष हैं। सखी भेष में श्रीकृष्ण की साधना कर रहे हैं। तभी मुझे ललिता सखी की याद आ गयी और समझ गया कि इस वक्त हम लोग ललिता सखी के कुञ्ज में आये हैं।

हम लोग जब ठीक से बैठ गये तब ललिता सखी ने श्री श्री माँ से पूछा – "माँ, मैं तुम्हारे प्रति रूठ गया था। आज सेवेरे न जाने किसने आकर कहा कि तुम नवद्वीप से चली गयी हो। तुम बिना मुझसे मिले चली गयी, यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं तुमसे रूठकर बैठा रहा। इसके बाद तुम्हारे बारे में किसी से कुछ नहीं पूछा।"

माँ – तुम रूठ गये हो जानकर ही तो आयी हूँ।

ललिता सखी – आप काफी दुबली लग रही हैं।

माँ ने हँसकर ललिता सखी को एक गीत गाने को कहा। हम लोगों में से किसीने ललिता सखी से कहा – "माँ, तुम्हारे कीर्तन का नाम हम लोगों ने कलकत्ता में ही सुना था। आज हम लोगों को कीर्तन सुनाना ही पड़ेगा।"

ललिता सखी – माँ, तुम तो अन्तर्यामी हो, तुम तो जानती हो कि मैं गीत नहीं गा पाती।

कुछ देर सभी चुप रहे। माँ ने हम लोगों से कहा – "तुम लोग इनसे कुछ पूछना चाहो तो पूछ लो।"

ललिता सखी–माँ, मैं क्या बता सकता हूँ? मैं तो तुम्हारी पालतू चिड़िया हूँ। जो कुछ आपने सिखाया है वही केवल पढ़ देता हूँ।

माँ – जो लोग पढ़ना नहीं जानते, वे वही सुनना चाहते हैं।

हम लोगों के साथ एक स्वामीजी थे। आप माँ के भक्त हैं। विन्ध्याचल में आपका माँ से प्रथम परिचय हुआ और उसके बाद से आप माँ के भक्त बन गये। देहरादून भी आप माँ से मुलाकात करने गये थे। सुना कि आप विलायत गये थे।

स्वामीजी ने ललिता सखी से कहा – "हम लोगों की स्थिति देखते हुए आप उपदेश दें।"

मैंने सोचा कि प्रश्न ठीक किया गया है। एक ढेले में दो शिकार हो जायेंगे। उपदेश भी सुनने में आयेगा और हम लोगों की आन्तरिक स्थिति क्या है, यह जान लेने की शक्ति इनमें है या नहीं, यह भी ज्ञात हो जायगा। लेकिन ललिता सखी इस चक्कर में नहीं फँसे। अत्यन्त मृदु स्वर में उन्होंने कहा–"यह हृदय यन्त्र जबतक कोई नहीं बजाता तबतक नहीं बजता। अच्छे हाथ से यह यन्त्र अच्छी राग–रागिनी बजाता है।"

बात जम नहीं रही है, देखकर प्राणकुमार बाबूने कहा – "जीव का कौन सा उपाय है। कर्त्तव्य क्या है?"

ललिता सखी – जीव का कर्त्तव्य नहीं है। जैसे बच्चों का कर्त्तव्य है – पढ़ना–लिखना, पति का कर्त्तव्य है – पत्नी का भरणपोषण करना आदि भिन्न–भिन्न लोगों के लिए भिन्न–भिन्न कर्त्तव्य है। अवस्थानुसार कर्त्तव्य विभिन्न होने पर भी लोगों का एक साधारण कर्त्तव्य है वह है – आत्मचिन्ता, अर्थात् मैं कौन हूँ, कहाँ से आया? मेरा स्वरूप क्या है? इसी प्रकार की खोज करते हुए आत्मा को प्राप्त करने की चेष्टा करना चाहिए।

प्राणकुमार बाबू – कर्त्तव्यज्ञान होने पर सब होगा? कर्त्तव्य बुद्धि में जिसे ईप्सित समझूँगा, उसे प्राप्त करने में बाधा–विघ्न नहीं आयेगी?

ललिता सखी – बाधा–विघ्न तो आयेगी, क्योंकि हमारे सभी इन्द्रियगण बहिर्मुखी हैं। ये इन्द्रियाँ ही पग–पग पर बाधा उपस्थित करती हैं। जबतक ये अन्तर्मुखी नहीं होतीं तबतक बाधा देती रहेंगी। लेकिन हमारा प्रयत्न आन्तरिक हो तो इस दिशा में सहायता मिलती है। भगवान् ही हमारी सहायता करते हैं – अन्तर्यामी रूप में तथा गुरुरूप में। लेकिन हम परिश्रम करने को तैयार नहीं रहते। हम पहले मजदूरी चाहते हैं। लेकिन मार्ग तो विपरीत है। भगवान् ने कहा है –

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धि प्रसादजम्॥

हम कष्ट करने को राजी नहीं हैं और न कष्ट सहने की हममें शक्ति है। जब हमारी हालत यह है तब एक उपाय (माँ को दिखाते हुए) है, इस माँ रूपी जहाज में अपनी छोटी नाव बाँधकर निश्चित हो जाओ। कृपा की आशा में बैठे रहो। इससे अधिक क्या कहूँ? इस यन्त्र को माँ ने जितना बजाया, वही बजा। मुझे कुछ कहना नहीं है।

माँ – (ललिता सखी से) यह यंत्र अच्छा है, इसलिए बजता बढ़िया है (सभी हँस पड़े)।

ललिता सखी ने आगे कहा – हम लोग अपने को भगवान् के हाथ का खिलौना कहते हैं, लेकिन यह बात ठीक नहीं है। लकड़ी के खिलौने की कोई इच्छा नहीं होती। उसे लेकर जो मन में आये, वही किया जा सकता है, परन्तु हम लकड़ी के खिलौने की तरह अपने को समर्पण नहीं कर पाते। हम लोगों को वासना का खिलौना कहा जा सकता है।

धीरे–धीरे जनता की भीड़ बढ़ने लगी। हम लोगों के लिए आँगन में बैठने की व्यवस्था की गयी। बरामदे से उठकर हम लोग आँगन में जाकर बैठे। लगभग सौ से अधिक व्यक्तियों ने हमें चारों ओर से घेर लिया। इस बार हम ललिता सखी से जरा दूर हो गये। लेकिन उनकी बातें मजे में सुनाई देती रहीं।

पूर्वोक्त स्वामीजी ने ललिता सखी से गीता के 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' श्लोक का अर्थ कहने के लिए कहा। ललिता सखी ने अत्यन्त सरल भाषा में उस श्लोक का अर्थ समझाया। उन्होंने कोई नयी बात नहीं कही, पर जो कुछ कहा, वह सुनने में अच्छा लगा।

उक्त श्लोक के अर्थ को बताते हुए उन्होंने कहा – "निष्काम भाव से देवज्ञान में जो कुछ पकड़ रखा जा सकता है, उससे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। कुछ माँग कर सब नष्ट नहीं करना चाहिए। कामना–वासना आने पर सब गड़बड़ हो जाता है। स्वामी (पति) को देवता समझ कर पूजा करने पर परम अभीष्ट की प्राप्ति की जा सकती है। गृहस्थ इस रूप में धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में एक कहानी है, उसे बता रहा हूँ।" एक सती साध्वी का पति कुष्ठ रोग से पीड़ित था। चूँकि पति को कुष्ठ रोग हो गया था, इसलिए कहीं एक जगह उसे रखकर उसकी पत्नी कहीं जा नहीं पाती थी। उसे डर लगा रहता था कि पशु–पक्षी आक्रमण न कर बैठें। पति को एक झाबा टोकरी में रखकर उसे सिर पर ले वह इधर–उधर जाती थी।

एक दिन उसका पति परमासुन्दरी वेश्या को देखकर मुग्ध हो उठा। रोग के कारण उसकी वासना की पूर्ति नहीं हो सकती थी, फिर भी उस वरांगना को पाने का लोभ उसे हुआ। लेकिन उसे पाने का कोई उपाय न देखकर वह मन–ही–मन दुखित रहने लगा। पत्नी अपने पति को उदास देखकर बार–बार उसके दुःख को जानने का प्रयत्न करने लगी। पति की वासना की पूर्ति करने के लिए वह वेश्या के घर दासी का कार्य करने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। वेश्या ने अपनी नयी दासी के कार्यों से प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार देने के लिए उसकी इच्छा के सम्बन्ध में पूछा। सती नारी ने तब अपने पति की वासना का उल्लेख किया।

उसकी इच्छा को सुनकर वेश्या ने कहा – 'मैं पैसे के लिए इस शरीर के द्वारा अनेक लोगों की सेवा कर चुकी हूँ। आज अगर तुम्हारी जैसी सती की वासना पूर्ण कर सकी तो अपने को धन्य समझूँगी। तुम अपने पति को मेरे पास ले आओ।'

यह सुनकर सती सन्तुष्ट होकर अपने पति को वेश्या के घर ले आने के लिए गयी। ठीक इसी समय वैकुंठ में नारायण ने लक्ष्मी से कहा – 'मुझे अभी तुरंत मर्त्यलोक में जाना है। उसका कारण यह है कि एक सती जिस रूप में पति की सेवा करने जा रही है, उसे देखने के लिए मुझे सशरीर वहाँ उपस्थित रहना पड़ेगा।'

लक्ष्मी ने कहा – 'तुम अकेले क्यों जाओगे? मुझे भी ले चलो। मैं भी वहाँ मौजूद रहकर सती को पूर्ण सम्मान प्रदान करूँगी।'

नारायण के राजी होने पर दोनों ही वेश्या के घर आये। इधर देवाधिदेव महादेव भी कैलास से चलकर वेश्यालय में आने को तैयार हुए। इसका कारण जानने पर पार्वती ने महादेव से कहा – मेरा एक नाम सती है। अगर मैं सती को सम्मान नहीं दूँगी तो कौन देगा?'

फलतः उमापति भी उमा को साथ लेकर रवाना हुए। इधर ब्रह्मा और ब्रह्माणी भी उक्त वेश्या के घर चले आये। जिस वेश्या का घर नरक के बराबर था, आज वही सती की कृपा से स्वर्ग बन गया। कहने का मतलब निष्काम रूप से पति सेवा करके सती ने न केवल स्वयं ही नारायण आदि देवताओं का दर्शन किया, ऐसी बात नहीं है; बल्कि उसकी महिमा के कारण उसके पति और वेश्या का भी उद्धार हो गया।''

इसी प्रकार गपशप में शाम हो गयी। श्री श्री माँ ने साथ आई महिलाओं से कीर्तन करने को कहा। यतीश बाबू की बड़ी लड़की ने कीर्तन आरम्भ किया –

''श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द।''

अन्य महिलाएँ साथ देने लगीं। काफी लोग खड़े होकर कीर्तन सुन रहे थे। भावावेश में आकर विमला माँ रोने लगीं। वे रोती हुई ललिता सखी से बोलीं–''माताजी, मुझे भक्ति दो, भक्ति दो।''

इस क्रन्दन को देखकर ललिता सखी के हृदय का आवेग बढ़ गया। उसे दमन करने के लिए वे बारंबार 'जय गुरु–जय गुरु' कहने लगीं। माँ को दिखाते हुए उन्होंने विमला माँ से कहा – जिनका अवलम्बन आपने किया है, वे आपको अपने पास बुला लेंगे। आगे कुछ करने की जरूरत नहीं।

विमला माँ आँसुओं की बरसात करती हुई माँ से कहने लगीं – 'माँ, तुम मुझे अपने पास बुला लो। मुझे बुला लो।'

इस क्रन्दन को देखकर सभी के हृदय व्याकुल हो उठे। लोगों की आँखें छलछला आयीं। लेकिन श्री श्री माँ शान्त और मुस्कुराती रहीं। संसार का कोई भी हास्य या रोदन उनके हिमाद्रि सदृश शान्त भाव को आलोड़ित नहीं कर पाता। वात्या विक्षुब्ध वारिधि के बीच

आलोक स्तम्भ की तरह माँ की स्निग्ध दृष्टि मानों सभी के ऊपर शुभाशीष का वर्षण कर रही थी। ललिता सखी तक विमला माँ के इस क्रन्दन को देखकर कुछ अधिक आश्चर्यान्वित हो गये थे।

बोले – "यह तो निरानन्द का जन्म नहीं है। देख रहा हूँ, आ गया है, आ गया।"

विमला माँ के अन्तर में भगवत् प्रेम के विकास का पूर्वाभास देखकर ही शायद उन्होंने ऐसा कहा। बाद में विमला माँ को सान्त्वना देने के लिए हँसते हुए बोले – "भय नहीं है। चिन्ता का कोई कारण नहीं है। इस आनन्दमयी का स्वभाव है कि आप रह–रहकर पीछे से खींचती हैं, आगे बढ़ने नहीं देतीं।"

अब हम चलने को तैयार हुए। माँ और विमला माँ को आगे करके हम लोग टहलते हुए धर्मशाला वापस लौटे। आज का दिन एक प्रकार के दिव्य भाव में व्यतीत हुआ। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि नवद्वीप में जो महाप्रभु का जन्मस्थान है, आकर मेरा जीवन धन्य हो गया। कृतज्ञता से मन भर उठा।

धर्मशाला में आकर हम लोग माँ को घेरकर बैठ गये। इधर–उधर की बातें होने लगीं।

माँ ने मुझसे पूछा – "गंगा से वापसी से समय तुमने कोई प्रश्न पूछा था?"

मैंने कहा – "माँ, जब किसी समय में भगवत् भाव विकसित होने लगता है तब उस विकास मार्ग में जितने विघ्न आते हैं, वे सब क्या साधना–जगत् के साधारण नियम से आते हैं या उसे व्यक्तिविशेष का दुर्भाग्य समझा जाय? उदाहरण के लिए निर्मला माँ में कितने सुन्दर भाव प्रकट हुए हैं, पर उनके विकास के मार्ग में पग–पग बाधाएँ आती जा रही हैं। तुम्हारे बारे में भी ऐसा ही हुआ था। तुम्हें बाबा भोलानाथ की ओर से बाधाएँ प्राप्त हुई थीं। इससे यह सन्देह होता है कि इस तरह की बाधाएँ आना इस मार्ग के नियम हैं।"

माँ – निर्मला माँ जिस प्रकार की बाधाएँ पा रही हैं, मेरे सम्बन्ध में भोलानाथ ने इस तरह की कोई बाधा नहीं डाली थी। पर इन विषयों की आलोचना करते समय इस शरीर (अर्थात् माँ) की चर्चा छोड़ दो।

इतना कहने के बाद माँ प्रश्न के बारे में बताने लगीं, लेकिन दो–चार बातें कहने के बाद कहने लगीं – "बात की कड़ी टूटती जा रही है। इस विषय की चर्चा फिलहाल छोड़ दो। रात जब गहरी हो जाय तब पूछना।"

निर्मला माँ के बारे में चर्चा करते हुए मैं कुछ तथ्य अपने अनजाने श्री श्री माँ की पूर्वावस्था की चर्चा कर बैठा। तुरत माँ ने आपत्ति की। इसके पहले भी देखा है कि जब कभी माँ की तुलना करते हुए कोई बात कहने गया तो माँ तुरत बाधा डालती हुई कहती हैं – "इन सब चर्चा में इस शरीर की बातें मत कहा करो।"

वास्तव में माँ के जीवन में जन्मावधि एक विशेषत्व है जो कि आज तक किसी भी महापुरुष के जीवन में देखने में नहीं आया है। जन्मावधि माँ की कोई शिक्षा–दीक्षा नहीं हुई है, साधना नहीं है, जबकि आध्यात्मिक जगत् की ऐसी कोई बात नहीं है जिसे माँ न जानती हों। आसन–मुद्रा, हठयोग, राजयोग आदि प्रत्येक प्रक्रिया माँ से छिपी नहीं है।

एक दिन माँ ने मुझसे कहा था–"ऐसा कोई आसन या मुद्रा नहीं है जिसे मैं नहीं जानती। कोई जब हठयोग का कोई भी आसन दिखाता है तभी मुझे लगता है कि वह मेरे शरीर के भीतर हो गया है।"

साधना की किसी अवस्था की चर्चा करने पर मां तुरंत कहती हैं – इस शरीर से न जाने कितनी अवस्थाएँ गुजर चुकी हैं, इसीलिए मैं समझ लेती हूँ कि यह कौन सी अवस्था (स्थिति) की बात है।"

जबकि यह सब अवस्था या यौगिक क्रियाएँ माँ की चेष्टालब्ध नहीं हैं। मानव शरीर में जिस प्रकार बाल्य, यौवन आदि अवस्थाएँ प्राकृतिक नियमानुसार स्वतः स्फुरित होती हैं, उसमें व्यक्तिगत कोई स्वातन्त्र्य नहीं रहता, माँ के जीवन की अभिव्यक्तियाँ भी उसी प्रकार की हैं। शायद इसीलिए माँ के जीवन का इतिवृत्त साधना-जगत् में एक विराट् विघटन है। इसी वजह से शायद माँ दूसरों के साथ अपनी तुलना करने को मना करती हैं? किंवा यही क्या माँ के अवतारत्व का इंगित है? समधर्मी वस्तुओं की तुलना होती है। जिस जगह प्रकृतिगत वैषम्य रहता है, वहाँ किस रूप में हो सकती है?

भगवान् पर विश्वास और भक्ति कैसे होती है?

हमारी चर्चा में बाधा आ जाने से एक सज्जन ने माँ से प्रश्न पूछा-"माँ, भगवान् के प्रति सहज ही भक्ति विश्वास कैसे होता है?"

माँ - भगवान् के प्रति भक्ति-विश्वास प्राप्त करने के लिए कर्म से एक लक्ष्य होना आवश्यक है। गुरु ने जो मार्ग दिखाया है, उसी मार्ग पर निर्विचार से चलते रहना चाहिए। गुरु द्वारा निर्धारित पथ पर चलते-चलते जितनी सहायता की आवश्यकता होती है, वह अपने आप प्राप्त हो जाती है। मन स्थिर नहीं हुआ समझकर खेद नहीं प्रकट करना चाहिए। मन अपना आहार न पाकर चंचल हो उठता है। मन को आहार दो, उसे पुष्ट बनाओ तब मन अपने आप शान्त हो जायगा। पूर्णानन्द ही मन का आहार है। मन उसी आनन्द की खोज में रहता है। जागतिक विभिन्न विषयों में मन आनन्द की तलाश में चक्कर काट रहा है, पर किसी प्रकार से पूर्णानन्द प्राप्त नहीं कर पा रहा है, इसलिए वह चंचल है। यह पूर्णानन्द हमारे स्वभाव में है और उसके आस्वाद से हम परिचित हैं, इसीलिए जागतिक खण्ड-खण्ड आनन्द उसे तृप्त नहीं कर पाता। मन को मैं बच्चा कहती हूँ। शिशु जैसे माँ को खोजता रहता है, माँ को बिना पाये शान्त नहीं होता, उसी प्रकार मन भी

माँ की तलाश में चक्कर काट रहा है। पूर्णानन्द ही उसकी माँ है। दूसरी ओर मन को मैं सबसे बड़ा साधक कहती हूँ। जिस प्रकार साधक अपना अभीष्ट बिना प्राप्त किये, तृप्त नहीं होता, अनवरत केवल अभीष्ट प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता रहता है, मन भी उसी प्रकार पूर्णानन्द प्राप्त करने के लिये व्याकुल रहता है। सद्भाव उसे पुष्ट करता है। अभ्यास के द्वारा मन शान्त होता है। घर–गृहस्थी के जो कार्य करते हो, करते रहो। उसे मैं बेकार नहीं कहती। लेकिन सर्वदा भगवान् के प्रति लक्ष्य रखना। इस लक्ष्य के रहने पर एक दिन परमार्थ प्राप्त कर लोगे। जैसे वृक्ष और छाया में सम्बन्ध है, उसी प्रकार 'सोऽहं' और 'अहं' का आपस में सम्बन्ध है। हमारा 'अहं' भी उसी 'सोऽहं' की छाया है। वृक्ष की छाया पकड़ कर जिस प्रकार उसकी जड़ तक पहुँचा जाता है, उसी प्रकार भगवान् के प्रति लक्ष्य स्थिर रखने पर जागतिक विषयों के बीच भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है।

काफी देर तक माँ इसी मर्म का उपदेश देती रहीं।

आध्यात्मिक विकास मार्ग की बाधाएँ

रात गहरी हो जाने के बाद माँ ने मेरे पुराने प्रश्न का उत्थापन किया। मेरा प्रश्न था कि आध्यात्मिक विकास मार्ग में बाधाएँ क्यों आती हैं।

माँ कहने लगीं –"देखो, जब आग जलती है तब जितना उसे जलना है, वह जलेगी ही। उसे कोई रोक नहीं सकता। जब भगवत्–भाव प्रकट होकर साधक को कभी आनन्द और कभी क्लेश देता है तब किसी में इतना साहस नहीं है कि उसे रोक सके। कीर्तन सुनने पर साधक को यन्त्रणा होती है देखकर अधिकतर साधक को कीर्तन से दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि साधक में जब भगवत्–भाव प्रकट होने का समय आता है तब एक अचिंतनीय योगायोग से, उसके निकट कीर्तन या धर्म–

सम्बन्धी गायन आरम्भ हो जाता है और तब उस समय वह भाव के आवेग में डूबता–उतरता है। इन बातों को रोकना मनुष्य के साध्य की बात नहीं है। यहाँ यह पूछ सकते हो कि साधक को ऐसी हालत में कीर्तन से दूर क्यों रखने का प्रयत्न किया जाता है? कारण उससे उसकी आध्यात्मिक उन्नति में सहायक न होकर केवल अन्तराय की सृष्टि होती है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि साधक जिसे इस प्रकार अपने आत्मीय–स्वजनों से बाधाएँ प्राप्त होती हैं, वह उसके पूर्व जन्म के संस्कार और कर्मफलों से प्राप्त होती हैं। साधक के संस्कार के अनुसार उसके आत्मीय–मित्र आदि आकर एकत्रित होते हैं। इनमें से कोई उसे बाधा तो कोई सहायता देता है। जैसे निर्मला माँ के बारे में तुम लोगों ने देखा कि अवनी पिताजी निर्मला माँ के भावों को जगाने के लिए कीर्तन करने लगे और पिताजी (अर्थात् आनन्द भाई) वह भाव न जागे, इस दिशा में सजग रहे। पिताजी माँ को बहुत चाहते हैं, इसीलिए उसके सामने कीर्तन करने देना नहीं चाहते। कारण कीर्तन होने पर माँ की यंत्रणा बढ़ जाती है। दूसरी ओर अवनी पिताजी माँ से श्रद्धा करते हैं, इसलिए कीर्तन करके माँ में भाव जागृत करने के लिए उत्सुक हो गये। यह सब पूर्व जन्म के संस्कारों से होते हैं।''

अब यह पूछ सकते हो कि कीर्तन सुनने पर माँ में इतनी यंत्रणा क्यों होती है? इसके उत्तर में कहना है कि यह तो हँसना–रोना, सुख–दुःख यह सब वासना से होता है। भगवान् का नाम सुनना अच्छा लगता है, यह भी एक प्रकार की वासना है, कल माँ (निर्मला माँ) को कहते नहीं सुना – ''इतना मधुर नाम सुनकर मैं रह नहीं पाती।'' नाम सुनने पर यंत्रणा होती है और दूसरी ओर बगैर सुने रहा नहीं जाता। जहाँ कामना–वासना है, वहीं सुख–दुःख है। इसी सुख–दुःख के भीतर समता प्राप्त करना चाहिए। जब तक समता नहीं आयेगी तब तक इसी प्रकार की ज्वाला–यंत्रणा होगी। इनकी जरूरत है। साधना के मार्ग में जो लोग अग्रसर होते हैं, उन लोगों को यह सब भोगना पड़ता है।

सृष्टि तत्त्व—ध्यान

मैं – माँ, प्रथम संस्कार कैसे आता है?

माँ – यह सब प्रश्न सृष्टि तत्त्व से सम्बन्धित हैं। तुम लोगों के भीतर सृष्टि, स्थिति, लय के संस्कार हैं, इसीलिए यह सब प्रश्न पैदा होते हैं। तुम लोग प्रत्येक कार्य कोई न कोई उद्देश्य लेकर करते हो, इसीलिए भगवान् पर अपना उद्देश्य थोपते हो । परमतत्त्व में यह कुछ नहीं है । इसी वजह से वेदान्तिक इन सबको माया कहते हैं ।

त्रिगुणा बाबू–'माँ, क्या ध्यान बढ़ाना उचित है ?'

माँ–हाँ, इससे एकाग्रता बढ़ती है और ध्यान लेकर रहते रहते ध्यान चला जाता है । बाद में जो शेष रहता है, उसे भाषा के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता ।

मैं–ध्यान से अगर एकाग्रता बढ़ती है तो जागतिक विषयों को लेकर ध्यान किया जा सकता है ?

माँ–जागतिक विषयों को लेकर ध्यान करने पर उससे एकाग्रता अवश्य आती है, पर इस तरह के ध्यान बन्धन के कारण होते हैं। सत् वस्तु के ध्यान से बन्धन खण्डित होता है ।

रात के साढ़े तीन बज जाने के कारण मैं सोने चला गया ।

३० दिसम्बर, सन् १९३६ ई., बुधवार । आज सवेरे माँ के पास आकर देखा–उनका कमरा बन्द है । सुना कि कुछ लोग माँ से गोपनीय बातें करने के लिए घर के भीतर हैं । बाहर भी बहुत से लोग माँ के दर्शन करने के लिए खड़े हैं । आज कुछ नये चेहरे देखने में आये । इनमें कुछ मनीपुरी बालक हैं । काफी देर हो जाने पर मैंने खिड़की से झाँककर देखा–भीतर माँ अखण्डानन्दजी तथा खुकुनी दीदी से बातें कर रही हैं । मुझे लगा कि माँ सम्भवतः विन्ध्याचल के यज्ञकुण्ड के बाबत कुछ कह रही हैं । सुना था कि विन्ध्याचल

के यज्ञकुण्ड में कुछ दोष हो गये हैं । इस बारे में विचार विमर्श करने के लिए स्वामीजी विन्ध्याचल से आये हैं । माँ का दरवाजा देर से खुलेगा समझकर मैं कुछ देर के लिए अन्यत्र चला गया ।

गोपनीय बातें समाप्त होने के बाद माँ के पास जाकर बैठा । माँ भोलानाथजी की बीमारी के बारे में बता रही थीं । ४–५ महीना पहले भोलानाथजी इलाज के लिए कलकत्ता आये थे । यतीश बाबू के यहाँ डा. डेनाम ह्वाइट ने आकर भोलानाथ की जांच की थी । माँ को भी वहीं लाया गया था । यतीश बाबू के ठाकुर घर में माँ प्रतीक्षा कर रही थीं । डेनाम ह्वाइट माँ को देखकर खूब प्रसन्न हुए थे । उन्होंने कहा था–"आज तक इस तरह हँसते मैंने किसी को नहीं देखा था।"

माँ सभी को प्रसाद वितरण कर रही थीं । डेनाम ह्वाइट भी माँ के सामने मुँह खोलकर खड़े हो गये थे । माँ ने उनके मुँह में सन्देश डाला था ।

पुरुषकार और कृपा

कुछ देर के बाद नीरद बाबू ने प्रश्न किया–"माँ, साधना में चेष्टा का साध्य कितना और कृपा कितनी होती है ?"

माँ – जबतक तुम लोगों में शक्ति है तबतक तुम लोगों को कर्म करना ही पड़ेगा । दुनिया के दस विषयों को लेकर जिस तरह कर्म कर रहे हो उसी प्रकार धर्म के बारे में कर्म करना । पर यह स्मरण रखना कि धर्म के सम्बन्ध में जितने कार्य हो रहे हैं, वह सब अज्ञान पूर्ण है और यह कार्य भी वही करवा ले रहे हैं । लेकिन इस तरह कर्म करते–करते लोग अपनी शक्ति की असारता समझ पायेंगे । अपना करणीय कुछ भी नहीं है, यह ज्ञान होते ही आत्मसमर्पण होता है और तब भगवान् के प्रति निर्भरता आती है । उस समय भी कर्म का अन्त नहीं होता । उस समय ज्ञान का कर्म चलता रहता है । तब समझ में

आता है कि वे ही सब करा रहे हैं । इस अवस्था में भी अहंज्ञान रहता है इसीलिए कर्म कहा जा रहा है । इस अवस्था में जो कर्म होता है, वही पुरुषकार है । यही परम पुरुष का कर्म है ।

मैं—माँ, तुम साधना कहाँ समाप्त करोगी ? ज्ञान लाभ हुआ, आत्म समर्पण हो गया, फिर भी कर्म समाप्त नहीं हुआ । साधना या कर्म का अन्त कहाँ है ?

माँ—युगल मिलन में ।

इस उत्तर पर बहुत से लोग हँस पड़े ।

मैं—माँ, मैं पुरुषकार के बारे में हुई बातों को ठीक से समझ नहीं सका । हम लोग जब भगवान् को प्राप्त करने के लिए आप्राण प्रयत्न करते हैं क्या वही पुरुषकार है या जब हम लोग प्रयत्न करते—करते आत्मशक्ति के प्रति विश्वास खोकर, भगवत् कृपा की आशा में कर्म त्याग करें, वही पुरुषकार है ? स्रोत के विपरीत उजान की ओर बढ़ना ही क्या पुरुषकार है ? या स्रोत में अपने को छोड़ देना पुरुषकार है ?

माँ—जब स्रोत में अपने आपको छोड़ देते हो तभी वास्तविक पुरुषकार की अवस्था होती है । उस समय जो कर्म होते हैं वे ही परम पुरुष के कर्म हैं, ज्ञान के कर्म हैं । इसके पूर्व जितने कर्म होते हैं, वे सब अज्ञानता के कर्म हैं ।

मैं—साधना कब समाप्त होगी ?

माँ—युगल—मिलन में वेदान्त[1] होने पर ।

इसी समय खुकुनी दीदी ने माँ से कहा—'माँ, कुछ देर पहले कृष्णलीला के बारे में बताती रहीं । माँ ने कहा था कि इस कृष्णलीला

---

१. यह शब्द बाद में माँ की बातों में व्याख्यात हुआ है ।

से मतलब है कि कभी ये सब बद्ध थे, बाद में मुक्त हुए हैं । इसके के बारे में जीवन्मुक्त पुरुष सुनने के अधिकारी नहीं हैं । कारण 'मुक्त' से ऊपर जो लोग हैं केवल वे ही लोग कृष्णलीला सुनने और बूझने के अधिकारी हैं । वेदान्त समाप्त होने पर कृष्णलीला आरम्भ होती है। इसे भाषा के माध्यम से प्रगट नहीं किया जा सकता । इस लीला में एक मात्र पुरुष होते हैं । वे ही राधा, वे ही गोपी और वे ही चरवाहा। एक ही कृष्ण नाना प्रकार से अपने को संभोग कर रहे हैं ''

मुझे ऐसा लगा कि कृष्णलीला के बारे में समझना मेरे लिए विडम्बना मात्र है, इसीलिए इस बारे में माँ से कोई प्रश्न नहीं किया। माँ से मैंने पूछा–''माँ पुरुषकार तो समझ गया अब कृपा क्या है, यह बताओ ।''

माँ–कृपा है–पूर्वाजन्मार्जित कर्मफल । पूर्व जन्म में जितने सत्कार्य कर चुके हो वही इस जन्म में कृपा रूप में तुम्हारे पास आ रहे हैं।

मैं–अगर वे सब मेरे कर्मफल हैं तब तो वह मेरा प्राप्यधन है मेरी मजदूरी है ।

माँ–वह तुम्हारा प्राप्य अवश्य है, पर तुम इसे नहीं जानते इसीलिए उसे कृपा समझते हो । इसके अलावा साधक साधना करते–करते एक ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेता है जब सब कुछ उसके निकट कृपा ज्ञात होता है। जगत् में जो कुछ हो रहा है, वह सब भगवान् की कृपा से हो रहा है । उसमें साध्य–साधन कुछ नहीं है । यही कृपा की स्थिति है । इसके बाद जो स्थिति आती है, उसमें कृपा नहीं है । उस वक्त एक तत्व ही रहता है । कौन किस पर कृपा करेगा ?

माँ ने जिस ढंग से पुरुषकार की व्याख्या की उससे यह लगा कि वह एक ही स्थिति की दो दिशाएँ हैं । एक ओर से देखने पर जो पुरुषकार लगता है, दूसरी ओर से वही कृपा मालूम पड़ती है।

भगवान् प्राप्ति की आशा में ध्यान–धारणा इत्यादि कर्म जिसे हम पुरुषकार कहते हैं, उन सबको माँ अज्ञान कर्म कहती हैं । लेकिन इस तरह का कार्य करते–करते साधक जब अपनी क्षुद्रता उपलब्धि करके विराट के निकट शरणापन्न होते हैं तभी प्रकृत पुरुषकार आरम्भ होता है अर्थात् उस समय साधक देखता है कि एक परमपुरुष की इच्छा से संसार के सभी कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। यही दूसरी ओर कृपा की अवस्था है । कारण तब साधक समझ लेता है कि विश्वपति की कृपा के अलावा जगत में कुछ नहीं हो सकता । इस स्थिति में अहंज्ञान रहता है, इसलिए शायद इसे कृपा की स्थिति कहा जाता है । अहंज्ञान का जब लोप हो जाता है और तब जो रह जाता है वही अव्यक्त और परमतत्व है ।

आज कई दिनों से विमला माँ आद्यापीठ वापस जाने के लिए व्यग्र हो गयी हैं । माँ के भोग के समय विमला माँ ने बड़े आग्रह के साथ माँ से विदा देने की प्रार्थना करने लगीं । माँ बराबर बाधा देती गयीं । विमला रोने के स्वर में बोली–'माँ, तुम यह समझ नहीं रही हो, मुझे यहाँ रहने में काफी कष्ट हो रहा है । मेरी छाती फटी जा रही है । अब मुझसे सहा नहीं जो रहा है ।'

माँ ने कहा–''आज रुक जाओ । कल अगर जाना चाहोगी तो तुम्हें बाधा नहीं दूँगी ।''

विमला माँ बेमन से राजी हुई । उनकी आकृति पर दर्द की लकीरें बनी रहीं । तीसरे पहर माँ विमला माँ आदि को लेकर गंगा में घूमने गयीं । श्रीयुक्त विनय भूषण सेन महाशय को भी माँ ने सपत्नीक नाव पर आने को कहा है । आज वे लोग कलकत्ता चले जायेंगे । नाव पर माँ ने उन लोगों को कुछ उपदेश दिये ।

अहेतु कृपा

शाम के बाद माँ कमरे में आकर बैठ गयीं तब हम लोग उनके पद प्रान्त में आकर बैठे । आज माँ की आरती हुई । अवनी बाबू ने आरती की । सभी लोग आरती गायन करते रहे । आरती समाप्त होने पर अवनी बाबू, स्वामी शंकरानन्द, आनन्द भाई आदि ने आद्यास्तोत्र पाठ किया । इसके बाद माँ को जलपान कराने के लिए ले जाया गया । हम लोग कमरे में बैठे रहे । स्वामी अखण्डानन्दजी से बातचीत करने लगा । सबेरे कृपा और पुरुषकार के बारे में जो बातें हुई थीं, उसकी चर्चा चलने लगी ।

इसी समय ज्ञान ब्रह्मचारी ने कहा–"माँ ने कहा था कि सबेरे जिस कृपा की चर्चा हुई थी, वह समाप्त नहीं हुई है । उस समय अहेतुकी कृपा के बारे में कुछ नहीं कहा गया था । अहेतुकी कृपा भी है । तुम लोग मुझे याद दिला देना, उस बारे में कुछ कहूँगी ।"

माँ कृपा के बारे में क्या कहेंगी, यह सुनने के लिए चुपचाप बैठा रहा ।

श्री श्री माँ का भोग जब समाप्त हो गया तब वे कमरे में आकर बैठ गयीं । खुकुनी दीदी माँ के समीप बैठीं । विमला माँ दूसरे कमरे में सोने चली गयीं । माँ जब अपने आसन पर स्थिर होकर बैठीं तब मैंने माँ से पूछा–तुमने शायद यह कहा था कि अहेतुकी कृपा नामक एक प्रकार की कृपा है ?

माँ–हाँ ।

माँ–वह क्या है ?

माँ–बिना कारणवाली कृपा ।

मैं–इस प्रकार की कृपा रहने पर तो भगवान् को ख्याली कहा जायगा ।

माँ–भगवान् का भी ख्याल है । वे सभी ओर से पूर्ण है । फिर उनमें ख्याल क्यों नहीं रहेगा ?

मैं–अच्छा माँ, तुम जिस अहेतुकी कृपा की चर्चा कर रही हो, वह किसकी ओर से अहेतुकी है ?

माँ–भगवान् की ओर से ।

इतना कहने के बाद माँ ने इस तरह मुँह बनाया जैसे इस बारे में ओर कोई चर्चा नहीं करना चाहती, फलतः चुप हो जाना पड़ा । दूसरी बाते होने लगीं ।

कुछ देर बाद माँ ने धीरे–धीरे कीर्तन करने का आदेश दिया। लेकिन कीर्तन का स्वर क्रमशः धीरे–धीरे से तीव्र स्वर तक पहुँचने लगा। यह देखकर माँ ने बन्द कर देने को कहा ।

माँ ने कहा–'इतने जोर से कीर्तन करने पर माताजी (अर्थात् विमला माँ) को कष्ट होगा और वह इस कमरे में चली आयेंगी ।'

हमलोग जिस कमरे में बातचीत कर रहे थे, उसी के बगल में विमला माँ सो रही थीं । हमारे कमरे के पूर्ववाली दीवार में एक बड़ा छेद था । वह इतना बड़ा था कि अगर हम इस कमरे में बैठकर कोई भी बात करते हैं तो बगल के कमरे में स्पष्ट सुनाई देती है । कीर्तन बन्द होने के कुछ देर बाद विमला माँ हमारे कमरे में आयीं। उनकी आकृति पर वेदना के भाव थे । कीर्तन–ध्वनि ने उन्हें बेचैन कर दिया है । उन्होंने यही बताया। आगे उन्होंने कहा कि कीर्तन सुनकर वे इस कमरे में दौड़कर आना चाह रही थीं, पर पता नहीं किसने उनके कमरे के दरवाजे में बाहर से सांकल चढ़ा दिया था । यहाँ उस समय आ न सकने के कारण वेदना से तड़प रही हैं ।

माँ हँसकर बोलीं–''इन लोगों को जोर से कीर्तन करते देख मैंने सोचा कि कोई माताजी के कमरे को बन्द कर दे तो अच्छा हो, वरना माताजी इस कमरे में चली आयेंगी ।''

माँ की इच्छा से कार्य सम्पन्न हो जाता है, इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हो गया । विमला माँ और आनन्द भाई के साथ कुछ देर बातचीत करने के बाद माँ ने इन लोगों को सोने के लिए चले जाने की आज्ञा दी। हम लोग माँ के पास बैठे रहे ।

साधना की प्रधान बात धैर्य की शिक्षा

श्री श्री माँ विमला माँ के भाव का वर्णन करने लगीं–'कीर्तन सुनने पर शरीर विकल उठे, असह्य यन्त्रणा बोध हो, इसे राजयोग मिश्रित हठ योग कहते हैं । नाम कीर्तन या श्रवण से ऐसा होता है। माताजी नवद्वीप से जल्द–से–जल्द चली जाने के लिए व्याकुल हो उठी हैं । यह व्याकुलता भी साधना की स्थिति से है । इसीलिए माताजी जितनी बार व्याकुल होकर आद्यापीठ चली जाना चाहती हैं, उतनी बार मैं बाधा दे रही हूँ । इस प्रकार की बाधा देना आवश्यक है। कारण इससे धैर्य की परीक्षा होती है । मन व्याकुल होकर जिधर जाना चाहता है, उधर जाने देने पर धैर्य की शिक्षा नहीं होती । साधना करते समय धैर्य को पकड़े रहना ही सबसे बड़ी बात है, माताजी को इसी धैर्य की शिक्षा देने के लिए बाधा दे रही हूँ । इसीलिए आज तीसरे पहर नाव पर घूमाने के लिए ले गयी थी । अगर उसे इस तरह घुमाने न ले जाती और सोने देती तो उसकी क्षति होती ।'

आमतौर पर माँ किसी की इच्छा के विरुद्ध कोई बात नहीं करतीं । केवल निर्मला माँ और विमला माँ के सम्बन्ध में व्यतिक्रम होते देखा। अब समझ पाया कि इस व्यतिक्रम के कारण क्या हैं ।

माँ ने आगे कहा–"भाव का आवेग आने पर शरीर में जितनी यन्त्रणाएँ होती हैं, उन सभी को धैर्य के साथ सहन करना ही वास्तव में तपस्या है । चुपचाप कुछ देर तक भाव का वेग सहन करने पर शरीर श्रान्त, क्लान्त और बेबस हो जाता है । इसे तुम लोग समाधि

समझते हो । लेकिन वास्तव में यह समाधि नहीं है । यह एक प्रकार की शारीरिक क्लान्ति है। समाधि तथा दैहिक क्लान्ति की पृथकता को कार्य एवं भाव द्वारा विचार करना चाहिए । अचानक उसे देखकर समझा नहीं जा सकता ।''

श्री श्री माँ की विद्या–शिक्षा और बाल्य–लीलाएँ

''जो लोग पुस्तकें पढ़ते हैं, वे जरूर कुछ पकड़ लेंगे । लेकिन आदमी को देखकर या पुस्तकें पढ़कर मेरी शिक्षा नहीं हुई है । मेरा जन्म जहाँ हुआ है, वहाँ पढ़ाई–लिखाई की कोई चर्चा नहीं होती थी। चारों ओर मुसलमानों के घर । वे लोग पढ़ते–लिखते नहीं थे । इसके अलावा उनके साथ मेरा मेलजोल नहीं था । सभी मुझे प्यार करते और आदर देते थे, पर तुम लोगों की दीदी माँ की मनाही थी, इसलिए स्नान के पूर्व और किसी समय मुसलमानों के घर नहीं जा पाती थी ।''

''तुम लोगों के दादा महाशय ने (नानाजी) बचपन में मुझे बाल्य शिक्षा के नाम पर क–ख और सामान्य संयुक्त अक्षर के ज्ञान की शिक्षा दी थी । एक दिन में क–ख और एक दिन उल्टा क–ख पढ़ती रही। इसके बाद तुम लोगों के दादा महाशय के दूर के रिश्ते से लगनेवाले एक मामा ने मुझे अपने स्कूल के प्राइमरी क्लास में भर्ती कर लिया। उनका एक निजी स्कूल था जहाँ प्राइमरी तक पढ़ाई होती थी । प्रथम पाठ समाप्त करने के पहले ही मुझे निम्न प्राइमरी स्कूल में भर्ती कर दिया गया । इसका कारण यह था कि मैं निम्न प्राइमरी क्लास में पढ़ता हूँ, सुनने पर विवाह के बाजार में मेरी मर्यादा बढ़ जायगी। इसके अलावा मेरे दादा महाशय के स्कूल में छात्राओं की कमी थी। निम्न प्राइमरी क्लास में छात्राओं की संख्या बढ़ाने के लिए शायद दादा महाशय ने इतने आग्रह के साथ मुझे अपने स्कूल में रखा था । उन्होंने विभिन्न स्थानों से निम्न प्राइमरी क्लास के लिए पुस्तकें संग्रह करवाया।

मेरे पास स्लेट नहीं थी । एक छोटे स्लेट पर मैं लिखा करती थी। इस प्रकार मेरी पढ़ाई प्रारम्भ हुई । स्कूल में भर्ती तो जरूर हो गयी, पर रोज स्कूल नहीं जा पाती थी । हमारे मकान से स्कूल काफी दूर था । तुम लोगों की दीदी माँ मुझे अकेली स्कूल जाने नहीं देती थी। जिस दिन किसी के साथ भेज पाती, उसी दिन स्कूल जाती थी । शेष दिन घर पर रह जाती थी । अपने मामा के यहाँ जब कभी चली जाती तब स्कूल जाना बिलकुल बन्द रहता ।''

कहने का मतलब केवल कुछ दिनों तक स्कूल में मेरी पढ़ाई हुई थी। एक दिन जाकर लड़कियों के साथ जो पाठ पढ़ती, कुछ दिनों बाद जाने पर देखती कि पढ़ाई का पाठ काफी आगे बढ़ गया है । उनके बराबर आने के लिए मुझे बीच के अनेक पृष्ठों को पढ़ लेना पड़ेगा, पर मैं पढ़ नहीं पाती थी । मैं पुस्तकों के पृष्ठ पलटकर उनके बराबर आ जाती । लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि पढ़ाई–लिखाई में फिसड्डी रहने पर भी मैं क्लास में हमेशा प्रथम आती । मास्टर साहब पाठ पूछकर मुझे लाजवाब नहीं कर पाते थे । इसका कारण था कि घर पर जब मैं पुस्तक लेकर पढ़ने बैठती तब दो–एक शब्द अचानक मेरी आँखों से टकरा जाते और उनके अर्थ अपने आप मन में आ जाते थे । जैसे पुस्तक लेकर पढ़ते–पढ़ते "हस्ती" शब्द पर नजर पड़ी । उस शब्द के बारे में कुछ देर सोचने के बाद मन में अर्थ आता–हाथी । इसी तरह दो–एक शब्द लक्ष्य करती और उसका अर्थ सोच लेती । पाठ के भीतर और भी कितने अनजाने शब्द रह गये, उस ओर ध्यान नहीं जाता । जब स्कूल में पढ़ने जाती तब मास्टर साहब उन्हीं शब्दों के अर्थ पूछते जिन शब्दों पर मेरी नजर पड़ चुकी थी । फलतः मुझे उत्तर देने में कष्ट नहीं होता । मैं फटाफट बता देती । यह सब देखकर सहयोगी छात्राएँ अवाक् रह जाती । कारण जब वे किसी शब्द का अर्थ पूछतीं तब मैं नहीं बता पाती थी । जब वे पुस्तक पढ़ने को कहतीं तब मैं पढ़ भी नहीं पाती थी।

"एक बार हमारे स्कूल का मुआइना करने के लिए एक इंस्पेक्टर साहब आये । उस दिन अपनी पुस्तक का एक पाठ बार-बार पढ़कर याद कर चुकी थी । इन्स्पेक्टर ने आकर पूछा कि क्या-क्या हम सब पढ़ते हैं। उन्होंने पुस्तक का एक पाठ खोलकर मुझे पढ़ने के लिए दिया। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इसी पाठ को आज मैं बार-बार याद कर रही थी । मैं सरसर पढ़ती चली गयी । मुझे इस तरह कहते देख इन्स्पेक्टर ने सोचा की शायद मुझे सब याद है, इसलिए उन्होनें मुझसे और कोई सवाल नहीं किया । इसी प्रकार मेरी पढ़ाई समाप्त हुई ।"

"पढ़ाई-लिखाई के मामले में पोथीवाली विद्या मुझमें नहीं थी, ठीक उसी प्रकार धार्मिक विषयों के सम्बन्ध में देखकर कुछ सीखा नहीं । घर में पूजा घर था । तुम लोगों की दीदी माँ के आदेश पर ठाकुर घर के काम-काज करती । तुम लोगों की दीदी माँ मुझे "आटेला" "बेदिशा" आदि गालियाँ दिया करती थीं । एक दिन इन्होंने मुझे पत्थर की एक कटोरी धोकर लाने को कहा । साथ ही यह भी कहा-"अगर हो सके तो कटोरी को तोड़कर लाना ।" मैं कटोरी लेकर पोखर के पास गयी । वहाँ वृक्षों के साथ बातें करते-करते कब मेरे हाथ से कटोरी गिरकर टूट गयी, पता नहीं चला । मैं कटोरी के टूटे टुकरों को लेकर घर वापस आयी । तुम लोगों की दीदी माँ ने पूछा-'यह क्या लायी है ।' मैंने कहा-'तुमने तो टूटी कटोरी लाने को कहा था इसीलिए इन टुकड़ों को उठा लायी ।'

"मेरी बात सुनकर नाराज क्या होतीं, उल्टे किसी सूरत से अपनी हँसी रोककर रह गयीं ।"

"एक बार तुम लोगों की दीदी माँ दीक्षा लेने के लिए सोनारगाँव जाने को तैयार हुई । वहीं उनके गुरु का घर था । तुम लोगों के दादा महाशय भी साथ जायेंगे । तुम लोगों की दीदी माँ इस "आटेला"

लड़की को साथ नहीं ले चलेंगी, यह भी कहा । मैं घर पर रह गयी। नाव पर सवार होने के पूर्व तुम लोगों के दादा महाशय एक बार घर आये । मुझे चुपचाप बैठी देखकर मुझसे बोले–'तू हमारे साथ चलेगी ?' इतना कहने के बाद वे मुझे लेकर नाव पर सवार हुए । मार्ग में नाव रोककर रसोई का प्रबन्ध किया गया । भोजन बनाने के बाद एक पक्षी विष्ठा त्यागकर सारा खाना नष्ट कर गया । बाद में सुना कि इस स्थान पर इसी प्रकार अनेक लोगों के भोजन नष्ट हुए हैं । उस स्थान पर जाकर मैंने ऊपर की ओर देखा ।''

खुकुनी दीदी–ऊपर की ओर क्या देखा ?

माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया । बिलकुल गुमसुम रहीं । हम लोग हँसने लगे । माँ अलौकिक बातें जल्द नहीं कहना चाहती । दीदीमाँ, दादा महाशय की कहानी यहीं समाप्त हो गयी ।

श्री श्री माँ और स्वामी पूर्णानन्द

इसके बाद माँ हृषिकेश के पूर्णानन्द स्वामी के बारे में कहानी सुनाने लगीं । माँ ने कहा–मैं जिन दिनों हृषिकेश में थी, उन दिनों पूर्णानन्द ने अपने एक शिष्य को भेजकर एक प्रश्न पूछा । मैं उनके प्रश्न का उत्तर दे सकती हूँ या नहीं, इसकी परीक्षा करना उनका उद्देश्य था ।

''शिष्य ने आकर कहा–मेरे गुरुदेव ने आपसे पूछा है कि स्वप्न में क्या–क्या देखा जाता है ?''

मैंने बताया–'स्वप्न का अर्थ तो निद्रा है । वह अज्ञानता है । अज्ञान अवस्था में बहुत कुछ देखा जाता है । सब बताकर समाप्त नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर ज्ञानी के निकट सब स्वप्न है ।''

''शायद मेरे उत्तर से बाबाजी प्रसन्न हो गये थे । इसके बाद वे मुझसे मिलने आये थे । मैं भी एक दिन उनसे मिलने गयी थी। बाबाजी में बड़े गुण हैं । वे विभिन्न प्रकार के भोजन बनाना जानते

हैं । मुझसे कहते रहे–'अगर मैं सात दिनों तक नित्य बहुपद (विभिन्न प्रकार की) भोजन बनाकर तुम्हें खिलाऊँ तब भी मैं जितने प्रकार के भोजन बनाना जानता हूँ, वे सब समाप्त नहीं होंगे ।'''

''मुझे अनेक प्रकार के भोजन बनाकर उन्होंने खिलाया था । मैंने भी उन्हें रसगुल्ला और सन्तरे का पायस बनवाकर भिजवा दिया था । मेरा खाद्य पदार्थ देखकर उन्होंने जानना चाहा था कि कैसे मैंने उसे बनाया है ?''

श्री श्री माँ शायद स्वामी पूर्णानन्द को यह बता देना चाहती रहीं कि विभिन्न प्रकार के भोजन बनाना जानने पर भी अभी सभी प्रकार का नहीं जानते । सम्भवतः इसकी शिक्षा की उन्हें जरूरत थी । अन्यथा शिष्टाचार दिखाने की गरज से माँ यह सब खाना बनवाकर न भेजतीं । इसके बाद उन्होंने दूसरी बार नहीं भेजा ।

अशरीरी जीवों का आगमन

आज रात को बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगीं–''तुम लोग यह मत समझना कि इस कमरे में केवल तुम लोग ही हो । जिस प्रकार तुम लोग मेरी बात सुनने आते हो, उसी प्रकार वे लोग भी आते हैं ।''

एक भक्त–माँ, नवद्वीप में क्या आपकी मुलाकात श्री गौरांग महाप्रभु से नहीं हुई है ?

माँ ने इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर नहीं दिया । लेकिन कहा–''किसी स्थान में जाने पर उस स्थान के विशेष भाव से मुलाकात होती है ।''

इस तरह की बातों में रात के ३.३० बज गये । हमलोग सोने चले गये ।

३१ दिसम्बर, १९३६ ई. गुरुवार । आज विमला माँ कलकत्ता जाने वाली हैं । माँ ने कहा है कि अगर आज वे जाना चाहेंगी तो वे बाधा नहीं देंगी । लेकिन विमला के जाने के बारे में कुछ नहीं बोली ।

श्री श्री माँ की बातें कभी झूठी होती हैं या नहीं

आज सबेरे माँ के निकट बैठकर मैंने माँ से पूछा–"माँ, तुमने एक दिन मुझे कहा था कि तुम्हारे मुँह से निकली बातें झूठी नहीं होतीं । यहाँ तक कि अगर मजाक में भी कुछ कहती हो तो वह भी झूठी नहीं होती। पर खुकुनी दीदी कह रही थीं कि कभी–कभी तुम्हारी बातें गलत साबित होती हैं । नन्दू बाबू डिबरूगढ़ में नौकरी के सिलसिले में जब गये तब तुमने खुकुनी दीदी से कहा था कि नन्दू बाबू वहाँ श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती से मुलाकात करें । नन्दू बाबू ने वहाँ जाकर उनकी खोज की तो पता चला कि श्रीश बाबू का स्वर्गवास हो गया है ।"

माँ–मैंने खुकुनी से कहा था कि श्रीश अगर वहाँ रहे तब नन्दू उससे मिल लें । ऐसी बात मैंने नहीं कि वह जरूर श्रीश के साथ मिल ले । इस प्रकार की बातें तभी कहती हूँ जबकि उसके पूर्व "यदि" इत्यादि शब्द रहता है ।

खुकुनी दीदी इस वक्त मौजूद थीं । माँ की बातों का प्रतिवाद उन्होंने नहीं किया । रात के समय मेरे इसी प्रश्न की पुनः चर्चा करते हुए माँ ने विस्तार से व्याख्या की ।

माँ ने कहा–जागतिक भाव में बातें कहने पर उसमें सच–झूठ दोनों रहेगा । कारण जागतिक भाव में सच–झूठ दोनों ही हैं । जब मैं जागतिक भाव में बातें करती हूँ, हँसी–मजाक करती हूँ तब तुम लोग मेरी बातों को उसी रूप में ले लेना । जैसे मैंने कहा कि उस झंझर से एक गिलास पानी ले आओ । तुम लोगों ने जाकर देखा कि उसमें पानी नहीं हैं । उस वक्त तुम लोग यही सोचोगे कि माँ की बात गलत निकली । कारण उक्त झंझर में पानी है जानकर ही माँ ने पानी लाने को कहा । लेकिन जागतिक दृष्टि से देखने पर यह गलत नहीं हैं । तुम लोग भी जब इस प्रकार की बातें कहते हो,

उसे झूठ नहीं कहा जा सकता, बल्कि इससे यह प्रमाणित होता है कि तुम लोगों ने यह अनुमान किया था कि उसमें पानी है, पर अनुमान गलत निकला। तुम लोगों के साथ बातें करते समय मुझे भी इसी प्रकार की बातें करनी पड़ती हैं ।

अगर तुम लोग यह सोचो कि मैं सब जानती हूँ तो तुम लोगों के साथ मेरी बातचीत बिलकुल नहीं चल सकती । कारण जब मैं सब जानती हूँ तब क्या पूछुँगी ? तुम लोगों ने स्नान किया है या नहीं, भोजन किया है या नहीं, यह सब तब नहीं आता । कारण यह सब तो मुझे ज्ञात ही है ।

"इसके अलावा भी एक ऐसी अवस्था है जहाँ सच–झूठ नहीं है । लेकिन इस स्थिति में रहते हुए जागतिक भाव में व्यवहार नहीं किया जा सकता । कारण इससे जगत् में विशृंखलता आ जायेगी । सच–झूठ को पृथक्करण करके ही तो जगत् में सब कुछ किया गया है । परमभाव, सत्य–मिथ्या शून्यभाव जगत् में चलाने पर सब गण्डगोल हो जायगा । इन दोनों स्थिति के बीच एक और स्थिति है । उस स्थिति में जिसे जो कहा जाता है, वह सत्य होता है । इस स्थिति में मैं कुछ भी क्यों न कहूँ, वह सत्य होने के लिए बाध्य है ।"

मैं–माँ, अगर तुम्हारी बातों को कोई मिथ्या न समझकर सारी बातें सत्य समझ ले तो ?

माँ–यदि किसी में विश्वास का इतना जोर हो तो उसके निकट मेरी सारी बातें सत्य हो सकती हैं ।

श्री श्री माँ के बचपन और विवाहित जीवन की बातें

श्री श्री माँ के मुँह से निकली बातें झूठ हो सकती है या नहीं, इस प्रश्न को पूछते समय मैंने श्रीश बाबू की चर्चा की थी । माँ श्रीश बाबू के बारे में तरह–तरह की बातें कहने लगीं । यह सब श्री श्री माँ के बचपन की बातें हैं ।

श्रीयुक्त श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती दीदी माँ से सम्बन्धित व्यक्ति नहीं थे। पर उनका हृदय अत्यन्त कोमल था और बडे अच्छे व्यक्ति थे । श्री श्री माँ का जन्म होने के पहले दीदी माँ के कई पुत्र हुए थे जिनका देहान्त हो गया था । दीदी माँ को पुत्र–शोक कातर देखकर श्रीश बाबू ने सोचा कि वे अब दीदी माँ से इस प्रकार का व्यवहार करेंगे ताकि वे उन्हें अपने पुत्र की तरह समझते हुए पुत्रशोक को भुला सकें।

माँ ने कहा–"वास्तव में श्रीश मेरे साथ भाई की तरह व्यवहार करने लगा । वह मुझे प्यार करता था । मुझे "निम"–"निम" कहकर मजाक करता । निर्मला न कहकर वह मुझे 'निम' कहता । जब मुझसे मजाक करता तब मैं उसे मुँह चिढ़ाती थी । इस पर वह कहता– 'वाह, वाह, फिर दिखाओ, फिर दिखाओ ।' अपने साथ खिलाने के लिए वह बहुत अनुरोध करता । लेकिन मैं उसके साथ कभी खाना खाने नहीं बैठी । कारण तुमलोगों की दीदी माँ ने ऐसा करने को मना कर रखा था। मैं बड़ी हो गयी हूँ, इसीलिए वे मुझे किसी के साथ खाने के लिए मना कर रखा था। इन घटनाओं के बहुत दिनों बाद विद्याकूट में मुलाकात हुई। उस समय उसे बुलाकर उसके साथ बैठकर मैंने भोजन किया था।"

माँ ने यह भी बताया कि श्रीश बाबू की मृत्यु का संवाद उन्हें ज्ञात था और इसे इशारे से खुकुनी दीदी को उन्होंने बताया भी था, पर दीदी उसे समझ नहीं पायी थीं।

बचपन की कहानी के सिलसिले में उपेन बाबू के साले को कैसे परेशान किया था, इस बारे में माँ ने बताया। उपेन बाबू श्री श्री माँ के जेठ के पुत्र हैं। उपेन बाबू का साला अपनी बहन के द्वितीय विवाह के उपलक्ष्य में उपेन बाबू के यहाँ आया था। श्री श्री माँ ने मजाक करने के उद्देश्य से कहा कि यहाँ की स्थानीय प्रथा के अनुसार एक मंगलघट सिर पर रखकर उसे तालाब तक जाना पड़ेगा। वहाँ जाकर स्त्री–आचार सम्पन्न करना होगा। श्री श्री माँ के निर्देशानुसार एक मिट्टी

के कलश में गोबर–पानी घोलकर आँगन में रखा गया और उसके पास एक छोटा लोढ़ा रख दिया गया। उपेन बाबू के साले से कहा गया कि इसी कलश को लेकर आपको तालाब तक जाना है और आपके पीछे महिलाएँ लोढ़ा लेकर चलेंगी। उपेन बाबू के साले के मन में संदेह हुआ था, ऐसा ठीक से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सिर पर कलश रखने के पूर्व उसकी जाँच करते रहे। लेकिन कलश को आम और केले के पत्ते से इस कदर ढँक दिया गया था कि भीतर की सामग्री दिखाई नहीं दे रही थी। उन्होंने निश्चित मन से कलश को सिर पर रखा और श्री श्री माँ ने लोढ़ा उठा लिया। दो–चार कदम आगे बढ़ते ही श्री श्री माँ ने लोढ़ा दे मारा और इसके साथ ही कलश टूटकर बिखर गया। उस समय जो स्थिति हुई थी, अनुमान लगाया जा सकता है।

इस कहानी को सुनाने के बाद माँ ने कहा – "जब जिसे छकाना चाहा, चाहे वह कितना बड़ा चालाक क्यों न हो, उसे छकाया है। एक बार एक उत्सव पर एक लड़का मुझ पर पानी की छींटे डालकर परेशान करता रहा। मैं उसके ऊपर पानी डालने के लिए एक लोटा पानी लेकर छत पर गयी। उसे मेरी नियत का पता चल गया और तेजी से भागा, पर वह ऐसी जगह जाकर रुक गया जहाँ से आगे भागने का मार्ग नहीं था। मैंने ऊपर से पानी उड़ेल कर उसे भीगो दिया।"

दीदी माँ श्री श्री माँ को बेवकूफ लड़की समझती रहीं, पर माँ की बातचीत या आचरण बेवकूफ लड़कियों की तरह नहीं थे। हँसी–मजाक करने में पटु थीं। श्री श्री माँ के एक आत्मीय थे। जो काफी हृष्ट–पुष्ट अवश्य थे, पर उनकी आवाज महीन थी। एक दिन श्री श्री माँ के घर आकर न जाने क्या कह रहे थे। उसकी आवाज सुनकर माँ अपने कमरे में से बाहर आकर बोलीं – "देखो तो कौन मोटे गले से महीन आवाज निकाल रहा है।"

इस बात को सुनकर सभी लोग हँस पड़े।

श्री श्री माँ के साथ निर्दोष आमोद–आह्लाद करने में जिस प्रकार अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है और खराब ढंग से उनके साथ मजाक करने का परिणाम बुरा होता है। एक बार विवाह के सिलसिले में अपने एक रिश्तेदार के घर गयीं। उन दिनों माँ जवानी की ड्योढ़ी पर पैर रख चुकी थीं। माँ को देखते ही लगता असामान्य रूप लावण्यमयी देवी प्रतिमा हैं। इस विवाह में दो युवक भी आये थे।

माँ ने कहा – मैं सजधज कर विवाह वाले घर में गयी। मेरे शरीर पर काले रंग की शाल थी। मुझे देखकर दोनों युवकों ने कहा – 'तुम ऐसी दिखाई दे रही हो, वैसी दिखाई दे रही हो।' बार–बार इन शब्दों को सुनने के बाद मेरी दृष्टि उन पर पड़ी। यह दृष्टि भी कुछ अस्वाभाविक थी। उन दिनों मैं घर की बहू थी, इसलिए पर पुरुष की ओर नहीं देखती थी। जब नयी बहू को शहद चटाया गया तब दूसरा युवक हाथ में कुछ चीनी लेकर मेरे पास आकर बोला – "तुम भी तो नयी बहू हो। आओ, तुम्हारे मुँह में चीनी डाल दूँ।" मैं जितना पीछे हटती जाती, वह उतना ही आगे बढ़कर अपना हाथ मेरे मुँह के पास ले आता था। उसे इस तरह करते देख अचानक मेरी दृष्टि उस पर पड़ी। यह दृष्टि कुछ अस्वाभाविक थी। लेकिन इन दोनोंबार ही मैने अपनी इच्छा से उनकी ओर नहीं देखा था। बहरहाल दो बार मुझे इस तरह देखते देख वह निवृत्त हो गया। उत्सव के बाद दोनों अपने घर चले गये। दो दिन बाद पता चला कि जिस युवक ने मेरे साथ अभद्रोचित मजाक किया था, उसे अकारण मार खानी पड़ी और जो युवक मेरे मुँह में चीनी डालने आया था, वह हैजे के कारण मर गया। इसकी मृत्यु शायद इसीलिए निर्दिष्ट थी।"

अब माँ अपने विवाहित जीवन के बारे में कहने लगीं। यह पहले ही बताया गया है कि विवाह के बाजार में मर्यादा बढ़ाने के लिए माँ को निम्न प्राइमरी क्लास में भर्ती किया गया था। माँ निम्न प्राइमरी क्लास में पढ़ती है, यह बात सभी को बता दिया गया था। माँ जब

दीदी माँ के साथ गुरु गृह में गयी थीं तब माँ की शिक्षा के बारे में बताया गया कि माँ निम्न प्राइमरी में पढ़ती हैं।

यह सुनकर एक सज्जन ने ''निम्न प्राइमरी'' का अर्थ पूछा। माँ ने सरल भाव से जवाब दिया – ''इसका अर्थ मुझे किसी ने नहीं बताया है।''

बहरहाल पत्नी निम्न प्राइमरी में पढ़ चुकी है, सुनकर भोलानाथ ने विवाह के दूसरे दिन पत्नी की हस्तलिपि देखना चाहा। उद्देश्य यह था कि पत्नी पत्र वगैरह लिख सकती हैं या नहीं। इधर माँ किसी भी प्रकार से हस्तलिपि दिखाने को राजी नहीं हुई। दीदी माँ डरा–धमकाकर माँ से उनका हस्ताक्षर तक नहीं करा सकीं। अन्त में सभी लोग मिलकर जबरदस्ती करके माँ से उनसे हस्ताक्षर करवाकर भोलानाथ को दिखाया।

माँ ने कहा – ''विवाह के बाद भोलानाथ ने मुझे एक लम्बा पत्र लिखा। हमारे यहाँ पत्र आना, एक नयी घटना थी। पत्र आने के साथ ही गाँव भर में शोर हो गया कि मेरे नाम एक पत्र आया है। पत्र तुम लोगों की दीदी माँ को प्राप्त हुआ। तुम लोगों की दीदी माँ अपने हाथ से मुझे पत्र देने में शायद लज्जा अनुभव करने लगी। फलतः उन्होंने पत्र को ऐसे स्थान पर रख दिया ताकि सहज ही उस पर मेरी दृष्टि पड़ जाय। इधर मैंने उस पत्र को देखकर भी अनदेखा कर दिया। इससे तुम लोगों की दीदी माँ की परेशानी बढ़ गयी। अन्त में एक दूसरे व्यक्ति के हाथ मुझे पत्र भिजवाया गया। भेजने को तो पत्र तुम लोगों की दीदी माँ ने भेज दिया, पर वे चिन्तित रहने लगीं। उक्त पत्र का उत्तर देने के लिए बार–बार तगादा करने लगीं। यह सब बातें कहने पर लड़कियाँ शर्म से गम्भीर हो उठती हैं। मैं भी शर्म दिखाने की गरज से गम्भीर हो गयी। अन्त में अनेक लोगों ने मिलकर एक मसौदा बनाया और एक उत्तर बनाया गया। मैंने उसकी नकल करके भेज दी।

"तुम लोगों के दादा महाशय जब मुझे श्रीपुर में रख आये तब भोलानाथ अगर पत्र लिखें तो मुझे कैसा उत्तर देना चाहिए, इस तरह के कई नमूने वाले पत्र वे लिखकर मेरे पास छोड़ गये।"

"मैं निम्न प्राइमरी तक पढ़ चुकी हूँ सुनकर भोलानाथ ने एक पुस्तक खरीद कर मुझे दी। एक दिन रात के वक्त भोलानाथ ने कहा – 'तुम उस पुस्तक को पढ़ो। मैं लेटकर सुनता रहूँगा।' अपनी पढ़ाई के बारे में तुम लोगों को बता चुकी हूँ। प्रत्येक शब्द का हिज्जे करके उच्चारण करती रही। इसके अलावा मुझे यह भी बताया गया था कि जब कोई वाक्य पढ़ा जाय तब जब तक खड़ी पाई न आये तब तक श्वास नहीं फेंकना चाहिए। एक तो हिज्जे करके पढ़ना, दूसरे खड़ी पाई (विराम) आने तक एक श्वास में पढ़ना, मेरे लिए प्राणान्त समस्या बन गयी। भोलानाथ एक ओर लेटे हुए मेरी पढ़ाई का नमूना सुन रहे थे। कुछ देर सुनने के बाद करवट बदलते हुए बोले – 'हूँ, यही है निम्न प्राइमरी की पढ़ाई? यह तो पहली पोथी भी नहीं है।' इतना कहकर उन्होंने आगे पढ़ने से रोक दिया। इसके बाद फिर मुझे कभी पढ़ने के लिए नहीं कहा गया।"

इस कहानी को माँ ने जिस ढंग से सुनाया, उसे सुनकर सभी लोग हँसने लगे। जो लिखा गया, उसमें श्री श्री माँ की बातों का माधुर्य नहीं आया। माँ लेटी हुई ये बातें कहती रहीं। भोलानाथ ने किस प्रकार करवट बदलते हुए मुँह बनाकर इन बातों को कहा था, उसका अनुकरण करती हुई माँ दिखा रही थीं।

खुकुनी दीदी ने पूछा – "तुम्हें यह सब बातें याद कैसे हैं?"

माँ ने कहा – "इस वक्त मैं तद्‌भाव में भावित हूँ, इसलिए सब याद आ रही है।"

माँ हमारी आनन्दमयी हैं, इस बात का अनुभव इस बार नवद्वीप आने पर पूर्ण रूप से अनुभव करने लगा। माँ के सामने इस बार जितना हँस सका, उतना जीवन में कभी हँस नहीं पाया था।

विग्रह दर्शन के लिए मंदिरों में जाना

लगभग ९–१० बजे सुना कि माँ हम लोगों को लेकर प्रत्येक मन्दिर में घूमने जायेंगी। हम लोग माँ को छोड़कर कहीं नहीं जा रहे हैं देखकर माँ ने हम लोगों को देवालयों में ले जाने का निश्चय किया है। सबसे पहले हम लोग भवतारण तथा भवतारिणी के मन्दिर में गये। भवतारिणी की मूर्ति, काली मूर्ति है, पर वे आसन पर बैठी हैं। मूर्ति काफी बड़ी है। इस तरह की मूर्ति मैंने कभी नहीं देखी है। यहाँ से हम जगाई–मधाई के मन्दिर में गये। यहाँ आते ही श्री अवनी बाबू श्री श्री माँ के चरणों पर गिर कर रोने लगे। इसके बाद महाप्रभु के मन्दिर में जाकर सोने का गौरांग देखा। चतुर्भुज गौरांग मन्दिर में जाकर श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धित विभिन्न मूर्त्तियाँ देखने में आयीं। माँ घूम–घूमकर सारी मूर्तियाँ दिखाती रहीं। मन्दिर से बाहर निकलते ही माँ को गुनगुनाते सुना –

"हरिर नामेर सारि गेये परपारे जाय।"

आगे श्रीवासअंगन होकर हम लोग धर्मशाले में वापस आ गये।

श्री गौरांगदेव की मूर्ति के दर्शन कर जब हम बाजार से गुजर रहे थे तब अचानक एक बरतन की दुकान में प्रवेश कर माँ ने अचानक दो गगरे उठा लिये। उनमें से एक गगरा विमला माँ को देती हुई बोली – "चलो, हम दोनों दोनों गगरे को कमर पर रख लें।"

दुकानदार माँ का यह व्यवहार देखकर हँसने लगा। अखण्डानन्दजी ने जल्दी से दुकानदार से कहा – "इस कलशों की कीमत के बारे में चिन्ता न करें। हम दे देंगे।"

माँ और विमला माँ दोनों कलशों को कमर पर रखकर आगे बढ़ गयीं। तमाशा देखने की गरज से हम लोग माँ के पास–पास चलने लगे। मार्ग में दो संन्यासियों को देखकर माँ ने दोनों कलश उन लोगों को दे दिये। इनमें से एक हम लोगों की धर्मशाले में बराबर आता

रहा। दूसरा कलश लेने से अस्वीकृत हुआ तो उन्हें जबरन मजबूर करके दिया गया।

माँ ने शायद खुकुनी दीदी से कहा था – "उन लोगों ने प्रश्न नहीं किया कि ये कलश लेकर वे क्या करेंगे। अगर वे इस प्रकार का प्रश्न करते तो मैं उनसे कहती कि ये कलश जल से पूर्ण होने पर उससे मै पानी पिऊँगी।"

दरोगा के घर चोरी

दोनों कलश संन्यासियों को देने के बाद माँ पुनः चलने लगीं। चलते–चलते थाने में आ गयीं। थाने में एक बृहत् वट वृक्ष था। उसके नीचे चौतरा पक्का बना हुआ था। माँ पक्के चौतरे पर बैठीं। हम लोग चारों ओर खड़े हो गये। सभी सोचने लगे कि आखिर माँ यहां क्यों आयी हैं?

अन्त में शची बाबू ने पूछा–"माँ, तुम थाने पर क्यों आयी हो?"

माँ ने कहा – "थाना के जो इंचार्ज हैं, उनका मन आज सबेरे पाँच मिनिट के लिए चोरी चला गया था, इसीलिए वे मुझे थाने पर पकड़ लाये हैं।"

इस बात का अर्थ हम समझ नहीं सके। तभी थाने के दरोगा बाबू ने आकर माँ को प्रणाम किया। उनकी जबानी सुना कि माँ जिस दिन ललिता सखी के यहाँ गयी थीं, उस दिन वहाँ दरोगा बाबू उपस्थित थे। उन्होंने वहाँ सुना था कि ललिता सखी माँ से रूठकर अपने यहाँ बुलाने में समर्थ हुए थे। आज सवेरे वे बैठकर सोच रहे थे कि जिस प्रकार माँ ने ललिता सखी पर कृपा की है, उसी प्रकार उन पर भी कृपा करती तो बड़ा आनन्द आता। इस तरह की चिन्ता करने के बाद ही माँ पूरे दल के साथ यहाँ आ गयी। उक्त सज्जन की आकृति पर आनन्द की लहरें नृत्य कर रही थी। इसके साथ ही माँ की बातों का अर्थ समझ सका। दरोगा बाबू की सुकृति कम नहीं है। ये लोग धन्य हैं।

धर्मशाला वापस आकर खुकुनी दीदी से श्री श्री माँ की आसाम यात्रा का विवरण सुनने लगा। आसाम यात्रा के समय माँ के साथ दीदी भी थीं। शिलांग जाकर वहाँ के हेल्थ अफसर श्री युक्त हीरेन्द्र नाथ सरकार महाशय के निवास स्थान पर ठहरी थीं। हीरेन बाबू के साथ माँ का पूर्व परिचय नहीं था। लेकिन साधु–संन्यासियों की सेवा करने की उनकी आदत थी। आपकी पत्नी भी काफी भक्तिमती हैं। माँ को देखने के बाद हीरेन बाबू की पत्नी ने कहा था कि इन्हें मैंने दो–तीन दिन पूर्व अपने ठाकुर घर से निकलते देख चुकी हूँ। लेकिन उस समय इनकी महीन किनारे वाली साड़ी नहीं देख सकी थी। लाल रंग की साड़ी पहने हुए थीं।

दीदी ने कहा – दो–तीन दिन पहले माँ को अवश्य लाल साड़ी पहनायी गयी थी। इस भक्तिमती महिला पर कृपा करने के लिए ही शायद माँ शिलांग गयी थीं।''

शिलांग में एक घटना और हुई थी। उसका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। माँ, खुकुनी दीदी, अखण्डानन्द स्वामी आदि जिस रास्ते से चल रहे थे, उसी मार्ग पर छोटी–छोटी कुछ लड़कियाँ खड़ी थीं। इनमें से एक ने आगे बढ़ कर माँ से कहा – अजी, तुम इधर आओ न, इधर आओ।''

उसके कथनानुसार माँ उसके पास गयीं। वह माँ को अपने घर ले गयी और माँ को कुछ खाने को दिया। उस लड़की का नाम श्रीमती शोभारानी घोष है। माँ उसे 'सझली माँ' कहती हैं और उसका नाम रखा है – नारायणी। यह कहानी मैं की जबानी सुन चुका हूँ। अब तक श्री श्री माँ की तीन माँ बन गयी हैं। प्रथम बड़ी माँ, आप हैं श्रीमती भ्रमर घोष एम.ए.; द्वितीय हैं संझली (तीसरी) माँ आप हैं श्रीमती शोभारानी घोष; तृतीय यानी छोटी माँ, आप हैं श्रीमती लोला दे। इन्हें माँ ने तारापीठी भेजा था। तीन महिलाएँ कायस्थ हैं। खुकुनी दीदी ने जब माँ से कहा तब माँ ने कहा – ''इससे अधिक मेरे भाग्य में और क्या मिलेगा ?''

बाजितपुर में भोलानाथ की कालीपूजा

दीदी ने आगे कहा कि बाजितपुर की कालीपूजा के बारे में जो विवरण हम लोगों ने श्रीयुक्त भूदेव बसु महाशय के निकट से प्राप्त किया था, वह निमूल नहीं है। इस बार आसाम यात्रा के समय श्री श्री माँ से उक्त घटना के बारे में जान चुकी हूँ। वह घटना यों हैं – बाबा भोलानाथ ने बाजितपुर में रहते समय दीपावली के उपलक्ष्य में कालीपूजा का आयोजन किया। यह पूजा उनके वंश की सालाना कालीपूजा थी। इस पूजा के भोग के लिए जो चावल काम में लाया जाता था, उसे खूब शुद्ध भाव से तैयार किया जाता था। इस बार भी पूजा के लिए जो चावल तैयार किया गया, उसे कौवे ने जूठा कर दिया। फलतः उसे उठाकर रख दिया गया। बादमें नये चावल से भोग तैयार किया गया। इस पूजा का भोग माँ स्वयं नहीं बना सकी थीं। पड़ोस की एक महिला ने उसे बनाया था । जब वे भोग बनाकर चली गयी तब माँ रसोईघर के सामने एक लाठी लेकर कुत्ते–बिल्लियों को भगाने के लिए बैठ गयी। इस तरह बैठे–बैठे माँ ने देखा कि एक गौर कान्ति ब्राह्मण श्री श्री माँ के दाहिने अंग को रगड़ता हुआ घर के भीतर चल गया ओर भोग के लिए जो अन्न थाली में परोसकर रखा गया था, उसमें से अन्न ग्रहण करके चला गया। इधर पूजा समाप्त करने के बाद भोलानाथ भोग लेकर जब देवी के निकट जा रहे थे तब न जाने कहाँ से एक प्रकाण्ड शरीर वाला कुत्ता आया और भोलानाथ के हाथ के भोग को जूठा करके चला गया। एक आम के पेड़ के नीचे उक्त भोग को भोलानाथ ने रख दिया और फिर स्नान कर वापस आ गये। बाद में कौवे द्वारा किये गये जूठे चावलों से भोग बनाकर देवी को भोग दिया गया। खुकुनी दीदी को माँ ने यह कहानी सुनायी थी।

माँ ने कहा था – 'भोलानाथ की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। प्रत्येक बार सामान्य आयोजन करते थे, पर कितने लोग प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं, इस ओर कभी भोलानाथ ने ध्यान नहीं दिया ।'

दुश्चरित्र नौकर का परिणाम

बाजितपुर में हुई एक और घटना का विवरण श्री श्री माँ के निकट सुना। इस घटना के बारे में इसके पहले भूदेव से भी सुन चुका हूँ। वह घटना यों है–

सन् १३३५ फ० में श्रीयुक्त भूदेव चन्द्र बसु महाशय ढाका के नवाब के स्टेट के सहायक मेनेजर बनकर बाजितपुर गये। उन दिनों भोलानाथ भी बाजितपुर में नवाब के स्टेट में नौकरी करते रहे । भूदेव बाबू का अंगरक्षक शशि नामक एक नौकर था। वह बड़ा चरित्रहीन था। लेकिन यह बात कोई नहीं जानता था। अपने वधू–जीवन में माँ ब्राह्म मुहूर्त में उठकर आंगन में गोबर–पानी छिड़कती थी और घर–गृहस्थी के कार्य सूर्योदय के पूर्व प्रारम्भ कर देती थीं। इस समय अधिकांश शय्यात्याग नहीं करते थे। फलतः माँ अकेली रहती थीं। एक दिन माँ शय्यात्याग कर आंगन में गोबर–पानी छिड़क रही थीं, ठीक इसी समय उक्त शशि नामक नौकर दुरभिसंधि लेकर पीछे से माँ के आंचल को पकड़ा। ज्योंही उसने आंचल स्पर्श किया त्यों ही गों–गों आवाज करता हुआ वह जमीन पर गिर कर बेहोश हो गया। उसकी यह दशा देखकर माँ ने भोलानाथ को सूचना दी। बाबा भोलानाथ आकर उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगे। कुछ देर बाद वह होश में जरूर आ गया, पर स्वाभाविक अवस्था में नहीं आ सका। हमेशा के लिए उन्मादग्रस्त हो गया।

भोजन के बाद आज तीसरे पहर गंगा की ओर हम लोग घूमने गये। नित्य की तरह तीन–चार नाव एक में बाँधकर गंगा की धारा में चलने लगे। माँ को देखने के लिए किनारे–किनारे अगणित व्यक्ति

खड़े थे। इन लोगों को दर्शन देने के लिए नावों को किनारे की ओर लाया गया। तीसरे पहर नदी वक्ष पर जाड़ा–सा लग रहा था। नावों को पश्चिम दिशा की ओर बढ़ाने के लिए माँ ने कहा। उस समय थोड़ी धूप थी। माँ ने कहा कि पश्चिम की ओर चलने पर सभी के शरीर पर धूप लगेगी और इससे जाड़ा कम लगेगा।

शाम के वक्त हम लोग धर्मशाले में वापस आ गये। आज माँ से मिलने के लिए दो–तीन बाबाजी आये हैं। इन लोगों ने माँ से दो चार प्रश्न पूछा।

बाबाजी – सगुण, निर्गुण एवं निर्वाण किसे कहते हैं?

माँ – पिताजी, आपलोग कहिये। मैं क्या जानती हूँ?

बाबाजी – माँ, हमलोग तुमसे सुनने आये हैं।

माँ – तुम लोग चर्चा चलाओ। बातचीत में मैं भी भाग लूँगी।

बाबाजी लोग स्वयं ही सगुण की व्याख्या करने लगे। उनकी बात समाप्त होते ही माँ ने कहा – "पिताजी, आप लोगों ने अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही दिया। स्वभाव के गुण को ही सगुण कहते हैं।"

प्रथम बाबाजी – निर्वाण किसे कहते हैं?

माँ – पिताजी, आप लोग बताइये।

प्रथम बाबाजी – अहं ज्ञान का लोप जाने पर जो स्थिति होती है, वही निर्वाण की स्थिति है।

द्वितीय बाबाजी – दवा पीकर भी अहं ज्ञान लोप किया जा सकता है। क्या वह निर्वाण होगा?

प्रथम बाबाजी – तुम क्या कहना चाहते हो?

द्वितीय बाबाजी–मेरा कहना यह है कि निर्वाण का अर्थ है – मिल जाना। जैसे एक गिलास पानी नदी में डाल देने पर वह मिल जाता है। निर्वाण में भी उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में मिल जाता है।

द्वितीय बाबाजी की बातों का प्रतिवाद न करके कुछ हद तक समर्थन किया। यह देखकर प्रथम बाबाजी ने कहा – "जीवात्मा अगर परमात्मा में मिल जाता है तो कृपा का स्थान कहाँ है?"

माँ – जबतक कर्म है, तुम में ज्ञान है तब तक कृपा है। बाद में मिल जाने पर कौन किस पर कृपा करेगा?

बाबाजी – भक्ति कैसे प्राप्त होती है?

माँ – भक्ति–ज्ञान कहने पर आमतौर पर हम जो समझते हैं, उसके अलावा भी विशुद्ध भक्ति–ज्ञान है। विशुद्ध भक्ति और विशुद्ध ज्ञान ही वास्तविक भक्ति ज्ञान हैं। इसे प्राप्त करने के लिए हमारे पास जो कुछ है, उसी को लेकर कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। गुरु ने जिस मार्ग पर चलने का आदेश दिया है, उसी मार्ग पर चलना चाहिए। इस प्रकार कर्म करते–करते विशुद्ध ज्ञान और भक्ति प्राप्त होती है।

इसी समय जलपान के लिए माँ को भीतर ले जाया गया। बाबाजी लोग विदा लेकर चले गये।

कृष्णवेश में माँ

हम लोग कमरे में बातचीत करने लगे। कुछ देर व्यतीत हो जाने के बाद खुकुनी दीदी ने आकर त्रिगुण बाबू और मुझे बुलाकर कहा – "माँ को फूलों से सजाया गया है। आप लोग जाकर देख आइये।"

दीदी की बात सुनकर जिस कमरे में माँ को सजाया जा रहा था, उस कमरे में हम लोग गये। छोटा–सा कमरा जिसमें बहुत–से लोग थे। अत्यन्त कठिनाई से भीतर जाकर देखा कि माँ को फूलों से शृंगार कर श्रीकृष्ण जैसा बनाया गया है। माथे पर चूड़ा बनाकर लगाया गया है। हाथों में फूलों की चूड़ियाँ, बाजूबन्द, गले में हार, सब फूलों का है। विमला माँ को राधा के रूप में शृंगार कर उनकी बगल में बैठाया गया है। उनके गले में भी माला पहनायी गयी है। लड़कियाँ मधुर कण्ठ

से भजन गा रही हैं। अवनी बाबू तो आनन्द से आत्महारा होकर नृत्य कर रहे हैं। माँ मृदु-मृदु मुस्कुरा रही हैं और तिरछी नजर से विमला माँ की ओर देख रही हैं। उनकी नजर भी बहुत सुन्दर है। भजन की तालों पर शरीर हिला रही हैं। माँ का यह रूप देखकर उन्हें रमणी हैं, मालूम नहीं पड़ रहा था। लग रहा था जैसे वृन्दावन के कृष्ण भुवनमोहनी रूप में आज नवद्वीप में अवतरित हुए हैं। माँ की आकृति से स्निग्ध ज्योति जैसे छिटक रही थी। श्री श्री माँ के इस दिव्य ज्योति रूप को देखकर तथा भक्तों द्वारा आत्महारा होकर गाते देख, मैं अपने को मर्त्यलोकवासी नहीं समझ पा रहा था। तन्मय होकर इस रूप को देखता रहा। हृदय के अन्तःस्थल से एक अनिर्वचनीय आनन्द उत्स मानों सम्पूर्ण शरीर को तरंगित करता रहा। कितनी देर इस तरह व्यतीत हो गया, पता नहीं लगा। अचानक बाहर नजर गयी। देखा – बेबी दीदी इस कमरे में आने के लिए निष्फल प्रयास करने के बाद बाहर चहलकदमी कर रही हैं। दरवाजे के पास पुरुषों की इतनी सख्त भीड़ थी कि उसे पार करके यहाँ तक वे किसी सूरत में नहीं आ सकती थीं। बेबी दीदी को इस प्रकार असहाय अवस्था में देख मेरे मन में करुणा उत्पन्न हुई। सभी लोग माँ का दिव्य रूप देख रहे हैं और बेबी दीदी नहीं देख पायेंगी? यह सोचकर मैंने अत्यन्त कठिनाई से थोड़ी जगह बनाकर बेबी दीदी को बुलाकर भीतर आने को कहा।

उन्हें ऊहापोह करते देख मैंने कहा – "दीदी इस वक्त लज्जा करने की कोई जरूरत नहीं है। चले आइये।"

अब बेबी दीदी संकोच को त्याग कर भीतर चली आई। कुछ देर भजन कीर्तन के बाद माँ ने फूलों का शृंगार खोल दिया। सभी का मोह जैसे एकाएक भंग हो गया। इसके बाद हम लोग कमरे में आकर बैठ गये। मां भी आयी। माँ को काफी देर तक अनुपस्थित देखकर काफी लोग चले गये थे। केवल दो-चार लोग बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऋषि प्रणीत स्तोत्र एवं गीता माहात्म्य पाठ

अवनी बाबू ने आद्यास्तोत्र पाठ किया। यह समाप्त होने पर श्री श्री माँ से अनुमति लेकर श्रीयुक्त गणेशचंद्र सेन महाशय रचित कुछ संस्कृत श्लोकों का पाठ उन्होंने किया। पाठ होने के बाद मैंने माँ से पूछा – "माँ ऋषिप्रणीत स्तोत्रों के अलावा अन्य कुछ भी क्या नित्य पाठ हो सकता है?"

माँ – "अपने प्रश्न को जरा और स्पष्ट करो।"

मैं – गीता संस्कृत भाषा में है और वह बंगला गद्य में भी है। अगर कोई संस्कृत वाली गीता पाठ न करके बंगला कविता में रचित गीता का पाठ नित्य करे तो क्या उसका फल बराबर प्राप्त होता है?

माँ –ऋषि वाक्य में एक विशेष शक्ति है। पर अगर कोई उसी विश्वास के साथ–साथ कवितावली गीता का पाठ करे तो उसी प्रकार का फल प्राप्त कर सकता है।

मैं – तुम्हारी बातों से क्या यही समझा जाय कि ऋषियों के अलावा अन्य किसी के द्वारा रचित स्तोत्र पाठ करने जो फल प्राप्त होता है, पाठकों के विश्वास पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर करता है और ऋषियों द्वारा प्रणीत स्तोत्र पाठ करने पर पाठकों में विश्वास रहे या न रहे, कुछ फल अवश्य प्राप्त होता है।

माँ – हाँ, यही।

मैं – गीता पाठ करने के बाद गीता माहात्म्य अगर पाठ न करूं तो क्या इससे दोष होता है?

माँ – लोग गीता पाठ करने के बाद गीता–माहात्म्य का भी पाठ करते हैं।

मैं – समस्त गीता में निष्काम कर्म का उपदेश दिया गया है। गीता माहात्म्य में फल का उल्लेख किया गया है। फलाकांक्षा की गरज से लोग

गीता माहात्म्य पाठ करने पर गीता–शिक्षा की मर्यादा को हानि होती है। गीता पढ़ना ही काफी है, फिर गीता माहात्म्य क्यों पाठ करने आऊँगा?

अवनी बाबू – अगर फल की कोई आशा न रहे तो गीता–पाठ क्यों करने जाऊँगा?

मैं – निर्वाण की आशा में गीता–पाठ कर सकता हूँ। चित्त शुद्धि के लिए भी कर सकता हूँ, पर गीता माहात्म्य में पत्नी, अर्थ, रोग–शान्ति की भी बातें हैं।

माँ – अगर किसी को फलाकांक्षा न रहे तो वह अपने से गीता–महात्म्य पाठ न करे।

महापुरुष इच्छानुसार शरीर धारण कर सकते हैं

इन सब बातों के बाद श्रीयुक्त शची बाबू सोने के लिए जाने लगे। माँ ने बाधा देते हुए कहा – "रात तीन बजे के पहले हम लोगों में सोने का नियम नहीं है। हम लोगों की शाम अभी–अभी हुई है।"

माँ की बातें सुनकर सभी लोग हँस पड़े, क्योंकि उस समय रात के ११॥ बज चुके थे। यह सच है कि पिछले कई दिनों से हम लोग ३ या ३॥ बजे के पहले सोने नहीं जा रहे हैं। फिर भी लगातार इस प्रकार रात्रि–जागरण के कारण मैं थकावट अनुभव नहीं कर रहा हूँ। यह भी माँ की कृपा है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अवनी बाबू अपनी कहानी सुनाने लगे। वे एक बार सीताकुण्ड गये थे। पहाड़ पर चढ़ते समय उन्होंने एक बाघ देखा। बहुत बड़ा बाघ था। अवनी बाबू ने कहा – "बाघ को देखते ही मेरे होश उड़ गये। मैं किधर भागूँ, यह सोच नहीं पा रहा था। फलतः एक ही जगह खड़ा रहा। बाघ लेटा हुआ था। मुझे देखकर वह उठा और जंगल की ओर चला गया।"

माँ – उत्तरकाशी जाते[1] समय हम लोगों ने दो बाघ देखा था। उसमें से किसी ने कुछ नहीं कहा । हम दोनों जिस रास्ते से गुजर रहे थे, शायद उधर उनकी नजर नहीं गयी थी ।

शची बाबू–दोनों बाघ शायद भले थे । (सभी हँस पड़े) बाबा गंभीरनाथ की जीवनी में कहीं पढ़ा था कि जिन दिनों वे गया पहाड़ पर थे, उन दिनों एक बाघ उनके निकट नित्य आता था । एक बार जब उनके पास कुछ लोग बैठे थे तब अचानक वह बाघ आ गया। उसे देखकर लोग डर गये । बाबा ने उन लोगों से कहा कि डरने की जरूरत नहीं है । बाघ बाबा को प्रदक्षिणा करके चला गया । बाबा ने बताया कि वह बाघ एक महापुरुष था ।

माँ यह कहानी धीर होकर सुनती रहीं । मैंने माँ से पूछा– "माँ, क्या महापुरुष गण साँप–बाघ बन जाते हैं ? इससे उन्हें कौन सी सुविधा होती है ?"

यह प्रश्न सुनकर माँ ने मुँह फेर लिया ।

शची बाबूने हँसते हुए मुझे कहा–"इस बात का उत्तर माँ नहीं देंगी ।"

कुछ देर बाद माँ ने संक्षेप में उत्तर दिया । माँ ने कहा–"महापुरुष गण अपनी इच्छानुसार शरीर धारण कर सकते हैं । बाघ का रूप तो उनका यथार्थ रूप नहीं हैं । यह बातें आजकल नहीं कहना चाहिए। कारण इस पर कोई विश्वास नहीं करेगा ।"

मैं–महापुरुष गण अपनी इच्छानुसार शरीर धारण कर सकते हैं, यह मैंने मान लिया । लेकिन अनेक महापुरुष सर्प–देह धारण करते हैं; साधना दृष्टि से इस तरह का देह धारण कैसे उपयोगी होता है?

---

१. माँ केवल एक बार ज्योतिष बाबू को लेकर उत्तरकाशी गयी थीं।

माँ–देह–धारण लोगों के संस्कार के अनुसार होता है । जो जैसा देह–धारण की इच्छा प्रकट करते हैं, उनका वही देह हो जाता है। जीवितावस्था में सम्भवतः वे यह सोचते रहे कि वे लोग साँप या बाघ होते तो साधना–भजन में सुविधा होती । फलतः दूसरे जन्म में वे उन्हीं जीव–जन्तु के रूप में हैं । जैसे राजा भरत हिरण की चिन्ता करते रहे तो हिरण हुए थे ।

शाहबाग के कुत्ते की कहानी

इन बातों को कहते–कहते माँ शाहबाग के कुत्ते की कहानी सुनाने लगीं । माँ ने कहा–"शाहबाग में हमारे पास एक कुतिया आ गयी। कीर्तन के वक्त जब मैं नाचघर में बैठी रहती तब वह मेरी गोद में सिर रखकर कीर्तन सुनती थी । भावावेग में जब मेरे मुँह से स्तोत्र निकलता तब घुटनों के बल बैठकर उसे सुनती । अक्सर कीर्तन के बीच यह देखा जाता कि वह उछल रही है और चीत्कार कर रही है । जैसे नाचती हुई कीर्तन कर रही है । जब हरिलूट होता तब वह उछलकर बतासा खाती थी । लूट का बतासा खाने के लिए नहीं जाती थी । कारण कीर्तन के समय मेरी गोद में सिर रखकर सोयी रहती और जब "हरि–प्रीतिते हरि हरि बोल" कहने के साथ ही कीर्तन समाप्त होता तब वह शरीर झाड़कर प्रसाद पाने के लिए उठ बैठती थी । इसके बाद जब बतासा लुटाया जाता तब उसे पाने के लिए दौड़ जाती थी । दिन में एक प्रकार से वह हमारे पास नहीं आती थी । रात के वक्त कीर्तन में जरूर आ जाती थी ।"

खुकुनी दीदी–एक बार जाड़े के मौसम में उस कुतिया को कई बच्चे हुए । हम लोगों ने सोचा कि अपने बच्चों को छोड़कर वह कीर्तन में नहीं आयेगी । लेकिन ज्योंही कीर्तन आरम्भ हुआ त्योंही हाजिर हो गयी ।

माँ–कुछ दिनों बाद एक बकरा भी आ गया । मेरी एक जाँघ पर कुतिया और दूसरी जाँघ पर बकरा सिर रखकर कीर्तन सुनते थे। इस बकरे को एक बार कम्बल से ढक दिया था[1] ।

---

१. इस बकरे के बारे में एक और घटना हुई थी जिसके बारे में खुकुनी दीदी और श्रीयुत वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्याय एम० ए० महाशय के निकट सुन चुका हूँ। वह घटना यों है–शाहबाग में जो कालीमूर्ति रखी है, स्वप्न में वीरेन बाबू ने उनसे आदेश प्राप्त कर इस मूर्ति को पूजा चढ़ाया था। बाबा भोलानाथ ने पूजा की थी । श्री श्री माँ एक लाल कपड़ा ओढ़े देवी प्रतिमा के निकट सोयी हुई थीं । इस पूजा में बलि चढ़ाने के लिए एक बकरे का प्रबन्ध किया गया था। बलि देने के लिए जब वीरेन बाबू गँड़ासे पर सान चढ़ा रहे थे, ठीक उसी समय गँड़ासे की धार से उनकी एक अँगुली कट गयी। खुकुनी दीदी ने तुरंत इस घटना के बारे में माँ से कहा । माँ ने कहा–ठीक हुआ है । तुम वेल पत्र पर उस रक्त से थोड़ा रक्त लेती आओ । थोड़ा–सा रक्त ले जाकर दीदी ने माँ को दिया। उस रक्त को लेकर माँ ने क्या किया, यह दीदी नहीं जानती।

पूजा के बाद बकरे का बलिदान देने का प्रबन्ध किया गया । बकरे को देवी के निकट उत्सर्ग करने के बाद ज्योंही भोलानाथ ने गँड़ासा ऊपर उठाया त्योंही माँ ने आकर कहा–"इस बकरे का बलिदान नहीं होगा ।" भोलानाथ ने विरोध किया । इधर माँ ने के बदन पर हाथ फेरते हुई उसके गरदन पर अपना हाथ रख दिया । बलि नहीं चढ़ाया गया। तब माँ ने भोलानाथ के भतीजे श्रीयुत आशुतोष चक्रवर्ती को एक लाल धोती पहनने के लिए दी । अब तक माँ इसी धोती को ओढ़े सो रही थीं । इसके बाद आशु बाबू के माथे पर सिन्दूर का टीका लगाकर एक माला पहनायी गयी । माँ ने बकरे को गोद में उठा लिया। बाद में कुछ लोगों ने उस बकरे को उठाकर रमना के मैदान में छोड़ दिया। मैदान में छोड़ने के पहले माँ उस बकरे की पीठ पर अपना श्रीचरण फेरती रहीं । बकरे को मैदान में छोड़कर जब सभी लोग शाहबाग में आये तो देखा गया कि वह बकरा भी पीछे–पीछे चला आ रहा है । उस दिन से वह बकरा शाहबाग में रहने लगा । कभी–कभी वह माँ के बिछौने पर भी बैठा रहता था । अक्सर माँ उसका मुँह अपनी गोद में खींचकर उसे प्यार करने लगती थीं । एक दिन यह भी देखा गया कि माँ ने उसे कम्बल ओढ़ाया है । इसका कारण पूछने पर माँ ने बताया–"अगले जन्म में इसके पास कम्बल था । इस जन्म में भी इसने कम्बल ग्रहण कर लिया।"

कर्मक्षय से पूर्वस्मृति का जागरण

शची बाबू एक अन्य कुत्ते की कहानी सुनाने लगे । यह कहानी वे ढाका जिले के सुयापुर गाँव में सुन चुके थे । काफी लोगों ने इन्हें यह बताया था कि सारी घटना सत्य है ।

एक ब्राह्मण से एक मुसलमान ने कुछ रुपये उधार लिये थे, पर उधार चुकता करने के पहले ही वह मर गया । उस मुसलमान का एक लड़का था । वह लड़का इस कर्ज की बाबत जानता था या नहीं, कहा नहीं जा सकता । उसने कर्ज चुकाने से इनकार कर दिया। उसके पिता अक्सर स्वप्न में आकर उसे कर्ज अदा कर देने के लिए कहा करते थे । चूँकि वह सपने में देखता, इसलिए परवाह नहीं करता था। एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि उसके पिता कह रहे हैं–'तू कर्ज अदा नहीं कर रहा है, इससे मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।'

इस स्वप्न को देखने के बाद वह लड़का पण्डित जी के घर हाजिर हो गया । रुपये के बदले एक गाय और बछवा ले गया । गाय मूलधन के लिए और बछवा सूद के लिए । ब्राह्मण गाय और बछवा पाकर सन्तुष्ट हो गया । तभी उसने ब्राह्मण से कहा कि आप अपने कुत्ते को बुलाइये । ब्राह्मण ने अपने कुत्ते को बुलाया । कुत्ते के आने पर उसके गले से लिपटकर लड़के ने रोते हुए कहा – "पिताजी, अब तो तुम्हारा कर्ज अदा हो गया ।"

कुत्ते की आँखों से भी आँसू बहने लगे । इस प्रकार लगातार तीन दिनों तक वह आँसू बहाता रहा और फिर वहीं बैठे–बैठे मर गया ।

यह कहानी समाप्त होते ही माँ ने पूछा–"अच्छा, यह बताओ कि उस मुसलमान का जन्म कुत्ते में क्यों हुआ ?"

एक–एक व्यक्ति एक–एक बात कहने लगे । एक ने कहा– "कुत्ता स्वामी–भक्त होता है, इसलिए सेवा करके कर्ज अदा करने आया था ।"

शची बाबू–क्यों माँ, कुत्ता रोता क्यों रहा ?

माँ–उसकी पूर्वस्मृति जाग उठी थी । कर्मक्षय होने पर पूर्वस्मृति जाग उठती है । मनुष्य के बारे में भी ऐसा ही जानना । जब मनुष्य का कर्मक्षय होने लगता है तब उसकी पूर्वस्मृति जाग उठती है । उस मुसलमान का जन्म कुत्ते के रूप में शायद इसीलिए हुआ था कि मृत्यु के पूर्व उसके मन में कुत्ते की चिन्ता उत्पन्न हुई थी । व्यक्ति की मृत्यु के समय की चिन्ता से पराजन्म होता है ।

शुद्ध वासना संस्कार सृष्टि नहीं करता

वासना के द्वारा जन्म नियन्त्रित होता है, इस प्रकार की बातें होने लगीं ।

माँ ने कहना प्रारम्भ किया–"इस बार जब आसाम घूमने गयी थी तब कुछ पहाड़ी केलों के पौधे देखा । उनके फूल काफी लाल और सुन्दर थे । उस समय किसी ने कहा कि इन पेड़ों में केवल फूल ही नहीं होते, फल भी लगते हैं । बाद में जब परशुराम कुण्ड गयी तब मार्ग में उसी प्रकार केलों के पेड़ दिखाई दिये । इन फूलों की बात जबान पर लाते ही हमारा ड्राइवर गाड़ी रोक कर जंगल के भीतर चला गया । ड्राइवर गोरखा था । उसके साथ भुजाली थी। उस भुजाली से पेड़, फल, फूल सब काट लाया । लेकिन उसे ऐसा करने को किसी ने कहा नहीं था। उसने अपने मन से ऐसा किया। फूल को पास में रखकर देखने की इच्छा हुई तो तुरत वह वासना भी पूर्ण हो गई। इन पेड़ों में फल लगते हैं या नहीं, यह सन्देह हुआ था, उसका भी समाधान हो गया ।"

शची बाबू–माँ, तुम्हारी वासना तो सहज ही पूरी हो गयी, पर हम लोगों में अगर उस फूल को पाने की वासना हो तो क्या हमें जंगल में जन्म लेना पड़ेगा ?

माँ–हाँ, प्रबल वासना होने पर उससे संस्कार उत्पन्न होगा और उसे भोग करने के लिए जन्म ग्रहण करना पड़ेगा । इसीलिए तुम लोगों को वासना शुद्ध करने के लिए कहती हूँ । वासना शुद्ध होने पर वह अपने–आप पूर्ण हो जाती है । इसीलिए प्रत्येक कार्य भगवान् के उद्‌देश्य से करना चाहिए । एक बार साधना और वासना[1] मुझे देने के लिए फूलों की माला तैयार की थी । आश्रम आते समय वह माला साथ ले आयेंगी सोचकर रख दिया था । उन दिनों नन्दू[2] का घर साधना के घर के पास ही था । नन्दू उनके घर अक्सर जाया करता था। उस दिन नन्दू साधना के घर गया और लोगों की अजानकारी में माला उठाकर अपने घर चला आया । वह बच्चा था । कुछ देर तक माला लेकर खेलता रहा, फिर फेंक दिया । बाद में उस माला को पाकर एक अन्य व्यक्ति ने उसमें दो–चार नये फूल मिलाकर एक नयी माला बनाकर वह आश्रम में आया और मुझे पहनायी । साधना वगैरह आश्रम आकर मेरे गले में उस माला को देखकर अवाक् रह गयीं । इस प्रकार उनकी इच्छा पूर्ण हो गयी ।

श्री श्री माँ के शरीर में विविध यौगिक क्रियाओ का स्वतः स्फुरण

इसके बाद विमला माँ और निर्मला की स्थिति की चर्चा चल पड़ी । शची बाबू ने कहा–मैंने देखा है कि भावावस्था में विमला माँ की आँखें निस्पन्द हो जाती हैं । हाथ–पैर सख्त हो जाते हैं और भीतर असह्य पीड़ा अनुभव करती हैं । काफी देर तक बेहोश होकर पड़ी रहती हैं आदि ।

---

१. ये दोनों बहनें हैं । दोनों ही माँ के भक्त हैं । श्रीमती वासना इन दिनों बी० ए० पास करके अध्यापन कर रही हैं ।
२. स्वामी अखण्डानन्द जी के छोटे पुत्र ।

ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने श्री श्री माँ के पूर्व अवस्था के बारे में दो-एक बातें बतायीं ।

इसके बाद माँ स्वयं ही कहने लगीं-"मेरे भाव कुछ अलग किस्म के थे । हवा के वेग में जिस प्रकार कोई कपड़ा उड़ता जाता है और कोई जब उसे पकड़ने जाता तो सहज ही पकड़ नहीं पाता था, यह शरीर भी इसी प्रकार भावावस्था में उड़ता-लुढ़कता जाता था । कोई पास आकर पकड़ नहीं पाता था । भाव का खेल आरंभ होने पर शरीर के भीतर नाना प्रकार की क्रियाएँ आरम्भ हो जाती थीं । उन दिनों आहार नहीं करती थी, फिर भी शरीर काफी हृष्टपुष्ट था और सिंह की भाँति शक्ति थी । मैं आहार नहीं करती, यह बात मेरा चेहरा देखकर कोई कह नहीं सकता था । अक्सर शरीर अकड़ जाता। हाथ-पैर रक्तशून्य दिखाई देने लगते । कभी-कभी मुर्दे की तरह पड़ी रहती । भावावेश में शरीर को लेकर इस तरह का खेल होने पर भी शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा या दर्द नहीं होता था । कारण यह सब स्वभाव से होता था । हाथ-पैर का अकड़ना, सख्त होना, यह भी अन्य रूप है । लेकिन हाथ-पैर की मांसपेशी सख्त नहीं होती। वे काफी नरम रहते । लेकिन हाथ को स्पर्श करने पर ऐसा लगता जैसे वह सूखी लकड़ी है । शरीर के साथ इसका कोई सम्पर्क नहीं है ।

"अति अल्प आहार तथा अनाहार काफी दिनों तक थे । अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं किया । सब कुछ अपने आप होता रहा । शायद उन दिनों शरीर पर हठयोग की कोई क्रिया हो रही थी । लेकिन इस यौगिक क्रिया और सांसारिक क्रिया में सामंजस्य था । सारा दिन भावावेश में पड़ी रहती । शाम को उठकर रसोई बनाकर काफी लोगों को खिलाती थी । घर-गृहस्थी का कोई कार्य बाकी नहीं रहता था और दूसरी ओर यौगिक क्रियाएँ होती रहीं ।"

साधनाकाल में दैहिक यन्त्रणा के कारण और साधन के लक्ष्य

श्री श्री माँ अपने बारे में कहते–कहते पुनः विमला माँ की स्थिति के बारे में विश्लेषण करने लगीं ।

माँ ने कहा–"भावावेश में इनके शरीर में जो जलन होती है, वह बन्धन की जलन है । बाधा पाने पर यह जलन उत्पन्न होती है। क्योंकि भाव में इस प्रकार की बाधा पाना आवश्यक है, इस प्रकार की बाधाओं से धैर्य की शिक्षा प्राप्त होती है । भाव के समय जो पीड़ा–वेदना का शरीर में अनुभव होता है, उसका कारण यह है कि भाव के दबाव से ग्रन्थियाँ टूटने लगती हैं । नाम के गुण से सब होता है । पुरानी ग्रन्थियाँ टूटकर पुनः नये रूप में शरीर का निर्माण होता है । इसीलिए कहती हूँ कि मन को सदा नामरूप का भोजन देते रहो। लेकिन नाम में जो आसक्ति है, यह भी एक प्रकार का बन्धन है। नाम करने या सुनने में जो अच्छा लगता है, उसी से समझा जाता है, कि वहाँ वासना के बीज हैं । वासना रहने पर बन्धन । इस स्थिति से मुक्त होना चाहिए । इसीलिए बाधा की जरूरत है । आकांक्षित वस्तु के भोग में बाधा पाने पर यन्त्रणा होती है । इसी यन्त्रणा को सह्य करते–करते धैर्य का अनुभव होता है । यही धैर्य आगे चलकर समता लाती है । समता प्राप्त करना ही साधना का लक्ष्य है । (मुझे लक्ष्य करती हुई) पिताजी ने उस दिन मुझसे पूछा था कि धर्म–भाव के विकास के मार्ग में लोगों को बाधा प्राप्त होती है, क्या यह धर्म–राज्य के नियम हैं ? इसके उत्तर में मेरा कहना है कि यही नियम है । इन्ही बाधाओं में से क्रमशः धैर्य के भीतर होकर समता प्राप्त होती है । उस समय एक ऐसी स्थिति आती है कि लाभ में सुख नहीं है और हानि में दुःख नहीं है । जीवन्मुक्तों का यही भाव होता है । इस भाव का आभास शिशुओं में देखा जाता है । उनकी यह हँसी यह रोदन ।

"धैर्य जब तक चरम सीमा तक नहीं पहुँचता तब तक शान्त भाव नहीं आता । साधना में जो ज्वाला उपस्थित होती है, वह तो अच्छी ही है । ठीक लकड़ी की तरह जलकर अंगार और बाद में राख बन जाना तभी समता आती है । तुम लोगों ने देखा होगा कि राख को पानी में मिलाने पर वह पानी के साथ मिल जाती है और शरीर में पोतने पर शरीर में मिल जाती है । इसी प्रकार साधना में ज्वाला–यन्त्रणा अनुभव करते–करते एक बार समता प्राप्त कर लेने पर, उस समय किसी भी स्थिति में क्यों न आओ, कोई तुम्हारी शक्ति नष्ट नहीं कर सकता । साधना करते समय कामना–वासना के साथ जो लड़ाई करनी पड़ती है, उसी को शास्त्रों ने देवासुर संग्राम कहा है । यह सब ज्वाला–यन्त्रणा आने पर गुरु पर निर्भर रहना चाहिए। भाव के विकास में बाधा पाने पर सोच लेना चाहिए कि गुरु बाधा उत्पन्न कर रहे हैं । सहायता पाने पर सोचना चाहिए कि वे सहायता कर रहे हैं । इस प्रकार धैर्य धारण करते रहने पर अन्त में समता प्राप्ति होती है ।"

"(शची बाबू को लक्ष्य करती हुई) भावावेश में तुमने जो आंखों को निस्पन्द होते देखा है, वह कुछ नहीं हैं । भाव के अलावा कुछ दिनों तक त्राटक–साधना का अभ्यास करने पर आंखें उसी प्रकार निस्पन्द हो जाती है । नाम के गुणों से भी ऐसा हो सकता है । भाव के वेग में कुछ देर तक ज्ञानशून्य हो जाने के कारण ऐसा हो जाता है । एक प्रकार से यह हिस्टिरिया रोग के जैसा होता है । सांसारिक शोक–दुःख से आहत होकर लोगों का जिस प्रकार ज्ञान लोप हो जाता है, उसी प्रकार धर्म सम्बन्धी भावों का वेग सह्य न कर पाने के कारण ज्ञान गायब हो जाता है । दोनों का रूप एक ही है, केवल कारण भिन्न है । भावावस्था में जब व्यक्ति अवसन्न हो जाता है तब भी उनके शरीर में भोग के बीज रह सकते हैं, क्योंकि उस तरह पड़े

रहना उन्हें अच्छा लगता है । उस वक्त उन्हें दूसरों के द्वारा स्पर्श करना या बातें अच्छी नहीं लगती । अच्छा लगना या न लगन भोग के ही लक्षण हैं । इस प्रकार के अवसन्न भाव को समाधि नहीं कहा जा सकता । अवसन्नता शरीर की अवस्था है, समाधि शरीर की अवस्था नहीं हैं ।''

साधना के विभिन्न स्तर या स्थितियाँ

''सर्वदा नाम करते–करते अन्त में नाम के गुणों से शरीर में नाना प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । नाम करके किंवा अन्य किसी प्रकार से एकमुखी वृत्ति होने पर भगवद् भाव आकर शरीर पर लीला आरम्भ करता है और इसके कारण शरीर मानो जगत् से अलग–थलग हो जाता है । उस समय मैं इस जगत् का प्राणी हूँ या मेरे पत्नी–पुत्रादि हैं, यह भाव स्मरण नहीं रहता ।''

''लोग साधारणतः नाम किंवा मूर्ति की सहायता से एक लक्ष्य होते हैं । एक नाम जपते जपते किंवा एक मूर्त्ति का ध्यान करते–करते उसी नाम या मूर्ति के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है । इसीलिए एक–एक व्यक्ति में एक–एक नाम के भाव की उद्दीपना होती है । कीर्तन के समय अगर किसी का ताल, भाव, मूर्ति एक हो जाता है तो शरीर में क्रिया आरम्भ हो जाती है । शरीर भावावेश में नाना भाव में खेलने लगता है । अगर किसी कारण से ताल भंग हो जाता है तो शरीर पड़ा रहता है और निश्चल भाव से जमीन पर पड़ा रह जाता है । दूसरी ओर एक ताल या गति देर तक चलाते रहने पर भावों के खेल समान गति से नहीं होते । क्योंकि वह शरीर की शक्ति के द्वारा सीमाबद्ध होता है । भावों का खेल कुछ देर खेलने के बाद बन्द हो जाता है। जब वह बन्द हो जाता है तब शरीर का पतन होता है और पहले की तरह सारा शरीर निश्चल होकर पड़ा रहता है । यह समाधि की स्थिति नहीं हैं, जड़त्व का भाव है ।

"इस प्रकार कुछ देर तक संज्ञाशून्य रहने के बाद साधक को जब होश आता है तब वह रोने लगता है । यह रोना ठाकुर के अभाव के लिए, अर्थात् भावावेश में जो मूर्ति दिखाई देती है, भाव समाप्त होने पर वह चली जाती है। साधक संज्ञा प्राप्त कर इस अभाव के लिए रोने लगता है । विरह का दुःख दूर होने पर साधक जब स्थिर हो जाता है तब उसमें जागतिक भाव प्रकट होने लगते हैं, उस वक्त वह पुनः सामान्य लोगों की तरह आचार–व्यवहार करने लगता है । इसे साधना की प्रथम अवस्था कहा जाता है । सभी की यही स्थिति होती है, ऐसी बात नहीं है; पर साधारण भाव में इस स्थिति का वर्णन किया गया ।"

"साधना के द्वितीय स्तर का रूप यों हैं–जिस नाम या मूर्ति को लेकर साधक एक लक्ष्य होता है, वही क्रमशः फैलता रहता है। अर्थात् इस स्थिति में विशेष नाम या विशेष मूर्ति की सहायता के बिना भी भाव का प्रकाश होता है । किसी भी नाम या किसी भी मूर्ति के द्वारा भाव की उद्दीपना होती है । यही साधना की उन्नति के लक्षण हैं । इसी को मैं 'ताल–बेताल होना' कहती हूँ । इस स्थिति में शरीर के बाह्यिक लक्षणों में परिवर्तन होता है और सांसारिक आसक्ति में कमी आ जाती है । इस समय साधक को जल, स्थल, आकाश में, सर्वत्र इष्ट मूर्त्ति दिखाई देने लगती है। यह भी स्थूल अवस्था हैं, क्योंकि अभी तक गुरु खण्ड रूप में आ रहे हैं । इन सारी स्थितियों को तुम लोग ठीक से नहीं समझ सकोगे और न मैं तुम लोगों को ताल, भाव आदि की उपमा देकर समझा सकूँगी । स्थूल भाव में बातचीत के जरिये समझाया जा सकता है । सूक्ष्म भाव समझाना कठिन है । उसे तो केवल अनुभव किया जा सकता है । संक्षेप में समझाना पड़े तो यही कहा जा सकता है कि गुरु जब तक खण्ड भाव में आते हैं अथवा खण्ड–खण्ड भाव में गुरु की उपलब्धि होती है तबतक स्थूल भाव रह

जाता है । बाद में एक अखण्ड सत्ता का बोध होता है । जैसे मेरा हाथ मैं हूँ, पैर भी मैं हूँ, बाल भी मैं हूँ; दूसरी ओर हाथ–पैर, बाल आदि समष्टि रूप में मैं ही हूँ । जब यह भाव आता है तब गुरु–संस्कार का भाव दूर हो जाता है ।''

''नाम का कीर्तन सुनकर जब शरीर पर यन्त्रणा अनुभव हो तब इसे साधना की प्रथम अवस्था समझना चाहिए । यह दाँत निकलने की स्थिति जैसी है । देखा होगा कि जब बच्चों के दाँत निकलते हैं तब बुखार, पेट की बीमारी आदि उपसर्ग होते हैं । दाँत निकलने के बाद कितने अनन्त प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं, उसे बताकर उसका अन्त नहीं किया जा सकता । एक बार एक–एक कर दाँत गिरते रहते हैं । दाँत गिर जाने की स्थिति को मैं वेदान्त या समता की स्थिति कहती हूँ । जब तक बेदन्त नहीं हुआ जाता तब तक साधना चलती रहती है ।''

धर्म का सम्बन्ध बंधन नहीं

आज शाम के समय एक घटना हुई जिसका उल्लेख नहीं कर सका हूँ । शाम के बाद माँ को लेकर औरतें आमोद कर रही थीं। उस समय हम लोग बाहर बैठे बातचीत कर रहे थे । ठीक इसी समय खुकुनी दीदी मुझे बुलाकर भीतर ले गयीं । जब मैं श्री श्री माँ के निकट हाजिर हुआ तब खुकुनी दीदी ने मुझसे कहा–''आज आपका एक नया सम्बन्ध हुआ । दीदी (अर्थात् मेरी पत्नी) ने प्राणकुमार बाबू की पत्नी को माँ कहकर बुलाया हैं इसलिए यही सम्बन्ध यहीं पक्का हो गया ।''

यह बात सुनकर मैं चुप होकर खड़ा रह गया । श्री श्री माँ मुझे चिंतित देखकर बोली–''पिताजी, इस मामले में तुम्हें कुछ करना नहीं है ।''

मैंने हँसकर कहा–"मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं तो दामाद बन गया हूँ ।"

इस रिश्ते की घटना शायद आज दोपहर को हुई थी । दोपहर को एक हँडिया दही असावधानीवश श्रीयुत् शची बाबू के पैर से लगकर गिर गया था । यह दृश्य देखकर माँ ने कहा था कि दही गिर जाना एक शुभ लक्षण है । बहरहाल जब यह रिश्ता जोड़ा जा रहा था तब पास में अधिक लोग नहीं थे । कुछ देर बाद सुनने में आया कि प्राणकुमार बाबू की पत्नी को कुछ हो गया है । प्राणकुमार बाबू की बड़ी लड़की (श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुह महाशय की पत्नी) ने आकर माँ से पूछा–"माँ क्या हुआ है ?"

माँ ने हँसकर कहा–"अपनी माँ से पूछो ।"

उसने सरल विश्वास के साथ अपनी माँ से पूछा–"माँ, तुम्हें क्या हुआ है ?"

यह बात सुनकर सभी हो–होकर हँस उठे । इस घटना को लेकर लोग हँसी–मजाक कर रहे थे । तभी माँ उस स्थान से उठ गयीं । मैंने माँ के पास जाकर पूछा–'माँ, तुम तो लोगों का बंधन मोचन करने आयी हो । इधर देख रहा हूँ कि स्वयं ही नये बन्धनों की सृष्टि कर रही हो ।"

माँ ने कहा–"अगर यह कहते हो तो सुनो, यह जो धर्म का सम्बन्ध है, यह बंधन का कारण न होकर बल्कि बंधन के मोचन में सहायता करता है । इससे तुम्हें कोई हानि नहीं होगी ।"

श्री श्री माँ की बातें सुनकर मैं आश्वस्त हो गया । मंगलमयी के कार्य के प्रति जो संदेह किया था, उसके प्रति अफसोस होने लगा।

१ जनवरी, सन् १९३७ ई., शुक्रवार । आज दोपहर १२ बजे मुझे कलकत्ता वापस जाना है; पर माँ ने कल ही कह दिया था कि

१२ बजे में रवाना नहीं हो सकता, कारण बेबी दीदी आज माँ को दोपहर के समय नाव पर भोग चढ़ायेंगी । मैं शाम की गाड़ी से वापस जा सकता हूँ । शाम की गाड़ी से भी जा सकता हूँ या नहीं, यह प्रश्न माँ से पूछने पर वे बोलीं–"सवेरे बिछौना वगैरह बाँधकर रख देना । अगर जाना हुआ तो चले जाना वर्ना उसे खोल लेना ।"

सवेरे सोकर उठते ही अपना सामान ठीक–ठाक करने की तैयारी कर रहा था । ठीक इसी समय खुकुनी दीदी आकर मुझसे बोलीं– "माँ ने कहा है कि आज आप सभी के साथ नाव पर न जाकर अलग नाव पर जाइयेगा । मैं खास मौके पर आपकी नाव पर माँ को ले आऊँगी । उस समय दीदी (मेरी पत्नी) के साथ माँ की बातचीत होगी।"

यह भी सुना कि माँ आज किसी वैष्णवी के यहाँ जायेंगी जो पिछले २२ वर्षों से अनाहार हैं ।

सेवादासी और श्री श्री माँ

हम लोगों को अकेले जाना पड़ेगा सोचकर काफी देर तक धर्मशाले में बैठे रहे । माँ के साथ काफी लोग नाव पर घूमने चले गये । बाद में धर्मशाला से निकलकर एक नाव के द्वारा चल पड़े । कुछ दूर आने पर देखा कि बड़ालघाट पर श्री श्री माँ तथा अन्य लोगों की नौकाएँ खड़ी है। सभी लोग माँ के साथ वैष्णवी से भेंट करने गये हैं । दो–एक साथी मिल जाने पर मेरी पत्नी लड़कियों को लेकर माँ के पास चली गयी । मेरे सिर में दर्द था, इसलिए मैं नाव पर सो गया । कुछ देर सोने के बाद नाव से बाहर आया ।

मुझे देखकर एक माँझी ने कहा–"माँ ने सभी लोगों को वैष्णवी के आश्रम में जाने को कहा है । यह समाचार एक व्यक्ति आकर कह गया है ।"

यह बात सुनकर मैं भी चल पड़ा । लेकिन कहाँ जाना पड़ेगा, पता नहीं । न तो वैष्णवी का नाम मालूम है और कहां आश्रम है, यह भी ज्ञात नहीं । मैंने घाट पर दो–तीन व्यक्तियों से पूछा कि नवद्वीप में एक ऐसी वैष्णवी हैं जो पिछले २२ वर्षों से आहार नहीं करतीं। उनका आश्रम कहां हैं ? जिन लोगों से यह सवाल किया, वे सब नवद्वीप के रहनेवाले ही थे, पर उन्हें ऐसी वैष्णवी का पता ज्ञात नहीं था । बड़ालघाट से जो सड़क नगर की ओर गयी हैं, उसी पर मैं चलने लगा । कुछ दूर आगे बढ़ने पर देखा कि एक परिचित व्यक्ति खड़ा है । ये कलकत्ता के निवासी है, पर इन दिनों नवद्वीप में रहते है । नित्य हम लोगों के धर्मशाला में आकर माँ को भजन गाकर सुनाते है । उन्होनें मुझे देखते ही कहा–"मैं आपके लिए यहाँ खड़ा हूँ । (एक मकान की ओर इशारा करते हुए) इसी मकान में माँ है ।"

उक्त सज्जन ने वह मकान दिखाया वर्ना मैं कभी भी वहां तक नहीं पहुँच सकता था । बहरहाल, उस मकान में प्रवेश करते ही देखा– एक प्रकाण्ड मन्दिर है । मन्दिर के भीतर राधा–कृष्ण की मूर्ति है। श्रीकृष्ण की मूर्ति देखने में सुन्दर है । मन्दिर के बरामदे पर श्री श्री माँ तथा अन्य साथीगण बैठे थे । मन्दिर के सामने एक छोटा–सा आंगन है । आंगन में एक फूल तथा कुछ तुलसी के पौधे लगे हैं । बायीं ओर छोटे–छोटे कमरे हैं । मन्दिर के विग्रह का नाम गोविन्दजी है । वैष्णवी के उपास्य देवता। वैष्णवी का नाम सेवादासी है। जब मैं मन्दिर के बरामदे में पहुँचा तब प्रसाद वितरण हो रहा था । किंचित् प्रसाद मुझे भी मिला । मैंने सोचा कि मेरी किस्मत अच्छी है, क्योंकि मैं सबके अन्त में आया हूँ और वह भी अनिच्छापूर्वक । मेरे आने के बहुत पहले ही प्रसाद वितरण का कार्य समाप्त हो जाना चाहिए था ।

माँ तथा सेवादासी के सामने ही खुकुनी दीदी मुझे वैष्णवी का परिचय देने लगीं । माँ हँसती हुई मेरी ओर देखने लगीं । दीदी सेवादासी को दिखाती हुई कहने लगीं–"आपका मकान ढाका जिला के माणिकगंज महकमा में हैं । पिछले २२ साल से आप भोजन नहीं कर रही हैं। आज से २२ वर्ष पूर्व एक दिन गोविन्दजी ने इनके सामने प्रकट होकर कहा था–'आज से तुम्हारे समस्त बहिर्द्वार बन्द कर दे रहा हूँ और तुम्हारा समस्त भार ग्रहण कर रहा हूँ ।'"

"उसी दिन से आप न तो आहार करती हैं और न मल–मूत्र त्याग करती हैं । यहाँ तक कि गोविन्दजी का चरणामृत मस्तक पर धारण करती हैं, पर मुँह में कुछ भी नहीं डालतीं । आप गोपालजी से बातचीत करती हैं और बिना उनके आदेश के बाहर कहीं नहीं जातीं ।"

खुकुनी दीदी की बातें सुनने के बाद समझते देर नहीं लगी कि नवद्वीप के निवासी क्यों नहीं इन्हें जानते । चूँकि आप आश्रम से बहुत कम बाहर निकलती हैं, इसलिए इन्हें कोई नहीं जानता ।

दीदी ने आगे कहा–"कल गोविन्दजी ने इन्हें बताया कि जिस शरीर में गोविन्दजी बिराजमान हैं, वह शरीर नवद्वीप में मौजूद है। तुम स्वयं जाकर उनका स्वागत करो । यही वजह है कि कल शाम को वैष्णवी हम लोगों के धर्मशाले में जाकर माँ को निमन्त्रण कर आयी हैं । यहाँ आने पर माँ ने इनसे पूछा–'माँ गोविन्दजी ने आपको क्या कहा है ?'

इन्होंने उत्तर दिया–'जिस शरीर में गोविन्दजी विराजमान हैं वह नवद्वीप में है । मैं स्वयं जाकर तुम्हारा स्वागत करते हुए ले आऊँ?' माँ ने हम लोगों के सामने सेवादासी से पूछा–'कितने दिनों से इस शरीर में गोविन्दजी विराज रहे हैं ?'

सेवादासी–बचपन से ही ।

माँ–तो क्या यह शरीर अच्छा है ?''

इन बातों को सुनकर मैं माँ की ओर अवाक् होकर देखने लगा। मन ही मन सोचने लगा कि क्या माँ इस समय स्पष्ट रूप से अपना आत्म–परिचय दे रही हैं ? देहरादून में जो परिचय मेरे सामने दार्शनिक तत्व के माध्यम से अस्पष्ट रूप में दे चुकी हैं, आज उसी को सेवादासी के माध्यम से दे रही हैं । बाजितपुर में निशी बाबू[१] के प्रश्न के उत्तर में स्वयं को ''पूर्ण ब्रह्म नारायण'' कहते हुए प्रकट किया था । आज पुनः सेवादासी की जबानी अपने को 'गोविन्द' कहकर परिचय दे रही हैं । यह सब सोचते–सोचते मेरी आँखें भर आयी । रह–रहकर माँ मेरी ओर देखती हुई हँसती रहीं ।

---

१. बाजितपुर में रहते समय ही श्री श्री माँ के शरीर में विभिन्न योग–क्रियाएँ प्रकट होती रहीं । साधारण लोग इसका मर्म नहीं समझ सके थे । कोई इसे भौतिक आवेश, कोई हिस्ट्रिया रोग समझता रहा । कुछ लोग इसके इलाज के लिए भोलानाथ को सलाह देते रहे । श्री श्री माँ के ममेरे भाई श्रीयुत निशिकान्त भट्टाचार्य महाशय उन दिनों बाजितपुर में रहते थे । वे भी श्री माँ को डाक्टर या कविराज को दिखाने के पक्षपाती थे । एक दिन श्री श्री माँ अपने शयनकक्ष में कुण्डली बनाकर बैठी थीं । ठीक उसी समय नाना प्रकार के आसन–मुद्रा होती रहीं । यह दृश्य देखकर निशि बाबू ने जरा झल्लाकर बाबा भोलानाथ से कहा कि वे यह सब घटना देखते हुए भी क्यों नहीं यथोचित चिकित्सा कराते । चुपचाप बैठे क्यों हैं ? यह सब बातें श्री श्री माँ के सामने हुई । यह सुनकर माँ ने निशि बाबू की ओर देखते हुए पूछा– 'तुम क्या करने को कहते हो ?' जो कि माँ ने इस बात को स्वाभाविक ढंग से ही कहा था, फिर भी इन बातों को सुनते ही डर कर वे कई कदम पीछे हट गये थे । लगभग अपने अनजाने ही उन्होंने माँ से पूछा–''आखिर तुम कौन हो ?''

उत्तर में माँ ने कहा था–''पूर्ण ब्रह्मनारायण ।''

इस कहानी को मैं श्रीयुत निशिकान्त भट्टाचार्य की जबानी सुन चुका हूँ ।

माँ ने सेवादासी से पूछा—"तुम तो गोविन्द के साथ बातें करती हो । तुम्हारे साथ गोविन्द का क्या रिश्ता है ?"

सेवादासी को नीरव रहते देख माँ ने पुनः कहा—"अच्छा, मेरे कानों में चुपके से बता दो ।"

इतना कहकर माँ अपना कान उसके मुँह के पास ले गयीं । सेवादासी ने फुसफुसाकर कुछ कहा । माँ ने हम लोगों से कहा—"यह कह रही हैं कि 'जिन्हें देह–प्राण समर्पित किया है, उसके साथ कौन–सा रिश्ता होता है ?' अब तो तुम लोग समझ गये होगे कि गोविन्द के साथ इनका कौन–सा रिश्ता है ?"

सेवादासी का मुँह दिखाई नहीं दे रहा था । वे घूँघट काढ़े बैठी थीं । सुना कि आपकी उम्र ४६ वर्ष है । पति के जीवित रहते समय आपमें यह भाव हुआ था । पति की मृत्यु के बाद वे गाँव से नवद्वीप चली आयीं और यहाँ गोविन्दजी का मन्दिर विग्रह स्थापित कर सेवा–पूजा कर रही हैं ।

सेवादासी के जीवन के बारे में अन्य बातें नहीं सुनने में आयीं । मैं बार–बार माँ की ओर देखता रहा । माँ आज आनन्द में मग्न हैं । श्रीयुत् प्राणकुमार बाबू की पत्नी माँ के निकट बैठी थीं । माँ उनके गले में हाथ डालकर सेवादासी से कहने लगीं—"माँ, माँ, तुम मेरी योगिनी माँ को देखो ।"

प्राणकुमार बाबू की पत्नी लज्जित हो उठीं । माँ एक बार उनकी ओर एक बार मेरी ओर देखती हुई हँसने लगीं । इस हँसी का अर्थ यह है शायद कि कल इसके साथ तुम्हारा रिश्ता कायम किया था, यह देखकर तुम चिन्तित हो उठे थे । आज समझ रहे होगे कि किसके साथ तुम्हारा रिश्ता किया है ।

इसके बाद जरा जोर से बोल उठीं—"मेरी बासन्ती माँ कहाँ हैं ?"

मेरी पत्नी को बुलाकर लाया गया । माँ ने सेवादासी से कहा– "यह है मेरी बासन्ती माँ । देखो । कृष्ण योगे रात्रि जेगे आँखि ढुलू–ढुलू, माँ की आँखें ढँपती जा रही हैं ।"

मेरी पत्नी शरमाकर पीछे हट गयी । इधर मैं सोचने लगा कि माँ यह सब क्या कर रही हैं ? कृष्णयोग में कभी रात जागते मैंने नहीं देखा । यह ठीक है कि नवद्वीप आने के बाद से माँ के साथ रात्रि जागरण करना पड़ा है । मैं यही सब सोच रहा हूँ और उधर माँ मेरी ओर देखती हुई खूब हँस रही हैं । माँ की सारी बातें आज रहस्यमयी लग रही हैं ।

इस तरह कुछ देर तक विनोद करने के बाद माँ ने सभी को कीर्तन करने को कहा । महिलाएँ गाने लगीं–

"श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द"

गायन आरम्भ होने के साथ ही सेवादासी भावावेश में आ माँ की गोद में गिर पड़ीं और दोनों हाथों से माँ को इस कदर जकड़ लिया जैसे लोहे की जंजीर से बाँध दिया हो । गायन के साथ–साथ उनका तन–बदन रह–रहकर सिहर उठता था ।

कुछ देर बाद कीर्तन समाप्त हो गया । सभी सेवादासी को देखने के लिए व्यस्त हो उठे । माँ सेवादासी को दिखाती हुई बोलीं–"देखो, कितना कसकर जकड़ रखा है । (सेवादासी के हाथों की अंगुलियाँ दिखाती हुई) देखो, दोनों हाथों की अंगुलियाँ किस कदर फँसा रखी है । इसे छुड़ाना कठिन हो रहा है । तुम लोग अगर खींचकर खोलना चाहो तो खोल नहीं सकते ।"

बाद में हम लोगों की ओर देखती हुई कहने लगीं–"देखो, यह मुझे ले जा रही है । तुम लोग मुझे छुड़ा लो ।"

माँ की बातें सुनकर मैं डर गया । सोचा, यह कौन–सी परेशानी आ गयी । मैंने खुकुनी दीदी से कहा–"दीदी, खड़ी–खड़ी क्या देख रही हो ? जाइए, जल्दी से जबरन माँ को छुड़ा लीजिए ।"

दीदी के अलावा मां को और कोई छुड़ा नही सकता, मुझे ऐसा लगा । दीदी ने भी मेरे भय से संक्रमित होकर माँ को जाकर पकड़ लिया । कुछ देर बाद दीदी वापस आकर बोलीं–"माँ ने मुझसे कहा कि तुम मुझे छोड़ दो । मैं थोड़ी देर में आती हूँ ।" यह सुनकर मैं निश्चिन्त हो गया ।

इधर माँ हँसती हुई बार–बार सेवादासी से कहती रहीं–"मुझे छोड़ दो, छोड़ दो ।"

सेवादासी के जो दो–चार भक्त थे, उन लोगों ने हमें कीर्तन करने को कहा । इस आदेश के अनुसार पुनः कीर्तन प्रारम्भ हुआ । माँ ने हाथ उठाकर हमें कीर्तन करने को कहा । शची बाबू और अवनी बाबू नृत्य करते हुए कीर्तन करने लगे । आँखों से अश्रुधारा बहने लगी । इस शोरगुल से जरा दूर हट कर मैं आँखें बन्द किये बिना नाम जप रहा था । उस समय वहाँ भाव की बाढ़ आ रही थी । हम सब उसमें तैर रहे थे ।

ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने मुझे धक्का देते हुए कहा–"आप यहाँ कोने में क्यों खड़े हैं ? आकर देखिए, माँ नृत्य कर रही हैं ।"

यह बात सुनते ही मैं भीड़ में पुनः प्रवेश कर गया । वहाँ जाकर एक अपूर्व दृश्य देखा । श्री श्री माँ प्राणकुमार बाबू की पत्नी के गले में एक हाथ डालकर दूसरा हाथ कीर्तन की ताल पर हिला रही हैं। प्राणकुमार बाबू की पत्नी के सिर पर आंचल नहीं है । सिर के बाल अस्त–व्यस्त हो गये हैं । आँखें बड़ी–बड़ी हो गयी हैं । आँख और मुँह से एक अस्वाभाविक ज्योति प्रकट हो रही है । एक प्रकार से

उन्मत्त होकर नृत्य कर रही हैं । माँ जिसे स्पर्श कर रही हैं, उसकी यही दशा हो रही है । आज तक जिसे कवि की कल्पना समझता रहा, वही आज वास्तव में परिणत हुआ । भाव संचार शरीररूपी नौका किस प्रकार बेसम्हाल हो जाता है, उसे आज अवाक् होकर देखने लगा । भूलकर भी मन में यह विचार नहीं आया कि इसमें कुछ कृत्रिमता है । प्राणकुमार बाबू की पत्नी को आज सात दिनों से देखता आ रहा हूँ । वे अत्यन्त शान्त प्रकृति की महिला हैं । कभी जबान नहीं खोलतीं। वृद्धा होने पर भी घूँघट काढ़कर चुपचाप सबकी सेवा करती आ रही हैं । वे ही आज इतने पुरुषों के सामने, स्वामी–पुत्र के सामने आत्महारा होकर नृत्य कर रही हैं । यह दृश्य बिना देखे विश्वास नहीं किया जा सकता । इधर माँ तो हास्य का भण्डार वितरण कर रही हैं । एक दिव्य ज्योति से उनकी आकृति उद्भासित है । गीत के प्रत्येक ताल पर हाथ बड़े सुन्दर ढंग से हिला रही हैं । लेकिन माँ में भावावेश तनिक भी नहीं है । भाव कल्लोलित इस जनसमुदाय में केवल माँ की आकृति शान्त और हास्यमयी है ।

सेवादासी अभी तक अज्ञानावस्था में पड़ी रहीं । इधर नृत्य और कीर्तन जब चल रहा था तब अचानक न जाने कहाँ से एक वैष्णवी आकर वीरता के साथ भीषण रूप में हाथ हिलाती हुई नृत्य करने लगी । गोविन्द विग्रह की ओर निष्पन्द दृष्टि से देखती हुई अपने नृत्य से मन्दिर के वातावरण को कम्पायमान कर रही थीं । कभी आगे और कभी पीछे आ–जा रही थीं ।

ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने शची बाबू से कहा–"वैष्णवी की आँखों की ओर देखने को माँ ने आपसे कहा है ।"

शची बाबू मेरे पीछे खड़े थे । दीदी की बात मैंने सुन ली । शची बाबू वैष्णवी की ओर गौर करने लगे । कल रात को इसी दृष्टि की चर्चा हो रही थी । माँ ने कहा था कि त्राटक साधना करने या नाम

के गुणों से आँखों की दृष्टि निस्पन्द हो जाती है । वैष्णवी की आँखें आज जो निस्पन्द हुई हैं, वह शायद नाम के गुण के कारण ही ।

मैंने शची बाबू से कहा–"कहिये, कल रात को त्राटक साधन के बारे में चर्चा होती रही । आज उसे आपने देख लिया !"

शची बाबू ने कहा–"कल साधना के बारे में जितनी चर्चाएँ हुई थीं, आज माँ ने उसे दिखा दिया ।"

कुछ देर कीर्तन होने के बाद माँ नाव पर वापस आने के लिए तैयार हो गयीं । मैंने माँ को कहते सुना–अब मैं चल रही हूँ । मां (अर्थात् सेवादासी) जब उठकर बैठें तब इनसे कहना कि मैं तो अभी यहीं हूँ । इच्छा होने पर माँ मुलाकात कर सकती है ।

माँ चली गयीं । पता नहीं किस वजह से मैं पिछड़ गया । कुछ देर बाद देखा कि सेवादासी उठकर बैठ गयीं । त्रिगुणा बाबू आदि उन्हें प्रणाम कर रहे हैं । मेरी भी इच्छा हुई कि जाकर प्रणाम करूँ। पास जाकर मैंने भी प्रणाम किया ।

वैष्णवी माताजी ने कहा–"बाबा, गोविन्द को मत भूलना ।"

मैंने कहा–"आप यही आशीर्वाद दें ।"

उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा ।

नाव पर आते ही पता चला कि माँ वंशीदास बाबाजी से मुलाकात करने गयी हैं । वंशीदास बाबाजी का अखाड़ा कहाँ है, मुझे पता नहीं । फलतः वहाँ जाने के लिए तैयार नहीं हुआ ।

गंगा में भ्रमण एवं गंगा को फल भेंट करने का उद्देश्य

वंशीदास बाबाजी के अखाड़े से वापस आकर श्री श्री माँ सीधे हमारी नाव पर आयीं । मैं नाव के पिछले भाग पर बैठा था । वहीं से माँ को प्रणाम किया । माँ नाव के सामने बैठीं । खुकुनी दीदी को मेरे पास जाने को बोलीं । अचानक माँ ने मुझसे पूछा–"पिताजी, माताजी (अर्थात् मेरी पत्नी) रो क्यों रही थी ? क्या तुम भी रोते रहे ?"

माँ ने यह प्रश्न क्यों किया, उसका कारण समझ नहीं सका। मेरी आकृति पर विषाद के चिह्न तो शायद नहीं थे । श्री श्री माँ हमारी नाव पर बैठी हुई हैं । खुकुनी दीदी के साथ तरह–तरह की बातें कर रहा था । सच तो यह है कि मैं आनन्द से विभोर था। ऐसी हालत में विषाद कहाँ से आता । लेकिन इधर माँ पूछ रही हैं कि मैं और मेरी पत्नी रोती रही या नहीं ? मैंने कहा–"मुझे कुछ नहीं मालूम ।"

मेरा उत्तर सुनकर माँ हँस पड़ीं, पर कुछ बोलीं नहीं ।

महिलाओं को उपदेश देकर माँ ने उन्हें नाव के भीतर किया। इसके बाद मेरी पत्नी के साथ बातचीत करने लगीं । साधन–भजन के कुछ नियम बताती रहीं । रह–रहकर अन्य नौकाएँ भी हमारी नाव के पास आकर लगने लगीं । जब वे नौकाएँ पास आतीं तब माँ बातचीत बन्द कर देतीं । बाद में उन्हें दूर जाने को कह देतीं । मैं खुकुनी दीदी के साथ बातें करता रहा । अन्य नावों को पास आते देख वे झल्ला उठती थीं । लेकिन माँ के प्रति लोगों का आकर्षण देखकर बीच–बीच में मुस्करा उठती थीं । इस प्रकार हम रेती पर आ लगे। यहाँ भोग का आयोजन किया गया था । नाव से उतरने के लिए माँ उठकर खड़ी हो गयीं । ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने श्री श्री माँ से कहा–"अब तक तुम दीदी से बातचीत करती रही, पर दादा से कोई बात नहीं की ।"

माँ ने कहा–"माताजी से सारी बातें कह चुकी । माताजी अब पिताजी से कहेंगी । इसके अलावा पिताजी को अगर कहना है तो मुझसे कहने पर मैं उसका जवाब दूँगी ।"

मुझे कुछ कहना नहीं है, यह बात माँ अच्छी तरह जानती हैं। माँ की बातों का जवाब न देकर मैंने दीदी से पूछा–"माँ से पूछिये कि माँ नित्य गंगा में घूमने क्यों आती हैं ? गंगा को फल क्यों चढ़ाती हैं ?"

दीदी से मैंने इस बात की चर्चा की थी । भीड़भाड़ के बीच ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते, इसलिए दीदी अवसर ढूँढ़ रही थीं । इस वक्त उन्हें इस बात का स्मरण दिलाते ही दीदी ने माँ से यही प्रश्न किया ।

माँ ने उत्तर दिया–"जब मैं गंगा की ओर आती हूँ तो लगता है जैसे गंगा मुझे बुला रही है ।"

दीदी–गंगा को फल क्यों देती हो ?

माँ–तुम लोग मुझसे फल मांगते हो, क्या ये सब नहीं मांग सकती ?

इतना कहने के बाद माँ नाव पर से उतर गईं । दीदी ने मुझसे कहा–हम लोगों में जानने का आग्रह देखकर माँ कुछ छिपा नहीं रही हैं ।

श्री श्री माँ के हाथ से प्रसाद की प्राप्ति

श्री श्री माँ के साथ–साथ सभी लोग नाव से उतर पड़े । मैं देर तक नाव पर बैठा रहा । सेवादासी के आश्रम में जितनी घटनाएँ हुई थीं, उसके बारे में चिन्तन करता रहा । बाद में नीचे उतरकर माँ की तलाश करने लगा ।

ठीक इसी समय ढाका आश्रम के श्रीयुत अतुल ब्रह्मचारी महाशय ने कहा–"आप अब तक कहां थे ? माँ सभी को प्रसाद खिलाती रहीं। सब समाप्त हो गया ।"

मैंने अतुल दादा से कहा–"मेरे लिए प्रसाद रखा होगा ।"

बहरहाल मैं धीरे–धीरे माँ की नाव के पास जाकर खड़ा हो गया। माँ ने मुझे प्रसाद देने के लिए सन्देश उठाया । मैंने माँ को प्रणाम करने के बाद हाथ बढ़ाकर प्रसाद ग्रहण किया ।

कुछ देर इधर–उधर घूमने के बाद मैंने देखा कि माँ एक अपरिचित व्यक्ति से बात कर रही हैं । मैं वहां जाकर खड़ा हो गया । यह सज्जन अतुल दादा के गाँव के आदमी हैं । वकील हैं । बड़े दिन की छुट्टी में कलकत्ता आये हैं । माँ आजकल नवद्वीप में हैं, सुनकर यहां चले आये हैं । मैं माँ के पास जाकर ज्यों खड़ा हुआ त्योंही देखा कि बेबी दीदी ने संतरे के तीन फांक कर दिये ।

माँ ने हँसकर कहा–"तुम अभी तक रखी रही ?" फिर मेरी ओर देखती हुई बोलीं–"बताओ तो, मैं इन्हें लेकर क्या करूँगी ?"

मैं–बेबी दीदी इसे प्रसाद बना लेना चाहती हैं । तुम इसे मुँह में डालकर प्रसाद बना दो ।

माँ–(हँसकर) यह बात नहीं है । मैं कुछ देर पहले सभी के मुँह में अपने हाथ से प्रसाद डाल चुकी हूँ । तुम्हें नहीं दे सकी थी, इसलिए बेबी दुःख प्रकट करती रही । अब इस समय यह सब तुम्हें खिलाना ही पड़ेगा ।

मैं–माँ, कल रात को मैंने बेबी दीदी को तुम्हारा कृष्ण रूप वाला श्रृंगार दिखाया था । यह प्रसाद उसी का पुरस्कार है ।

माँ को प्रणाम करने के बाद मैंने प्रसाद ग्रहण करने के लिए मुँह खोला तो माँ ने एक फांक मेरे मुँह में डाल दिया । एक फांक खाकर जब मैं चलने लगा तब माँ ने कहा–"मुझे तीनों फांक खिलानी है ।"

इतना कहने के बाद माँ ने शेष तीनों फांकों को मेरे मुँह में डाल दिया । आज माँ की कृपा ने सभी के हृदय को स्पर्श किया था। कुछ देर बाद श्रीयुत् शची बाबू आये और भीगी रेत पर ही उन्होंने माँ को साष्टांग प्रणाम किया ।

उन्हें इस तरह प्रणाम करते देख माँ ने हँसकर कहा–"तुमने यह क्या प्रारम्भ कर दिया ? अब तो सभी लोग इसी प्रकार जमीन पर गिरेंगे।"

बात ठीक निकली । शची बाबू की देखा–देखी अन्य लोग भी इसी प्रकार प्रणाम करने लगे । मेरी भी इच्छा हुई, पर शर्म के कारण जमीन पर लेट न सका । मन ही मन माँ को प्रणाम करने लगा ।

कुछ लोग आज चार बजे वाली गाड़ी से चले जायेंगे । माँ ने तुरत भोजन करने की इच्छा प्रकट की । रेत पर श्री श्री माँ, विमला माँ और आनन्द भाई को लेकर भोजन करने बैठ गयीं । बेबी दीदी भोग का आयोजन कर रही थीं । आनन्द भाई बड़े आनन्द से भोजन करने लगे । मैं थोड़ी दूर पर खड़ा यह दृश्य देख रहा था । अचानक सुना कि कोई मेरे बारे में कुछ कह रहा है ।

उधर देखते ही खुकुनी दीदी ने हँसकर कहा–"दादा कुछ नहीं खा सके ।"

इसके बाद माँ के निकट मेरी बुलाहट हुई । माँ ने कहा–"उस समय तुम्हें खट्टा प्रसाद प्राप्त हुआ था । अब तुम्हें मीठा प्रसाद दे रही हूँ । यह रसगुल्ला लो ।"

ज्यों ही मैंने प्रसाद लेने के लिए हाथ बढ़ाया त्योंही माँ ने कहा–"तुम्हारे हाथ पर देने से बेबी रोने लगेगी ।"

फलतः मैंने माँ के पास बैठते हुए अपना मुँह खोला । माँ ने मुझे रसगुल्ला खिलाकर कहा–"तुम्हारा फल भी हुआ और रस भी।"

मैं माँ की बातें सुनकर चुप रह गया । चिंतन करने की शक्ति मुझमें नहीं थी । इतनी कृपा, इतना आनन्द मेरे जैसा क्षुद्र आधार कैसे सम्हाल सकता है ?

भोजन समाप्त करने के बाद नाव पर आकर बैठ गया । मेरी नाव पर अतुल ब्रह्मचारी के अलावा मैं बैठा था । मेरी लड़कियां पहले इसी नाव पर थीं । लेकिन जब माँ उन्हें खोजने लगीं तब उन लोगों को माँ की नाव पर भेज दिया । श्रीयुत बसन्त कुमार आयन नामक एक सज्जन मेरे साथ लगे हुए हैं । सारा काम-काज आगे बढ़कर कर रहे हैं । आपके साथ परिचय हुआ । आप पहले अगरतल्ला स्थित वन विभाग में नौकरी करते थे । पिछले सात वर्षों से नवद्वीप में हैं। उन्होंने कहा-"मेरी शनि की दशा चल रही है । लगभग १२ वर्ष तक रहेगी । मैंने यह तय किया है कि नवद्वीप में इतने दिनों तक साधुओं का संगत करता रहूँगा । अब तक कितने साधुओं का संगत किया है, यह बताना कठिन है । न जाने कितने साधुओं के साथ इस रेत पर टहल चुका हूँ, पर माँ की तरह किसी को नहीं देखा। माँ ने मेरा नाम 'द्वितीय मथुर' रखा है । मुझे ऐसा लगता है कि मेरा नाम बदलकर माँ ने मेरी शनि की दशा को बदल दिया है ।"

मैंने उनसे कहा-"आप शक्ल-सूरत में हमारे मथुर बाबू से मिलते हैं और उन्हीं की तरह आप कर्मठ हैं ।"

बेबी दीदी ने माँ को भोग देने के लिए आज ८-१० नाव किराये पर ले रखी थी । समस्त नौकाएँ एक साथ बांधकर नदी में छोड़ दी गयीं । शाम को घाट किनारे आने पर माँ ने मुझसे पूछा-"पिताजी, क्या आज तुम शाम की गाड़ी से चले जाओगे ?"

मैं-आप जैसी आज्ञा दें ।

माँ-तुम स्वयं सोचकर देखो कि तुम्हारा कलकत्ता जाना आवश्यक है या नहीं ।

मैं-माँ, जब मैं ढाका में रहता हूँ तब अपने साध्य के अनुसार कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर विचार करता हूँ । लेकिन नवद्वीप में तुम्हारे निकट आकर मैंने 'पुरुषकार' अवलम्बन कर लिया है । अब तुम जो कुछ कहोगी, वही करूँगा ।

माँ ने हँसकर खुकुनी दीदी को मेरे निकट भेज दिया । दीदी ने आकर कहा–"माँ ने मुझे आपके पास भेजा है कि क्या करना होगा, इस विषय पर विचार–विमर्श किया जाय ।"

मैंने कहा–"दीदी, मैं सत्य कह रहा हूँ कि मैं कुछ ठीक नहीं कर पा रहा हूँ । कलकत्ता के इतने पास आकर अगर दादा से बिना मुलाकात किये कलकत्ता चला जाऊँगा तो शायद दादा नाराज हो सकते हैं । सम्भव है कि नाराज न भी हों । दादा असन्तुष्ट हो सकते हैं या नहीं, यह माँ जान सकती हैं, मैं नहीं जानता । फलतः मैं यह कैसे बता सकता हूँ कि मेरा कलकत्ता जाना उचित होगा या नहीं ।"

दीदी ने कहा–"माँ सांसारिक बातों का उत्तर नहीं देतीं । मैं माँ से क्या कहूँगी ?"

मैंने कहा–"आप माँ के पास जायँ । यदि माँ मेरे कर्त्तव्य के बारे में आपसे कुछ पूछें तो आपके मन जो आये, वही कह दीजियेगा ।"

दीदी हँसकर बोलीं–"माँ ने मुझे आपके पास भेजा और आप पुनः मुझे माँ के पास भेज रहे हैं ।"

माँ के पास जाकर जब दीदी ने मेरी समस्या को कहा तब माँ ने कहा–"हां, जागतिक दृष्टि से पिताजी का कलकत्ता जाकर दादा के साथ मुलाकात करना उचित है । पिताजी आज ही रवाना हो जायँ ।"

आदेश तो प्राप्त हो गया, परन्तु माँ को छोड़कर जाने का मन नहीं कर रहा था । लेकिन अब उपाय भी नहीं है । मँझली लड़की को लेकर धर्मशाले से बिछावन वगैरह लाने के लिए चल पड़ा । साथ में एक मल्लाह को ले लिया । स्वामी शंकरानन्द भी एक मल्लाह को लेकर विमला माँ का सामान लेने के लिए चल पड़े । इनका सामान मेरे ही कमरे में था । चूँकि सामान बँधा हुआ था, इसलिए पत्नी को साथ नहीं लिया ।

नवद्वीप से यात्रा विभ्राट

स्वामी शंकरानन्द और मैं सामान लेकर जब घाट किनारे आये तब एक नाव को छोड़कर बाकी गायब थे । सुना कि सारी नौकाओं को लेकर माँ स्टेशन घाट की ओर चली गयी हैं । हमारी नाव भी चल पड़ी । जाड़े का कोहरा पानी में उतर रहा था । चारों ओर अंधकार बढ़ रहा था । सामने कुछ साफ दिखाई नहीं दे रहा था। दूर से माँ के नाव की आवाजें आ रही थीं । कुछ देर चलने के बाद हम माँ के साथ हो गये । बगल की नौका से अपनी दोनों लड़कियों को अपनी नाव पर चढ़ा लिया । मेरी पत्नी किस नाव पर है, यह पता नहीं चला । सोचा, घाट पर पहुँचने पर सब मिल जायेंगे ।

नौकाएँ जब घाट किनारे आकर लगीं तो देखा–काफी धूमधाम है। बाद में पता लगा कि गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता भक्ति सिद्धान्त सरस्वती महाराज का देहान्त हो गया है । उन्हें समाधि देने के लिए कलकत्ता से नवद्वीप लाया गया है । इसीलिए इतनी धूमधाम है । अस्तु नाव किनारे लगते ही स्वामी शंकरानन्द जी महिलाओं को माँ से मिलाने के लिए ले गये । मैंने स्टेशन के कुलियों को बोझा देकर स्टेशन की ओर रवाना कर दिया । इसके बाद श्री श्री माँ के समीप चल पड़ा। शंकरानन्दजी मुझसे पांच–सात मिनट पहले रवाना हो चुके थे । लेकिन वे किधर चले गये, इस अन्धेरे में पता नहीं चला । घाट की ओर आने पर एक भी नाव दिखाई नहीं दी । लड़कियों का नाम लेकर देर तक पुकारता रहा । किसी ओर से कोई आवाज नहीं आयी । पत्नी कहां है, लड़कियां कहां हैं और स्वयं माँ कहां हैं, कुछ पता नहीं चल रहा था । मन ही मन झुँझला उठा । चारों ओर घन अन्धकार था । स्टेशन किधर है यह भी पता नहीं । एक व्यक्ति से पूछकर चलने लगा । कुछ देर बाद स्टेशन आ गया । लेकिन यहां एक भी परिचित शक्ल दिखाई नहीं दी । सोचा–यह कैसी मुसीबत ? प्लेटफार्म

पर हम लोगों का सामान जरूर रखा हुआ था, पर अपने साथियों में से किसी को नहीं देखा । समझते देर नहीं लगी कि कुली सामान रखकर चला गया । मैं पुनः घाट की ओर चल पड़ा । लौटते समय ऐसा लगा जैसे रास्ता लम्बा है । अन्धेरे में चलने के कारण दो बार गिरते–गिरते बचा । अचानक अन्धेरे में शची बाबू से मुलाकात हो गई । उन्होंने पूछा–"आपकी पत्नी कहां है ?"

मैं–मुझे कुछ नहीं मालूम । पत्नी कहां है, लड़कियां कहां हैं, कोई पता नहीं ।

शची बाबू–आपकी लड़कियां तो माँ के पास हैं, पर आपकी पत्नी कहां चली गयीं ?

शची बाबू को पाकर ढाढ़स बँधी । उनके साथ माँ की नाव पर वापस आया । शची बाबू ने मेरी पत्नी के बारे में पूछा ।

माँ ने कहा–"माताजी गलती से धर्मशाला वापस गयी हैं । शंकरानन्द उन्हें लाने गये हैं ।"

शची बाबू–ठीक वक्त पर आ जायेंगी, क्योंकि अब ज्यादा वक्त नहीं है ।

माँ–"तुम स्टेशन चले जाओ । अगर इस बीच वे लोग आ गये तो स्टेशन चले जायेंगे । अगर ये लोग गाड़ी छूटने के पहले तक न पहुँच पायें तो तुम विमला माँ को गाड़ी पर बैठाकर पिताजी (अर्थात् मेरा) का सामान लेते आना ।"

मैंने सोचा कि शची बाबू जैसे गणमान्य व्यक्ति मेरा बोझ उठायेंगे और मैं नाव पर आराम करता रहूँ, यह ठीक नहीं है ।

मैंने माँ से कहा–"माँ, मैं शची बाबू के साथ जाऊँ ?"

माँ ने कहा–"तुम्हें जाने की जरूरत नहीं । शची बाबू तुम्हारा सामान लेते आयेंगे ।"

शची बाबू को अकेला जाते देखकर मेरा मन उनके साथ जाने को हुआ । मैंने माँ से कहा—"शची बाबू मेरा बोझा क्यों ढोयेंगे । इससे अच्छा है कि मैं चला जाऊँ ।"

माँ ने पुनः दृढ़कण्ठ से कहा—"नहीं, तुम जहाँ बैठे हो, वहीं बैठे रहो ।"

माँ के कण्ठस्वर को सुनकर मेरा चैतन्य वापस लौटा । सोचा, शायद मुझ पर कोई आफत आने वाली है, इसीलिए माँ दृढ़ता से मना कर रही हैं । अभी कुछ देर पहले किस परेशानी में फँसा था, उसका स्मरण करते ही सिहर उठा । प्रत्युत्तर दिये बिना चुपचाप बैठा रहा। माँ ने मेरी लड़कियों से कहा कि ओस गिर रही है । तुम सब छाजन के भीतर चले जाओ । हम लोग अन्धेरे में बैठे स्वामी शंकरानन्दजी के आने का इन्तजार करने लगे ।

कुछ देर बाद शंकरानन्द स्वामी की आवाज सुनाई दी । तब तक गाड़ी चली गई थी ।"

स्वामीजी पास आकर बोले—"जल्दी से एक धोती दीजिये । अमूल्य बाबू की पत्नी पानी में गिर गई थीं ।"

तभी माँ की नाव पर मेरी पत्नी की आवाज सुनाई दी । घटना समझ में नहीं आ रही थी । माँ ने मेरी पत्नी को एक धोती देने को कहा । सभी लोग बक्स में धोती खोजने लगे । लेकिन धोती नहीं मिली।

मैंने कहा—"शची बाबू मेरा बक्सा लाने गये हैं । उनके आने पर मैं धोती दूँगा ।"

कुछ देर बाद शची बाबू आये । मैंने साड़ी निकाल कर दे दी। बाद में पत्नी की जबानी सम्पूर्ण घटना का विवरण प्राप्त हुआ ।

शंकरानन्दजी मेरी पत्नी की तलाश में गये तो वह नौका मिल गई। उस नाव पर मेरी पत्नी के आलावा बेबी दीदी और प्राणकुमार बाबू की पत्नी थीं । हम लोगों की नावें जहाँ बँधी हुई थीं, उससे कुछ दूर जब उनकी नाव आई तब जल्दी से उतरते समय अचानक पानी में गिर गई । अधिक पानी न रहने के कारण वह डूब नहीं सकी। उसे गिरते देख बेबी दीदी और प्राणकुमार बाबू की पत्नी चिल्ला उठीं । इस चीत्कार की बिना परवाह किये मेरी पत्नी तुरत दौड़कर माँ की नाव के पास आकर बोलीं–"माँ, मैं पानी में गिर गई थी।"

यह सुनकर माँ ने कहा–"यह बात तो मैं इशारे से खुकुनी को बता चूकी हूँ । अच्छा, यह बताओ कि तुम्हारे मन में कैसी भावना उत्पन्न हुई थी ?"

मेरी पत्नी ने कहा–"उस दिन देवालय दर्शन करने जाते समय अन्यमनस्क भाव में आपके पैर पर मेरा पैर चढ़ गया था । तभी से मैं डरती रही कि अब मेरा बचना कठिन है । मैं नवद्वीप में ही रह जाऊँगी। जब गंगा में आकर नाव पर चढ़ती तब यही भाव मेरे मन में जाग उठता था । आज भी नाव पर बैठे–बैठे यही भावना उत्पन्न हुई थी कि आज मैं गंगा में रह जाऊँगी । सभी नाव से किनारे चले जायेंगे । सिर्फ मैं गंगा में रह जाऊँगी ।"

माँ–"आज सवेरे उठकर देखा कि माताजी (मेरी पत्नी) के बाल बिखरे हैं और आँखों में भय है, उसी हालत में मेरी ओर दौड़ी हुई आ रही हैं । माताजी की ऐसी मूर्ति कभी देखी ही नहीं थी । खुकुनी को यह बताती रही, पर वह समझ नहीं पाई ।"

यह भी सुना कि आज माँ बराबर मेरी पत्नी की तलाश करती रहीं और बार–बार खुकुनी दीदी से कहती रहीं–"उसे (मेरी पत्नी को) मेरे आस–पास रहने को कहो ।"

आज बड़ालघाट से नाव पर हमें सवार होने से लेकर रेती तक आने तक माँ हम लोगों की नाव पर थीं, इसलिए लोकलज्ञा के कारण मेरी पत्नी माँ के निकट नहीं आयीं । यह सब सुनकर मेरे मन में यह धारणा उत्पन्न हुई कि माँ ने आज एक विषम विपद से मेरी रक्षा की है । यहाँ तक कि मेरी पत्नी के मृत्युयोग खण्डन करने के लिए हम लोगों को ढ़ाका से बुलवाया हैं । अभी कुछ देर पहले माँ के प्रति झुँझला उठा था । उसे सोचते ही मन में आत्मग्लानि उत्पन्न हुई । मन ही मन माँ से बार–बार क्षमा प्रार्थना करने लगा ।

नवद्वीप स्टेशन से हम लोग धर्मशाले में वापस आ गये । यतीश बाबू की लड़कियाँ आज माँ को कृष्णवेश में सजाने वाली हैं, इसलिए माला वगैरह लेकर नाव पर आयी थीं । लेकिन इस गण्डगोल के कारण यह कार्यक्रम नहीं हो सका । हम लोग चुपचाप धर्मशाले में आ गये। सोचा, अब रात तीन बजे वाली गाड़ी से कलकत्ता जाऊँगा । शची बाबू, त्रिगुणा बाबू और ब्रजेन बाबू भी इसी गाड़ी से कलकत्ता जानेवाले हैं । श्री श्री माँ ने धर्मशाला पहुँच कर अपनी परिधेय धोती मेरी पत्नी को पहनने के लिए दिया ।

आज भी माँ की आरती हुई । यतीश बाबू की लड़कियों ने आरती की । त्रिगुणा बाबू ने आरती–गायन किया । यह सब सुनने में अच्छा लगा ।

श्री श्री माँ की लीला–कथा

आरती समाप्त होने के बाद माँ तरह–तरह की बातें कहने लगीं। माँ ने कहा – "एक बार मैंने यह नियम बनाया था कि कोई मुझे आहार कराते समय हँस नहीं सकेगा । खुकुनी खिलाते समय अपनी हँसी रोकने के लिए बराबर प्रयत्न करती रही । लेकिन अन्त तक हँस पड़ती थी। अन्त में नन्दू काफी प्रयत्न करके अपनी हँसी रोककर मुझे खिला सका था ।"

मैं–माँ, शायद तुम कभी एक छोटी डिबिया में चावल उबालकर खाती थी ?

माँ–"हाँ, एक बार हम लोग काशी गये थे । वहाँ दुकान पर सामान खरीदते समय एक बैगुना खरीदा था । उससे छोटा बैगुना वहाँ नहीं था। एक डिबिया भी खरीदी । उससे भी छोटी । ढाका में आकर भोलानाथ का भोजन उसे बैगुना में बनता था । मैंने कहा कि उस डिबिया में जितने चावल आ सके, उतना ही उबाल कर मुझे दिया जाय । यही होने लगा । उस डिबिया में चावल के कई दाने रखकर भोलानाथ का चावल जिसमें पकता था, उसमें फेंक दिया जाता था । वही खाती थी । तुम लोगों की दीदी माँ उस डिबिया में चावल के साथ–साथ नाना प्रकार के अनाज कूटकर भर देती थीं। चावल के साथ वह सब भी उबल जाता था ।"

इतना कहकर माँ हँसने लगी । माँ का लड़की के प्रति कितना स्नेह है, इसे समझाने के लिए माँ ने दीदी माँ के इस कार्य का उल्लेख किया ।

समाधि के लक्षण

अब सेवादासी की चर्चा हुई । सवेरे कीर्तन के समय उन्हें भावविभोर हो गिरते देखकर हम लोगों ने समझा था कि यह समाधि का लक्षण है ।

माँ ने कहा–"वह समाधि नहीं थी । उसे भावावेश कहा जा सकता है । भाव का आघात सह्य न कर पाने के कारण बेहोशी आ गयी, बस यही । तुम लोगों को उस समय दिखाया कि उसके दोनों हाथों की मुट्ठियाँ कसी हुई थीं । समाधि में हाथ–पैर उस तरह कड़ें नहीं होते । उस समय हाथ–पैर टटोलने पर ऐसा लगता है जैसे लकड़ी के हाथ–पैर हैं । उनके हाथ–पैर जिस तरह सख्त हो गये थे, वह जान–बूझकर एक भाव को जबरन पकड़ने की कोशिश हो सकती है।

जिस वक्त माताजी (सेवादासी) भावावेश में थीं तब मैंने उसकी आंखों को उलटकर अवस्था को देखा था। जब उलटकर देखा तो पलक उठाने के साथ ही साथ आँख की मणि भी हट गयी। उसे देखने पर ऐसा लगेगा जैसे पत्थर की आँख लगा दी गयी है।''

मैं–माँ, क्या इसे जड़ समाधि कहा जा सकता है ?

माँ–नहीं। इसे कोई भी समाधि नहीं कहा जा सकता। सिर्फ भावावेश कहा जा सकता है। जड़ समाधि कैसी होती है जानते हो? जड़ समाधि उस अवस्था को कहते हैं जब जागतिक भावों से सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया हो, शरीर की दो–एक ग्रन्थियाँ खुल गयी हों, पर सभी ग्रन्थियां न खुलने के कारण आध्यात्मिक जगत् के साथ किसी प्रकार से सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पा रहा है। ऐसी स्थिति में वह आध्यात्मिक जगत् का कोई भी समाचार नहीं दे सकता। इस अवस्था में अनेक लोगों का शरीरपात होता है। भीतर अगर बीज है तो इस अवस्था से भी ऊर्ध्वगति प्राप्त हो सकती है।

मैं–हृदय की दो–एक ग्रन्थि छिन्न हो गयी है, इसलिए इसे समाधि कहा जा सकता है।

माँ–हाँ।

हरकुमार की भविष्यवाणी

बातचीत के सिलसिले में माँ के प्रथम भक्त हरकुमार की चर्चा चल पड़ी। माँ ने कहा–हरकुमार ही पहला व्यक्ति था जिसने मुझे 'माँ' कहकर पुकारा था। भोलानाथ उसे बच्चे की तरह प्यार करते थे। लेकिन मैं उसके साथ बात नहीं करती थी। वह दोनों समय आता, मुझे प्रणाम करता और मुझसे पानी मांगता। प्यास लगी है, इसलिए नहीं पानी मांगता था। मेरे हाथ से पानी पीने की उसमें आदत थी। उसका कहना था कि किसी के हाथ से पानी पीने पर यह समझ में आ जाता है कि व्यक्ति सत्त्व, रजः या तमोगुण वाला है। एक बार

उसके घर जाकर कुछ दिनों तक थी । मेरी आवश्यकता को जानने के लिए वह सर्वदा उद्‌ग्रीव रहता था । चूँकि मैं उससे बातचीत नहीं करती थी, फिर भी मेरी सारी जरूरतें वह पूरी कर देता था । फलतः लोक ईर्ष्या करते थे । मैं उसके साथे बाते करूँ इसके लिए प्रयत्न करता था । लेकिन भोलानाथ से स्पष्ट आदेश न पाने के कारण मैं उसके प्रयत्न करने पर भी संभाषण नहीं करती थी ।

एक दिन बड़े दुःख के साथ उसने कहा–"बेटी, इतने दिन तेरी सेवा न कर किसी पाषाण की करता तो उससे बातें उगलवा लेता। बेटी, तू पाषाण से अधिक पाषाण है ।"

बाद में जब भोलानाथ ने कहा कि उससे बातें किया करो तब बातें करने लगी । इसके बाद उसकी नौकरी अन्यत्र लग गयी ।

जाने के पहले मुझसे कहता गया–"बेटी, तुझे कोई पहचान नहीं सका । एक दिन वह भी आयेगा जब तुझे सब माँ कहकर पुकारेंगे।"

"हरकुमार बड़े सुन्दर ढंग से गाता था । उसके उत्साह पर कीर्तन का प्रबन्ध होता था । उस कीर्तन को सुनने पर मुझे भाव होता था। उसके दिमाग में हल्का–सा दोष था । बीच–बीच में नौकरी करने में अक्षम हो जाता था । बाद में तो वह पागल हो गया था । पागलों वाली स्थिति में एक बार वह मुझसे मिलने के लिए वाजितपुर आया था । अपने साथ एक रुद्राक्ष और जाल का तागा ले आया था । मेरे पास रुद्राक्ष और तागा रखते हुए उसने कहा–इस रुद्राक्ष को शोधन कर दो और यह तागा बन्धन का चिह्न है । मुझे बन्धन से मुक्त कर दो ।"

माँ हँसती हुई यह कहानी सुनाती रहीं । उन्होंने हरकुमार के लिए क्या किया या नहीं किया, यह बात नहीं बताई । केवल हरकुमार को पागल बनाकर उसके रुद्राक्ष लाने की बातें बताई । इससे यह समझा जा सकता है कि माँ का यह प्रथम भक्त किस प्रकृति का पागल था। हरकुमार आज जीवित नहीं है । रहने पर वे देख पाते कि उनकी भविष्यवाणी सफल हुई है ।

अवतार और उनके पार्षद

त्रिगुणा बाबू ने प्रश्न किया–"माँ, अवतार जब जन्म ग्रहण करते हैं तब अपने सभी पार्षदों को साथ लाते हैं । ये सभी उच्च स्तर के व्यक्ति हैं और अवतार की लीला में सहायक बनकर आते हैं । लेकिन देखा गया है कि सभी लोग सम्यक् रूप से लीला समझ नहीं पाते । श्री गौरांग देव के साथ जो लोग आये थे, उनमें से एक व्यक्ति से श्रीकृष्ण लीला के सम्बन्ध में जब प्रश्न किया गया तब उन्होंने कहा था कि उस लीला के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है । इस बारे में रामानन्द राय से प्रश्न करें, क्योंकि श्रीकृष्ण लीला को समझने और समझाने के एकमात्र वही अधिकारी हैं । ऐसा क्यों होता है ?"

माँ–अवतार अपने साथ पार्षद लेकर आते हैं, यह बात सत्य है । अपने भिन्न–भिन्न कार्यों में सहायता देने के लिए भिन्न–भिन्न स्तर से उन्हें वे ले आते हैं । एक ही स्तर से वे नहीं आते । इसीलिए सभी भक्त एक ही रूप में उस लीला को अनुभव नहीं कर पाते । अधिकारी भेद के अनुसार भिन्न–भिन्नरूपों में लीला का आस्वादन करते हैं ।

नीतीश बाबू–हम लोग भी तो माँ के पार्षद हैं ।

सभी लोग हँस पड़े ।

श्री श्री माँ की आत्मकथा

शरीर पर विभिन्न योग क्रियाएँ

इसके बाद विमला माँ की चर्चा हुई । निर्मला माँ की तरह वे भी आनन्द भाई से तरह–तरह की बाधाएँ पाती रही ।

इतना बताने के बाद श्री श्री माँ अपनी अवस्था का वर्णन करने लगीं–"मुझ पर भी भोलानाथ की सतर्क दृष्टि थी । जिन दिनों वे परदेश में थे, उन दिनों विद्याकूट में रहते हुए मैं कहाँ जाती हूँ, क्या करती

हूँ, यह सब जानने के लिए उन्होनें गुप्तचर नियुक्त किया था । लेकिन मैंने कभी भोलानाथ की अवज्ञा नहीं की । कौड़ी खेलना मुझे अच्छा लगता था। लेकिन भोलानाथ ने ज्योंही कौड़ी खेलने को मना किया, मैंने बन्द कर दिया। इच्छा होने पर मैं खेल तो जरूर सकती थी और भोलानाथ को मालूम भी न होता, पर मैंने कभी ऐसा नहीं किया। इसके लिए मेरी समवयस्का हमेशा मजाक उड़ाया करती थीं । मैं भी उनके मजाक में भाग लेती, पर उनकी उपेक्षा कभी नहीं की ।''

''चूँकि मैं हमेशा भोलानाथ के आदेशों का पालन करती, पर भाव के समय सब गड़बड़ा जाता था । उस समय जो कुछ होना होता, हो जाया करता था । घर से अगर बाहर निकलना हुआ तो कोई न कोई सुयोग देखकर बाहर निकल पड़ती थी । दरवाजे में सांकल चढ़ाकर बन्द कर देने पर भी कमरे में इस तरह लोटती–पोटती कि मजबूर होकर दरवाजा खोल देना पड़ता था ।

''अष्टग्राम से ऐसा भाव प्रारम्भ हुआ था । आटपाढ़ा, वाजितपुर आदि स्थानों में इसी प्रकार चलता रहा । नाना प्रकार की अलौकिक क्रियाएँ होती रहीं । आसन में बैठी हूँ, आसन सहित लट्टू की तरह भन–भन कर घूम रही हूँ । यह सब इच्छा से नहीं किया जा सकता। जब यह सब क्रिया होती तब भोलानाथ बाधा नहीं देते थे । वाजितपुर में एक बार कीर्तन के समय मैं सभी के सामने भावावेश में आ गयी थी । उसी समय से मेरी काफी बदनामी हुई, लोगों ने प्रचार किया– 'अमुक बाबू की पत्नी गले में ढोल डालकर कीर्तन करती रही ।' इस घटना के बाद से कीर्तन के समय भोलानाथ मुझे कमरे में बन्द करके रखते थे । लेकिन बन्द करने से क्या होता है ? घर के भीतर ही मैं इतना उलटती–पलटती रही कि हाथ की शंख–चूड़ियाँ टूट जाती थीं । सारा शरीर कांपता था । कोई कार्य नहीं कर पाती थी । शरीर की मांसपेशियां मानो ढीली पड़ जाती थीं । आखिर में लस्तपस्त होकर पड़ी रहती ।

''जिन दिनों मेरे शरीर की यह हालत हो रही थी और मेरी बदनामी फैल रही थी, ठीक इन्हीं दिनों भूदेव बाबू की पत्नी एक दिन मेरे घर आकर मुझे उपदेश देने लगीं । उन्होंने कहा–'ऐसा करने (कीर्तन में भाव–विभोर होना) से क्या लाभ ? इससे केवल बदनामी होती है।' आदि ।''

मैंने उनसे कहा–''मैं तो कुछ नहीं जानती । जो कुछ होता है, वह मैं अपनी इच्छा से नहीं करती ।''

''वास्तविक भावावेश में जो कार्य होता है वह किसी की इच्छा से नहीं होता । वह अपने–आप हो जाता है । घर में बैठी हूँ, जब घर से बाहर निकलने की स्थिति होती तब हवा में जिस प्रकार पंख उड़ता है, उसी प्रकार यह शरीर घर से बाहर निकल जाता है । शरीर हल्के भाव से ऊपर उठ जाता था । कभी एक पैर के अंगूठे के सहारे नृत्य करती थी । दूसरा पैर टेढ़ा हो जाता था । शरीर कभी शून्य में उठ जाता था । सूई का अगला हिस्सा जिस प्रकार जमीन स्पर्श करता है, उसी प्रकार शरीर जमीन स्पर्श करता था । पाँच महीने तक आसन–मुद्रा होती रही । इस बीच गृह–कार्य भी करती रही । वाजितपुर में यह सब होता रहा । लेकिन वहाँ घर के सभी कार्य मशीन की तरह करती थी । खाना–पीना गुरु की इच्छा से करती थी । स्वाद–बोध नहीं होता था । इन दिनों प्रकट करने या छिपाने का कोई झंझट नहीं था। यह भाव गुरु पर निर्भर रहने से आता है।''

''मैंने जिन अवस्थाओं की चर्चा की, इससे विशेष शिक्षा यह ली जा सकती है कि गुरु पर सर्वतोभाव से आत्मसमर्पण कर देना चाहिए । अपने को उनके हाथ का खिलौना समझना चाहिए । किसी भी अवस्था के लिए प्रस्तुत नहीं रहना चाहिए । जो कुछ होना है,

वह गुरु की इच्छा से अपने–आप हो जायगा । कोई उसमें बाधा नहीं दे सकता । साधारण लोगों को इस प्रकार निर्भर अभ्यास करने में पहले–पहल कष्ट होता है, बन्धन की ज्वाला अनुभव करना पड़ता है। चूँकि मुझे यह सब यन्त्रणा ज्वाला नहीं सहनी पड़ी ।''

''मेरे मुख से अक्सर स्तोत्र निकलता था । ये स्तोत्र बातचीत करने की तरह उच्चारित नहीं होता था । वह भीतर से आता था। वह अपने आप बाहर होता और अपने आप बन्द हो जाता है । जैसे दरवाजे के पल्ले खुलते–बन्द होते हैं । अधिकतर देखती कि भीतर की ग्रन्थियाँ खुल गयी है और मुँह से अरबी भाषा प्रकट होने लगी। अचानक वह बन्द हो जाती। क्यों बन्द हो गयी, यह देखने के लिए जब पीछे की ओर देखती तो एक व्यक्ति को आते देखती । अगर कुछ देर और कहती रहती तो वह सब सुन लेता । सभी स्तोत्र इसी प्रकार आते और बन्द हो जाते थे । जिसे सुनना चाहिए, केवल वही सुन पाता । प्रणव प्रकट होने पर देवभाषा आती हैं। शरीर की समस्त ग्रन्थियां जब छिन्न हो जाती हैं तभी प्रणव होता है । मुक्त ग्रन्थियों के भीतर से ये स्तोत्र प्रकट होते हैं । इसीलिए स्तोत्र प्रकट होने पर भी बाते स्पष्ट नहीं होतीं । आसनादि में जिस प्रकार शरीर की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, उसी प्रकार ग्रन्थियों का खुलना आवश्यक है वरना ये सब स्तोत्र प्रकट नहीं होते । मेरे मुँह से केवल संस्कृत स्तोत्र प्रकट होते थे, ऐसी बात नहीं थी । सभी भाषाएँ प्रकट होती थीं । वह इसलिए कि मैं भिन्न–भिन्न देशों के महापुरुषों के साथ उनकी भाषा में ही आलाप करती थी ।''

शची बाबू–माँ, तुम्हारे मुँह से संस्कृत भाषा प्रकट होती थीं, यह मान लिया लेकिन तुम अरबी भाषा कैसे बोलती थीं ?

माँ–प्रत्येक भाषा के भीतर कुछ साधारण बाते हैं । जैसे 'अ' शब्द हमारी भाषा के सभी वर्णों में है । जो लोग शब्द–स्पन्दन की जड़ तक पहुँच गये हैं, उनके लिए भिन्न–भिन्न भाषाओं में बातें करना या भिन्न–भिन्न भाषा को समझ लेना कठिन नहीं हैं । मूल स्पन्दन को जान लेना पर्याप्त है ।

माँ अपने बारे में और भी बहुत–सी बातें कहती रहीं ।

आगे माँ ने कहा–"शाहबाग में जब मेरा अन्नत्याग हो गया था तब अन्न की स्मृति जैसे लोप होती जा रही थी । कुत्ते को भात खाते देख एक बार उसके साथ खाने बैठ गयी थी ।"

सन् १९३२ में माँ जिन दिनों भोलानाथ और ज्योतिष बाबू को लेकर रायपुर (देहरादून) स्थित शिव मंदिर में थीं, उन दिनों भोलानाथ मौन थे । वे मंदिर में बराबर पूजा–जप किया करते थे।

माँ ने कहा–उन दिनों लोग यही सोचा करते थे कि भोलानाथ एक विशिष्ट साधु हैं जो गृहस्थाश्रम त्याग कर चले आये हैं और मैं इन्हें छोड़कर अकेली नहीं रह सकती, इसलिए साथ चली आई हूँ । इसके बाद एक दिन भोलानाथ ने उन लोग को बताया कि मैंने छः महीने तक लगातार अन्न ग्रहण नहीं किया था । इसके बाद लोग मेरे निकट आने लगे ।

नवद्वीप से विदा

इस प्रकार की बातें करते–करते रात के ढाई बजे । हम लोग रवाना होने के लिए तैयार हुए । गाड़ी के आते ही सारा सामान लाद दिया गया । यात्रा के वक्त में माँ को प्रणाम कर दूर जा खड़ा हुआ। जब मेरी पत्नी माँ को प्रणाम करने आयीं तब हम दोनों के

प्रति लक्ष्य करती हुई माँ ने कहा–"आज सबेरे विषाद का भाव देखा था । साथ क्रोध का भाव भी । अब वह दूर हो गया है । इस समय हँसता हुआ चेहरा देख रही हूँ ।"

समझते देर नहीं लगी कि माँ हम लोगों के संकट की कहानी बता रही हैं । मैं मन ही मन मां के प्रति नाराज हुआ था, इसकी चर्चा भी मां ने की । आज सबेरे नाव पर माँ ने हम लोगों से पूछा था कि हम लोग रो चुके हैं या नहीं । जिस समय यह सवाल किया गया था, उस समय हम लोग प्रसन्न मुद्रा में थे । और इस वक्त हम लोगों के हँसते हुए चेहरे को देख रही हैं । यह कैसे सम्भव हुआ? लगता है विदा लेने की वजह से हमारी आकृतियों पर विषाद के चिह्न थे । ऐसी हालत में माँ ने हमारे शरीर पर कैसे हँसना–रोना लक्ष्य किया ? माँ की सभी बातें रहस्यमय हैं ।

जब मेरी पत्नी ने माँ को प्रणाम किया तब मां ने कहा–"तुम सद्गुरु की आश्रिता हो । आओ, तुम्हारे शरीर पर हाथ फेर दूँ ।"

इतना कहने के पश्चात् उन्होंने पत्नी के बदन पर हाथ फेर दिया। खुकुनी दीदी ने भी वैसा ही किया । शची बाबू, त्रिगुणा बाबू, ब्रजेन बाबू और मैं एक गाड़ी पर बैठे । महिलाएँ दूसरी गाड़ी में बैठीं ।

स्टेशन आने पर ब्रजेन बाबू टिकट खरीद लाये । आधे घण्टे बाद गाड़ी आ गयी । सभी थर्ड क्लास में सवार हुए । शची बाबू हम लोगों के साथ थर्ड क्लास में सफर करने लगे ।

जब तक गाड़ी पर था तब तक माँ के बारे में बातें होती रहीं। तारापीठ से आसाम जाते समय इस समय इस बार माँ नैहाटी गई थीं । शची बाबू ने नैहाटी जाकर माँ का दर्शन किया था ।

शची बाबू ने कहा—"माँ सभी को धर्मशाले में खाने-पीने का प्रबन्ध करने की आज्ञा देकर घूमने के लिए निकल पड़ी । घूमते-घामते एक सज्जन के यहाँ पहुँच गयीं । उक्त सज्जन का नाम श्रीयुत् क्षितीशचन्द्र गांगुली था । मैमनसिंह जिले के निवासी थे । इन दिनों वे नैहाटी में 'यात्री निवास' स्थापित कर रहे हैं ।

उनके निकट जाकर श्री श्री माँ ने कहा—'पिताजी, क्या तुम मुझे पहचान नहीं सके ?'

माँ को कभी देखा था या नहीं, क्षितीश बाबू स्मरण नहीं कर सके ।

माँ ने कहा—'सोचकर देखो, पहचान पा रहे हो या नहीं । काफी दिनों की बात है, इसलिए स्मरण नहीं कर पा रहे हो ।'

उक्त सज्जन स्मरण नहीं कर पा रहे थे तब माँ ने कहा—'पिताजी, मुझे जरा पानी दो ।'

उक्त सज्जन ने कहा—'खाली पानी दूँ ? बाजार से कुछ मंगवा देता हूँ ।'

इतना कहने के बाद जल्दी से उन्होंने बाजार से फल मँगवाया। उसे एक थाली में काटकर सजाया गया । माँ ने एक छोटी रेकाबी में फल निकाल लेने को कहा । इसके बाद उक्त सज्जन के घर में रहनेवाली एक विधवा से कहा कि ये फल मेरे मुँह में डालती चलो। इस प्रकार फल खाने के बाद माँ धर्मशाले में वापस आ गयीं ।

माँ के चले आने के बाद क्षितीश बाबू को स्मरण हो आया कि पिछली रात को उन्होंने स्वप्न में देखा था जैसे काली माता उनके निकट आई थीं । उन्होंने सोचा कि क्या यही काली माता तो नहीं रहीं? तुरंत स्टेशन दौड़े हुए गये और वहाँ माँ को प्रणाम किया । भावावेग में आकर माँ को काफी बातें सुनाते रहे ।"

द्वितीय अध्याय

श्री श्री माँ का ढाका आगमन

७ जनवरी, १९३७ ई. गुरुवार । कालेज से घर वापस आते ही सुना कि आज श्री श्री माँ आनन्दमयी ढाका पहुँच रही हैं । इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता हुई । इस वक्त कुछ जरूरी कार्य करना था जिसे कल के लिए छोड़ना कठिन है । अब दोनों काम कैसे निपटाया जाय, इसी ऊहापोह में खो गया । बहरहाल घर से चलकर दो–चार मित्रों को समाचार देकर घर पर भोजन किया । इसके बाद स्टेशन की ओर चल पड़ा । स्टेशन पर श्रीयुत् भूपतिनाथ मित्र, श्रीयुत् नगेन्द्रनाथ राय, श्रीयुत् यतीन्द्रनाथ दासगुप्त आदि से मुलाकात हुई । सभी लोगों के साथ नारायणगंज की ओर रवाना हुआ ।

गाड़ी जिस वक्त नारायणगंज पहुँची तब देखा गया कि ग्वालन्दो का जहाज घाट किनारे लग रहा है । हम लोग फ्लैट पर जाकर खड़े हुए । वहीं से हम लोगों ने खुकुनी दीदी ओर माँ को देखा । शिशिर भी जहाज पर से रूमाल हिलाते हुए माँ के आगमन की सूचना देने लगा । इसी जहाज पर मिस्टर जिन्ना, मंत्री खां बहादुर अजीजुल हक आदि ढाका आ रहे थे । इनके स्वागत के लिए काफी तादाद में मुसलमान स्वयंसेवक घाट पर उपस्थित थे । लोगों की भीड़ कम होने के बाद हम लोग जहाज पर गये । तबतक माँ ऊपर से नीचे चली आयी थीं। हम लोगों ने सीढ़ी के पास उन्हें तथा बाबा भोलानाथ को प्रणाम किया। बाद में सभी लोग एक साथ गाड़ी की ओर बढ़े । चलते समय शिशिर की जबानी पता चला कि हम लोगों के नवद्वीप से वापस आने के बाद वहां नगरसंकीर्तन हुआ था।

नवद्वीप में रहते वक्त ही सुना था कि ३० पौष (१८ जनवरी) को माँ विंध्याचल में रहेंगी । इधर मां को २२ (७ जनवरी) तारीख को ढ़ाका में देखकर संदेह हुआ कि संभवतः माँ यहां अधिक दिनों तक नहीं ठहरेंगी । जहाज पर ही मैंने खुकुनी दीदी से पूछा था कि माँ ढ़ाका में कितने दिनों तक रहेंगी ?

दीदी ने कहा–"सिर्फ तीन दिन ।"

बाद में पता चला कि माँ गरजवश ढाका आई हैं । इतने कम समय के लिए बाबा भोलानाथ यहां आने को राजी नहीं हो रहे थे। सुना मां ने कहा था–"एक दिन के लिए सही, ढाका जाना अच्छा होगा।"

गाड़ी पर बैठे–बैठे नवद्वीप की कहानी सुनने लगा । ज्योतिष बाबू बाबा भोलानाथ के पहले ही नवद्वीप में आ गये थे । बाबा भोलानाथ जिस दिन नवद्वीप पहुँचे, उसी दिन रात को माँ ने नवद्वीप छोड़ने की इच्छा प्रकट की । द्वारिकाधाम से लम्बी यात्रा करके थके–मांदे बाबा भोलानाथ नवद्वीप आये थे । उनके लिए विश्राम आवश्यक था। लेकिन माँ नवद्वीप छोड़ने की घोषणा पहले ही कर चुकी थीं । इसमें व्यतिक्रम नहीं हो सकता था। फलतः सभी लोग रात को १०–११ बजे रवाना होने की तैयारी करने लगे। इस पर भोलानाथ असंतुष्ट हो गये । मुझे लगा जैसे बाबा भोलानाथ की आकृति पर अभी तक अप्रसन्नता की छाप है । सहसा नवद्वीप छोड़ने के कारण वहाँ के भक्तों को अपार कष्ट हुआ था । नवद्वीप के निवासी क्रमशः माँ के प्रति अधिक अनुरक्त हो गये थे। जिन दिनों मैं नवद्वीप में था, उन दिनों लोगों को कहते सुना था–"कितने साधु–संन्यासी नवद्वीप में आये, पर ऐसा कोई देखने में नहीं आया ।"

नवद्वीप के बारे में जब इस तरह की बातें हो रही थीं तभी मैंने माँ से पूछा–माँ हम लोगों के चले आने के बाद तुम नगर–कीर्तन में घूमती रही ?

माँ ने इसे अस्वीकार किया । लेकिन बाबा भोलानाथ ने किंचित् क्रुद्ध भाव में इशारे से बताया कि माँ नगर संकीर्तन में गयी थी, यह बात वे सुन चुके हैं । उन्हें यह बात पसन्द नहीं आयी थी, यह उनके भाव से स्पष्ट हो गया । बाबा भोलानाथ का यह व्यवहार देखकर मैं जरा परेशान हो उठा ।

माँ ने भी शायद प्रबोध देने के लिए मुझे लक्ष्य करते हुए कहा– ''तुम्हें याद होगा कि जिस दिन हम लोग सेवादासी के आश्रम में गये थे, उस दिन उसने मुझे कुछ खिलाने की इच्छा प्रकट की थी । लेकिन उस दिन मुझे बेबी भोग देने वाली थी, इसलिए मैं कुछ खाने को राजी नहीं हुई । आते समय कह आयी थी कि किसी दिन आकर खाऊँगी। बाद में एक दिन वायदे के अनुसार मैं सभी को लेकर माताजी (सेवादासी) के आश्रम में गयी । गंगा के किनारे–किनारे चल रही थी । मार्ग में नीतीश ने धीरे–धीरे कीर्तन करना प्रारंभ किया । जो लोग साथ चल रहे थे, उन लोगों ने सहयोग देना प्रारंभ किया । इसी प्रकार कीर्तन करते हुए हम लोग माताजी के आश्रम में आये । वहाँ भोगादि समाप्त होने के बाद ब्रजेन ने सोने का गौरांग देखने की इच्छा प्रकट की । उसने इस बात की जिद्द की कि मैं सभी लोगों को लेकर वहाँ दर्शन करने चलूँ । फलतः सभी को लेकर सोने का गौरांग दर्शन करने चल पड़ी । इस बार भी पहले की तरह कीर्तन करते हुए चलने लगे। इन लोगों को कीर्तन करते देख राह चलते रोग भी साथ देने लगे। चूँकी राह चलते लोगों ने भी कीर्तन में साथ देना शुरू किया था, इसलिए लोग समझ रहे थे कि एक विराट् कीर्तनियों का दल जा रहा है । इसके अलावा कीर्तन करने की इच्छा से हम लोग सड़क पर नहीं गये थे । रास्ते में जो कीर्तन हुआ और लोगों की भीड़ चल रही थी, वह अपने आप हो गयी थी ।''

इतना कहकर माँ चुप हो गयी । बाद में खुकुनी दीदी के निकट सुना कि श्री गौरांग प्रभु मन्दिर जाते समय माँ हाथ हिला–हिलाकर कीर्तनियों को उत्साह प्रदान कर रही थी । इससे कीर्तन काफी जम गया था । बहरहाल बाबा भोलानाथ का भाव देखते हुए मैंने फिर नवद्वीप के बारे में किसी प्रकार की चर्चा नहीं की । नारायणगंज से ढाका तक फिर कोई बात नहीं हुई ।

मिस्टर जिन्ना आदि के स्वागत के लिए ढाका स्टेशन पर काफी भीड़ एकत्रित हुई थी । हम लोग रेलगाड़ी से उतरकर घोड़ागाड़ी पर सवार हो रहे थे, ठीक इसी समय किसी ने आकर बताया कि दादा महाशय नहीं मिल रहे हैं । मैंने और शिव बाबू ने स्टेशन के भीतर–बाहर काफी खोजा, पर वे दिखाई नहीं दिये ।

अन्त में जाकर माँ से कहा–"माँ, दादा महाशय नहीं दिखाई दिये । कहाँ खोजा जाय ?"

माँ ने कहा–"तुम लोगों के दादा महाशय को मैंने स्टेशन से बाहर निकलने वाले मार्ग में भीड़ के बीच देखा था ।"

अब हम लोग उस ओर बढ़ें । इधर माँ की गाड़ी आश्रम की ओर चल पड़ी । हम लोग कुछ देर खोजने के बाद निराश होकर आश्रम की ओर चल पड़े । आश्रम के पास हमने देखा कि माँ के साथ दादा महाशय आश्रम के भीतर जा रहे हैं । भूपति बाबू माँ की गाड़ी पर थे ।

उनसे पूछने पर पता चला कि स्टेशन पर जब दादा महाशय नहीं मिले तब श्री श्री माँ की इच्छानुसार गाड़ी आश्रम की ओर बढ़ा दी गयी । स्टेशन से आश्रम आते समय जिस सड़क से गाड़ी आती है, उधर से न आकर दूसरे मार्ग से चलने की आज्ञा माँ ने दी । जब गाड़ी कुछ दूर निकल आयी तब माँ ने कहा–"देखो, तुम लोगों के दादा महाशय की तरह एक व्यक्ति दिखाई दे रहा है ।"

वास्तव में दादा महाशय पैदल जा रहे थे । गाड़ी रोककर उन्हें गाड़ी पर बैठा लिया गया । गाड़ी दूसरे मार्ग से चक्कर काटती हुई आयी और स्टेशन से देर से चलने के कारण लगभग सभी लोग एक साथ आश्रम में आये ।

शाम के बाद माँ नाम-घर में आकर बैठीं । महिलाएँ माँ की दाहिनी ओर और पुरुष बायीं ओर बैठे । तरह-तरह की बातें होने लगीं । भोलानाथ के बहनोई कुशारी महाशय[1] की चर्चा चल पड़ी । इनके एक लायक पुत्र के देहान्त हो जाने के कारण आप तथा आपकी पत्नी अत्यन्त शोकाकुल हो उठे है । इसके अलावा कुशारी महाशय स्वयं ही अस्वस्थ है। इस बार जब माँ इनसे मिलने गयी तो देखा कि पुत्र-शोक काफी हल्का हो गया है ।

उन्होंने माँ से कहा था-"माँ, तुम दो बार कलकत्ता आयीं और विभिन्न जगह गयी, पर मुझसे मिलने नहीं आयी । इससे मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ । तुम जब आती हो तब ठीक से तुम्हें अपने निकट नहीं पाता हूँ । चाहे तुम दूर रहो या पास, मेरे लिए बराबर है । हर हालत में तुम मेरे लिए दुरधिगम्य हो । शरीर का सान्निध्य ही सान्निध्य नहीं होता । मैं कैसे तुम्हारा सान्निध्य प्राप्त कर सकता हूँ?"

माँ ने कहा-"देखा, उनका भाव अच्छा है । लेकिन यह भाव अधिक देर तक नहीं रहा । इसके बाद ही उसने कहा-'माँ, जब तक तुम्हारे निकट बैठा हूँ तब तक ऐसा अनुभव करता हूँ जैसे निर्भय हूँ ।' उपस्थित लोगों ने कुशारी महाशय की बातों पर ध्यान नहीं दिया।"

इतना कहने के बाद माँ हँसने लगीं ।

---

१. श्रीयुत् काली प्रसन्न कुशारी । आप पुलिस इंस्पेक्टर थे ।

मैं ढका हूँ

श्रीयुत् प्रमथनाथ बसु महाशय ने प्रश्न किया–"माँ, तुम तो कहती हो कि 'मैं ढका हूँ', इसका क्या अर्थ है ?"

माँ–चिन्ता करने से पास में मिलता है । तुम लोगों के बारे में चिन्ता करती हुई तुम लोगों के पास हूँ ।

प्रमथ बाबू–पर तुम तो आँखों से दिखाई नहीं देतीं । अगर तुम पास रहो तो अपनी आँखों से देखा जा सकता है । इस तरह का उत्तर नहीं चाहता ।

माँ–मन में चिन्ता करना और आँखों से देखना, दोनों एक ही है । देखा होगा, जब अपने घर के बारे में चिन्ता करते हो तब तुम्हारे घर की तस्वीर आँखों के सामने तैरने लगती है ।

प्रमथ बाबू–मैं यह सब नहीं समझता । जिस बात को हम लोग समझ सकें, उस तरह कहो । तुम मेरे प्रश्न को समझ रही हो न?

माँ–तुम मेरी बात नहीं समझ पाते, इसलिए मैं तुम्हारी बात समझ नहीं पाती । छोटा बच्चा अगर मैट्रिक का विषय जानना चाहे तो उसे समय का इंतजार करना पड़ेगा । इसके लिए जितनी पुस्तकें पढ़नें की जरूरत हैं, पढ़नी पड़ेगी । तब जाकर वह उन विषयों को समझ सकेगा। तुम क्या मुझे उदला (आवरणमुक्त) होने को कहते हो ? अच्छा, मेरी उन बातों का क्या अर्थ समझा है, यह पहले बताओ ।

प्रमथ बाबू–'मैं ढका हूँ' का अर्थ यही समझा कि तुम गुप्त हो। मेरा कहना है कि तुम प्रकट हो जाओ ।

माँ–ठीक है । मुझे उदला करने का प्रयत्न करो ।

प्रमथ बाबू–अगर तुम स्वयं प्रकाशित नहीं होओगी तो हम लोग कैसे प्रकाशित करेंगे ?

माँ–तुम लोग अपने साध्य के अनुसार प्रयत्न करो । बाकी वे कर देंगे । तुम लोग कर्म समाप्त कर लो । इसके बाद जो होना होगा, अपने आप हो जायगा ।

प्रमथ बाबू – तुमसे भी क्या अपने कर्मों के बारे में निर्देश सुनना होगा ?

माँ–हाँ ।

प्रमथ बाबू साधन–भजन के माध्यम से भगवान् को प्राप्त करना पसन्द नहीं करते । ये सोलहो आना कृपापन्थी हैं । माँ ने कर्म पर जब जोर दिया तो दबे नहीं ।

उन्होंने कहा–"माँ, मेरे विचार से भगवान् को प्राप्त करने का एक सरल मार्ग है । तुम हम लोगों की माँ हो और हम सब तुम्हारी सन्तान। तुम्हें प्राप्त करने, माँ को प्राप्त करने के लिए सन्तान को प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है ? सन्तान के प्रति आकर्षण से ही माँ बच्चे को गोद में उठा लेंगी । मैं तो यही समझता हूँ । यह सच है कि नहीं ?"

माँ–हाँ, सत्य है ।

"बस और कुछ नहीं चाहता ।" इतना कहकर प्रमथ बाबू उठकर खड़े हो गये ।

माँ–'बस' कहने से कुछ थोड़े ही होगा ? इस तरह तुम कितनी देर रख सकोगे । लड़का होकर मां की बात सुननी चाहिए । जो करने को कह रही हूँ, उसे करो ।

भोग के अन्त में समता की प्राप्ति

इसके बाद श्रीमती साधना की मौसी ने माँ से कहा–"माँ, नाना प्रकार की ज्वाला–यंत्रणा में जल रही हूँ ।"

माँ–(हँसकर) यह तो अच्छा है ।

प्रश्नकर्त्रीके मन में जो भाव रहे हों, उन्होंने खेद के साथ कहा– "क्या तुम यही चाहती हो ?"

माँ–(हँसकर) देहधारण भोग के लिए है, फलतः रोगशोकादि कष्ट होने पर सोचना चाहिए कि भोग कटता जा रहा है । शरीर रहने पर ज्वाला–यंत्रणा होगी ही । जल–जलकर अंगारा बनना पड़ेगा । अंगार आगे चलकर राख हो जायगा । तब जाकर ज्वाला समाप्त होगी । अभी लकड़ी है, इसलिए ज्वाला अनुभव कर रही हो ? जब राख हो जायगा तब आग नहीं रहेगी, ज्वाला भी नहीं रहेगी । उस समय जो भाव आयेगा, उसी भाव के साथ मिल जायगा । देखा होगा, राख शरीर पर पोतने पर शरीर के साथ मिल जाता है । दूसरी ओर पानी में मिलाने से पानी में घुल जाता है ।

वासना–माँ, आजकल तुम हम लोगों को नहीं चाहती ।

माँ–तुम लोग मुझे चाहो या न चाहो, तुम लोगों के बिना मेरा चलता नहीं ।

इतना कहकर माँ खूब हँसने लगी ।

शुद्धभाव से परमात्मा तुष्ट और पुष्ट होते हैं

अध्यापक श्रीयुत् सत्येन्द्रनाथ भंद्र महाशय की कन्या श्रीमती अरुणा माँ के निकट बैठी थी । बी. ए. पास करने के बाद आप आनन्दमयी गर्ल्स स्कूल में अध्यापन कर रही हैं । माँ ने उनसे पूछा–"तेरी पढ़ाई–लिखाई क्या समाप्त हो गयी है ? आजकल तू क्या कर रही है ?"

अरुणा–नौकरी कर रही हूँ ।

माँ–कितना पाती है । कितना जुटा पायी है । मुझे खिलाने के बाद कुछ जुटाकर रखना पड़ेगा ।

इतना कहकर माँ हँसने लगी ।

अरुणा–तुम्हारी बात का मतलब नहीं समझी ।

माँ–मेरी बात का अर्थ क्या है ।

यही प्रश्न माँ सभी से पूछने लगीं । मेरी ओर देखती हुई माँ ने कहा–"तुम तो चुपचाप पीछे बैठे रहते हो । बताओ मेरी बातों का क्या अर्थ हैं ?"

माँ–(अरुणा से) ज्ञान और अर्थ जो कुछ पा रही हो, उससे अभाव बढ़ता जा रहा है । इस प्रकार के ज्ञान और अर्थ से कोई लाभ नहीं।

अरुणा–तो क्या नौकरी छोड़ दूँ ?

माँ–यह क्यों ? सभी कर्मों में जिस प्रकार समय देते हो, उसी प्रकार सत्कर्म में भी समय दो । आहार, निद्रा, गप में समय बिताते हो । नाम के लिए अधिक से अधिक समय दो । नाम के लिए जो समय दोगे, वह बेकार नहीं जायेगा । वह संचय होता रहेगा । इसीलिए कहती हूँ कि मुझे खिलाना होगा, मेरे जीवन की रक्षा करनी होगी। अर्थ का उपार्जन वृथा नहीं हैं । इससे शरीर पुष्ट होता है, पर मन को भी पुष्ट करना चाहिए । इसीलिए कहती हूँ कि मन के खाद्य का संचय करो । तुम स्कूल में काम कर रही हो । स्कूल के काम के पीछे नित्य ३–४ घण्टा समय लगता है । इन ३–४ घण्टों के अलावा जिस प्रकार अपने स्कूल के कार्यों के बारे में दिनभर अक्सर याद आती है, उसी प्रकार धर्मभाव बढ़ाने पर वह भी सांसारिक कार्यो में सर्वदा मन में जगती रहेंगी । इसी प्रकार सद्‌भाव को बढ़ाना चाहिए।

माँ जब यह बातें कर रही थी, उसी समय माँ से गोपनीय बात कहने के लिए एक सज्जन माँ को ले गये । अब माँ के साथ कोई बातचीत नहीं हो सकती जानकर हम लोग चले आये ।

घर न आकर आश्रम में एक जगह खड़ा होकर खुकुनी दीदी से बातें करने लगा । दीदी के निकट सुना कि जब हम लोग नवद्वीप से चले आये तब माँ महिलाओं को लेकर एक दिन कीर्तन करती

रहीं। धर्मशाले के जिस कमरे में माँ रहती थीं, उसी घर में कीर्तन होता रहा । पुरुषों को कमरे से बाहर कर दिया गया था । कमरे की खिड़की और दरवाजे बन्द करके कीर्तन किया गया था । उस कीर्तन में लोगों को भावावेश हुआ था। किस प्रकार कीर्तन करना चाहिए, इस सम्बन्ध में उस दिन माँ सभी महिलाओं को उपदेश देती रहीं ।

माँ ने कहा था–कीर्तन में उछल–कूद करना ठीक नहीं हैं । धीर भाव से करना चाहिए तभी कीर्तन में फल की प्राप्ति होती है ।

दीदी से यह भी पता चला कि जिस दिन माँ कीर्तन करनेवाले के साथ सोने का गौरांग देखने गयी थीं, उस दिन एक कुत्ते ने इतनी भीड़ को हटाते हुए माँ के चरणों के समीप आकर आश्रय ग्रहण किया था । उसे भगाने का काफी प्रयत्न करने पर भी वह भागा नहीं । अन्त में माँ ने कहा कि पैर के पास पड़े रहने दो ।

श्री श्री माँ का सम्प्रदाय

दीदी ने कहा कि नवद्वीप में रहते समय एक दिन एक पण्डित माँ से मिलने के लिए आये थे । बातचीत के बीच उन्होने माँ से पूछा कि आप किस सम्प्रदाय की हैं ?

उत्तर में माँ ने कहा था–"सम्प्रदाय से मतलब गुरु से होता है। बचपन में मेरे गुरु माता–पिता थे । विवाह के बाद पति गुरु हुए। और अब तुम सभी हो । यहाँ तक कि पेड़–पौधे भी मेरे गुरु हैं। अब स्वयं ही समझ लो कि मैं किस सम्प्रदाय की हूँ ।"

पण्डित पीछे हटनेवाले व्यक्ति नहीं थे । उन्होंने कहा–"अगर मैं सबेरे से शाम तक तुम्हारा कार्य–कलाप देख पाता तो निश्चित रूप से बता सकता था कि तुम किस सम्प्रदाय की हो ।"

२४ पौष, १३४३ फ. बंगाब्द, शुक्रवार ८ जनवरी, १९३७ ई. । आज सवेरे कालेज का काम समाप्त कर जब आश्रम में आया तो पता चला कि माँ सिद्धेश्वरी गयी हैं । यह सुनकर अतुल ब्रह्मचारी और मैं सिद्धेश्वरी रवाना हो गये । कुछ दूर जाने के बाद पता चला कि मां सिद्धेश्वरी से श्रीयुत् अखिलचन्द्र चक्रवर्ती के घर गयी हैं । अखिल बाबू का लड़का अस्वस्थ है । फलतः वे अनुरोध करके माँ को ले गये हैं । यह सुनकर हम लोग अतुल बाबू के घर की ओर चल पड़े । रास्ते में ही माँ से मुलाकात हो गयी । माँ को प्रणाम करते ही माँ ने कहा–हम लोग कल की कलकत्ता जा रहे हैं ।

तीसरे पहर माँ के साथ मुलाकात या कोई बातचीत नहीं हुई। सुना कि विश्वविद्यालय की कुछ छात्राओं के साथ स्वामी अखण्डानन्द के कमरे में बातचीत कर रही हैं । शाम तक मैदान में बैठा प्रमथ बाबू से बातें करता रहा ।

आज रात को महिलाओं को लेकर माँ कीर्तन करनेवाली हैं । सभी महिलाओं को माला–चन्दन साथ में लाने को कहा गया है । शाम को घर वापस आकर जलपान किया । इसके बाद पत्नी और लड़कियों को लेकर पुनः आश्रम में आया ।

आश्रम आने पर देखा कि माँ नामघर में बैठी हैं । स्त्री–पुरुषों की काफी भीड़ हैं । मैं भीतर जाकर एक जगह बैठ गया । श्रीयुक्त नगेन्द्र दत्त महाशय नवद्वीप से एक साधु को ले आये हैं । वह साधु माँ को कीर्तन सुना रहा है । वाद्यहीन कीर्तन जम नहीं पा रहा था। गीत कुछ लम्बा भी था ।

योगमाया और महामाया एक ही है

गायन समाप्त होने के बाद साधु ने माँ से कहा–"माँ, तुम लोग पतितों का उद्धार करने आती हो ।"

माँ – पतित उद्धारण नाम है, यह तो तुम लोगों की जबानी सुना है ।

साधु–माँ, तुम छलना मत करो ।

माँ–चलन रहने पर छलना चलती है ।

मुझे लगा जैसे माँ अत्यन्त संक्षेप में जवाब दे रही हैं । माँ की बातों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझ सका, पर मन ही मन एक अर्थ लगा लिया ।

नगेन्द्र दत्त महाशय ने कहा–"तुम्हारी तो सिर्फ छलना ही चल रही है ।"

माँ–छलना कहाँ चलती है ? तुम लोगों का स्वभाव ही छलना है । उनकी (अर्थात् भगवान् की) छलना न रहती तो आनंद न मिलता।

साधु–भगवान् की छलना तो रसिक की छलना है । आप हम लोगों से दूसरे प्रकार की छलना कर रही हैं ।

माँ–एक को छोड़ देने पर दूसरा नहीं रहता । इसीलिए कहती हूँ कि योगमाया और महामाया एक ही हैं । हमलोग अज्ञानी हैं, इसलिए इन दोनों को अलग–अलग मानते हैं । कैसे हम ज्ञान प्राप्त करेंगे, इसे भी नहीं जानते । यहाँ तक कि हम ठीक–ठीक जिद्द या अभिमान करना भी नहीं जानते । क्योंकि इसी में हम लोगों की कामना–वासना रहती है । जब तक कामना–वासना रहेगी तब तक प्रकृत तत्त्व हमारे निकट प्रकट नहीं होगा ।

वैषयिक विषय में स्वावलम्बन, कृपा केवल धर्म के संबंध में

नगेन बाबू–किसने हमारे शुद्ध स्वरूप को ढाककर रखा है ।

इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से न देकर माँ ने नगेन्द्र बाबू से पलटकर प्रश्न किया–"गतागति समझो किस रूप में ? संसार में कुछ भी भिन्न रूप में नहीं जा रहा है । सभी एक साथ जा रहे है। सृष्टि, स्थिति, लय सभी एकत्र चल रहे हैं । गृहस्थी चलाते समय

सब सामान इधर–उधर कर चुके हो । इसीलिए तुम लोगों के भीतर पेंच लगा हुआ है । गृहस्थी को तह की तरह सजाकर रखना चाहिए। इससे कोई गड़बड़ी नहीं होती। जिस तरह तह लगाओगे, उसी प्रकार खोल सकोगे ।

नगेन बाबू–काश ! कोई तुम्हारे भीतर का पेंच खोलता ।

माँ–तुम सब अन्तर्द्रष्टा हो ।

माँ का उत्तर सुनकर नगेन बाबू झेंप गये । माँ के निकट से आध्यात्मिक तत्त्व न निकाल पाने के कारण निराश होकर बोले–"तुम तो परदेश घूम आयी हो । हम लोगों के लिए क्या लायी हो ?

माँ–मैं कहीं घूमने नहीं गयी । एक मकान के बाग में टहल रही हूँ । जब घर में टहल रही हूँ तब तुम लोगों के लिये क्यां लाऊँगी?

नगेन बाबू–यहाँ चालाकी नहीं चलेगी ।

माँ–(हँसकर) "क" "ख" ठीक से सीखा नहीं है और कहता है कि वह मोटीवाली किताब देना । वही पढ़ूंगा । पाठ बता देने पर भी पढ़ता नहीं, जो कहा जाता है करता नहीं । केवल बड़े–बड़े प्रश्न पूछता है ।

नगेन बाबू–तुम हम लोगों को समझने क्यों नहीं देती ?

माँ–मैं समझने नहीं देती, कैसा ?

नगेन बाबू–तुम समझने नहीं देती । अगर तुम बुद्धि रूप में हम लोगों के हृदय में उदित हो जाओ तो हम लोग सब समझ सकते हैं। शास्त्रों में भी है–"या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।"

माँ–खाने–पीने, घर–गृहस्थी के काम करने में हम लोग अपनी बुद्धि लगा सकते हैं । केवल इस बारे में "बुद्धिरूपेण संस्थिता ।"

माँ ने इस ढंग से कहा जिसे सुनकर उपस्थित सभी लोग हो–हो कर हँस पड़े ।

नगेन दत्त महाशय बार–बार माँ से आघात पाने के बावजूद दबे नहीं। उन्होंने कहा–"माँ तुम तो प्राणों की वासना जानती हो, तब जो चाहिए उसे क्यों नहीं देती ?"

माँ ने केवल यही कहा–"माँ कहाँ ?"

प्रबल प्रारब्ध से निस्तार कैसे ?

इसी समय हमारे विश्वविद्यालय के अध्यापक श्रीयुत् हरिप्रसन्न मुखोपाध्याय महाशय आये। मैंने उनके बैठने के लिए माँ के पास स्थान बना दिया। कुछ देर बैठने के बाद उन्होंने माँ से पूछा–"अक्सर मैं यह देखता हूँ कि अनिच्छा रहते हुए भी रिपुओं के वश में हो जाते हैं। इसका प्रतिकार क्या है ?"

माँ–हां, अक्सर मन इच्छा के विरुद्ध रिपुओं के वशीभूत हो जाता है। इसके प्रतिकार का उपाय यह है कि जिससे मन उसके वशीभूत न हो, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। पर व्याकुल होने पर व्यवस्था और कर्म दोनों ही होता है।

हरि बाबू–लेकिन भोग रहने पर तो सद्भाव और सद्वृत्ति जागृत नहीं होगी ?

माँ–बच्चों को जिस प्रकार जबरन पढ़ाते हो, उसी प्रकार इस विषय में करना पड़ेगा। बच्चे पढ़ना–लिखना नहीं चाहते। पढ़ाई की अपेक्षा उन्हें खेल–कूद अधिक पसन्द आता है। लेकिन उनके बारे में तुम लोग कभी यह नहीं कहते कि खेलते–खेलते इनके खेलने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाय, बाद में पढ़ेंगे–लिखेंगे। बच्चों में खेलने की इच्छा रहने पर भी जिस प्रकार तुम लोग जबरदस्ती पढ़ाते–लिखाते हो, धर्म के बारे में भी यही बात है। "दुर्लभ मनुष्य योनि प्राप्त करने पर मेरे दिन ऐसे ही गुजर जायेंगे। मैं भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता। पुनः मुझे जन्म–मृत्यु के भीतर से नाना प्रकार के कष्ट भोगने

पड़ेंगे।'' इस प्रकार की चिन्ता करते हुए नाम के प्रति रूचि लाना चाहिए। आनन्द और शान्ति सभी के लक्ष्य हैं । कीट–पतंग सभी यह आनन्द और शान्ति चाहते हैं । लेकिन पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति किसी भी जागतिक पदार्थ से प्राप्त नहीं कर सकते । मन शान्ति किसी भी जागतिक पदार्थ से प्राप्त नहीं कर सकते । मन अशान्त भाव से एक विषय से अन्य विषयों की ओर दौड़ लगा रहा है, वही भी इसी आनन्द और शान्ति प्राप्त करने के लिए ही । आनन्द और शान्ति पाने के लिए धन, मान, यश आदि जागतिक सामग्रियों के पीछे मन दौड़ता है । लेकिन यह सब खण्ड आनन्द उसे सुखी नहीं कर पा रहा है। वह चाहता है पूर्णानन्द । मन वह नहीं पा रहा है, इसलिए चंचल है । इसीलिए कहती हूँ कि मन को सुखाद्य दो । कीर्तन, ध्यान, नाम, जप इत्यादि मन का भोजन है । यह सब मन को देने पर एक दिन मन शान्त हो जायेगा। इसके अलावा कोई भी जागतिक सामग्री मन को दोगे तो वह शान्त नहीं होगा। जागतिक चीजों का स्वभाव ही है अभाव को जगाये रखना। देखा होगा कि किसी का ४–५ मकान रहने पर भी उसका अभाव समाप्त नहीं होता। उस समय भी वह सोचता रहता है कि अगर एक मकान और होता तो ठीक था । वहीं दूसरी ओर कई हजार रूपया संचय करने वाले की इच्छा और संचय करने की होती है । जागतिक रूप में सभी घटनाएँ इसी प्रकार होती हैं। केवल परम धन प्राप्त करने, ब्रह्म विद्या प्राप्त करने पर अभाव चला जाता है । यह धन व्यक्ति के स्वभाव को स्थित करता है । साधना करते समय निराश नहीं होना चाहिए । सर्वदा अपने को इसी प्रकार उत्साहित करना चाहिए कि मूर्ख बालक भी पढ़–लिखकर परम विद्वान हो सकता है तब अगर मैं प्रयत्न करूँ तो ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता ?

हरि बाबू–प्रवृत्ति अगर प्रबल हो तो शिक्षा कैसे हो सकती है? आपने बताया कि पिता जबरदस्ती बालक को शिक्षा देगा । लेकिन अगर ऐसा हो कि लड़का ही जबरदस्ती करके पिता को खेल में खींच ले तब उसे कौन शिक्षा देगा ?

माँ–(सन्तुष्ट होकर) तुमने ठीक पकड़ा है । सभी लोग ऐसे पकड़ नहीं पाते । लेकिन यह जान लो कि लड़का अपने बूढ़े पिता को खेल में खींचकर नहीं ले जा सकता ।

हरि बाबू–प्रबल प्रारब्ध का दमन नहीं होता । इसका क्या उपाय है, बताइये ।

माँ–ऐसे क्षेत्र में मैं भोग और त्याग के बीच मैत्री करने को कहती हूँ अर्थात् भोग को जब बिलकुल छोड़ नहीं सकते तब भोग करते–करते उसके बीच अभ्यास करना उचित है। जैसे सप्ताह में छः दिन खूब ठाठ से भोजन किया और एक दिन केवल भात और आलू खाया। इसी प्रकार करते–करते क्रमशः भोग–वासना में कमी हो जाती है। यह भी जान लो कि जब मनुष्य योनि में जन्म लिया है तब कुछ सुकृति है। अगर कुछ सुकृति नहीं रहता तो मनुष्य योनि में जन्म नहीं होता। मनुष्य जन्म होने पर समझना चाहिए कि जीव आत्मज्ञान की धारा में आ गया है। तब इच्छा करने पर ऊपर उठ सकता है। दूसरी ओर नीच जन्म भी ग्रहण कर सकता है। फलतः मनुष्य जन्म प्राप्त करने के कारण कम के कम तपस्या की दृष्टि से कुछ समय जबरन भगवान् का नाम लेना उचित है। यह सच है कि अगर प्रबल प्रारब्ध विरुद्ध रहे तो सद्भाव लेकर अधिक दिनों तक नहीं रहा जा सकता। बीच–बीच में त्रुटि–विच्युति हो सकती है। लेकिन प्रबल प्रारब्ध के विरुद्ध कुछ नहीं होता, यह करना कठिन है। सत्पथ में अग्रसर होने की चेष्टा करने पर उसका एक छाप मन पर पड़ता है। वहीं दूसरी ओर अक्सर

अनुताप के रूप में आकर व्यक्ति को सत्पथ की ओर चालित करने की चेष्टा करता है। यही सत्संग का रूप है। वह भी मन पर प्रभाव डाल जाता है। तुम लोग जिसे संन्यास–संन्यास कहते हो, वह गेरुआ पहनने से नहीं होता। संन्यास होता है अपने स्वभाव के गुण से। जैसे पेड़ की जड़ में पानी देने पर फल–फूल अपने आप होता है उसी प्रकार भगवान् का नाम लेकर पड़े रहने पर अपने आप संन्यास भाव जाग उठता है। वास्तविक संन्यास–भाव जाग उठने पर देवता भी प्रलोभन देकर संन्यासी को रोक नहीं पाते। इसीलिए कहती हूँ कि भगवान् का नाम लेते चलो। कुछ नहीं होता, यह सत्य नहीं है। जीवमात्र ही आनन्द का खिलौना है। वह खण्ड आनन्द में तुष्ट नहीं होगा। जिसमें वह पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सके, इसके लिए प्रयत्न करो।

हरिप्रसन्न बाबू प्रसन्न होकर माँ को प्रणाम करने के पश्चात् चले गये। इसी समय बाउल बाबू आ गये।

वे माँ के निकट बैठते ही बोले–"तुम स्थिर कब होओगी ?"

माँ–जो स्थिर हैं, वे अस्थिर नहीं हैं।

बाउल बाबू–सगुण क्या निर्गुण नहीं होता ?

माँ–सगुण कहीं निर्गुण होता है ? जीव कहीं शिव होता है ?

बाउल बाबू – तुम चतुर महिला हो। बातचीत में तुमसे जीतना कठिन है।

माँ – तुम शायद पुरुष होकर बेठे हो ? (सभी हँस पड़े) तुम्हारी नारी कहाँ है ?

इसी प्रकार माँ के साथ बाउल बाबू का वाक्–युद्ध प्रारम्भ हो गया। बाउल बाबू विजय प्राप्त नहीं कर सके तो गीत गाने लगे –

"तुइ कि जानिवि नारि के मन" इत्यादि।

यह गीत समाप्त होने पर पुनः गाने लगे–

"पुरान कथा जागिये दे रे

उहा नूतन हये उठुक फुटे।" इत्यादि।

इसके बाद एक पर एक गीत बाउल बाबू गाते रहे। बाउल बाबू का गायन सुनकर बाबा भोलानाथ नामघर के उत्तर की ओर आकर खड़े हो गये और बाउल बाबू को इशारे से बुलाया।

माँ ने बाउल बाबू से कहा–"अब जाकर दोनों व्यक्ति कलम पकड़ो।"

बाबा भोलानाथ का मौन चल रहा है, फलतः लोगों में बात–चीत करने के लिए कलम–दावात की जरूरत होगी।

बाउल (माँ से) – अगर तुम स्याही नहीं बनी तो कलम लेकर क्या करूँगा ?

माँ – भोलानाथ के निकट स्याही–कलम दोनों ही है।

बाउल बाबू बातों के माध्यम से माँ को लाजवाब बनाने की आशा छोड़ उठ खड़े हुए और जाते हुए बोले – "कंजूस मत बनो, सब लूटा दो।"

माँ – (हँसकर) बाउल के निकट सब भण्डार।

बाउल बाबू पुनः गाने लगे – "आय देखी मन करि चुरि।" इत्यादि।

गीत गाना बाउलों का हक होता है। लोगों की जबानी सुन चुका हूँ कि गीत गाते हुए बाउल बाबू साधन–भजन करते हैं। कभी गहरी रात को रमना की काली बाड़ी में बाउल बाबू को गाते सुना था। बाउल बाबू श्री श्री माँ के आदिभक्त हैं। बाउल बाबू के जाने के बाद

माँ ने हम लोगों से कहा – "सिद्धेश्वरी मन्दिर जब सात दिनों के लिए रहने गयी थी तब उन दिनों बाउल वहाँ नित्य जाया करते थे। इतना कष्ट सहकर तुम लोग वहाँ कभी नहीं जा सकते थे। दिन भर यह स्कूल में काम करता था और रात को घूटने भर कीचड़ में चलता हुआ मेरे लिए फल लाया करता था। वही फल मैं खाती थी।

बाउल बाबू का गायन समाप्त होने के बाद प्रमथ बाबू ने दो एक गीत माँ को सुनाया। इस प्रकार रात के बारह बज गये। माँ के पास हम लोगों के ठहरने का समय समाप्त हो गया। कारण १२ बजे माँ महिलाओं को लेकर कीर्तन करने वाली हैं। उस समय हम लोगों को रहने की आज्ञा नहीं है। हम लोग घर चले आये। जो लोग रह गये, वे नामघर से हटकर अन्य कमरों में चले गये।

९ जनवरी, सन् १९३७ ई०, शनिवार। आज माँ ढाका से चली जाएँगी। सबेरे जाते ही खुकुनी दीदी की जबानी रात की घटना सुनने में आयी। कल शाम को गेण्डरिया से एक महिला माँ से मिलने के लिए आयी थीं। जब उन्होंने जाने की अनुमति माँगी तब उन्हें रात भर आश्रम में ठहर जाने के लिए कहा गया था। माँ की इच्छानुसार खुकुनी दीदी यह कह चुकी थी। रात में कीर्तन के समय यह महिला भावावेश में काफी लोटती–पोटती रहीं। बाद में पता लगा कि उक्त महिला भोला गिरि की शिष्या है।

रात तीन बजे कीर्तन खूब जम गया था। उसी समय स्वयं माँ गाती हुई सभी को आनन्द–विभोर करने लगीं। कीर्तन के भावावेश में माँ की धूप–वस्त्र द्वारा आरती की गयी थी। माँ और भी जगह महिलाओं के साथ कीर्तन कर चुकी हैं, पर इस तरह से आरती प्रथम बार हुई।

कीर्तन किस रूप में करना चाहिए, इस विषय पर माँ महिलाओं को उपदेश देती रहीं। कीर्तन आरम्भ करने से पूर्व महिलाओं से दस मिनट चुप रहने के लिए माँ ने कहा था और कीर्तन समाप्त होने के बाद भी दस मिनट चुप रहने का निर्देश दिया गया था। प्रत्येक रविवार को महिलाएँ जब कीर्तन करेंगी तब ऐसा करेंगी। इस समय जो कुछ दर्शन करोगी, उसे एक माह बाद दूसरों से कहोगी। कीर्तन खड़े-खड़े करना पड़ेगा ओर कमरे के दरवाजे बन्द कर देने पड़ेंगे ताकि दूसरे लोग देख न सकें।

आश्रम के बारे में माँ ने कुछ नये बन्दोबस्त किये। दीदी माँ के घर जाते समय मार्ग में माँ और भूपति बाबू में ये बातें होती रहीं। उस समय मैं मौजूद था।

माँ ने हम लोगों से कहा-"आश्रम की सारी व्यवस्थाएँ तुम लोगों को करना चाहिए। यह सब सांसारिक कार्य हैं। तुम लोग जैसे अपने घर के कार्य करते जा रहे हो, उसके साथ-साथ आश्रम के लिए सौदा वगैरह लाना आदि जो सामान्य कार्य है, उसे भी करना चाहिए। ब्रह्मचारियों को यह सब न करके पूजा-पाठ में लगे रहना चाहिए। जब उन लोगों ने घर-गृहस्थी का कार्य छोड़ दिया है तब उनके जिम्मे यह बोझ नहीं देना चाहिए। तुम लोग कुलदा को यह सब सारी बातें कहना।"

हम लोगों को कुलदा से यह सब नहीं कहना पड़ा। माँ ने स्वयं ही उनसे कह दिया था।

दीदी माँ के घर से माँ रमना की कालीबाड़ी में गयीं। वहाँ से आश्रम लौट आयीं। दोपहर के ११ बजे। माँ, खुकुनी दीदी आदि भोजनादि के पश्चात् तैयार हुए। हम लोग श्री श्री माँ के साथ नारायणगंज तक गये। वहाँ माँ से विदा लेकर २-३० पर ढाका वापस आ गये।

तृतीय अध्याय

जन्मोत्सव पर श्री श्री माँ का ढाका आगमन

श्री श्री माँ ढाका से कृष्णनगर और बहरमपुर गयीं। वहाँ से विंध्याचल गयी थीं। विंध्याचल से चटगाँव और वहाँ से कक्स बाजार गयी थीं। कक्स बाजार में लगभग एक माह तक थीं। इसके बाद पुनः लम्बी यात्रा के लिए गयीं तो काशी, दिल्ली, बरेली, नैनीताल आदि स्थानों में गयीं। नैनीताल से प्राप्त खुकुनी दीदी के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि जन्मोत्सव के अवसर पर माँ के ढाका आने की सम्भावना है।

नैनीताल से माँ जमशेदपुर होती हुई बारिशाल में श्रीयुत गिरिजा बाबू[१] के यहाँ एक आश्रम की स्थापना के उपलक्ष्य में गयीं। वहाँ से ढाका आते समय ज्योतिष बाबू के अनुरोध पर चाँदपुर उतरकर अपने जन्मस्थान खेवड़ा गाँव गयीं। खेवड़ा ग्राम में दादा महाशय का मातुलालय है। दादा महाशय मातुल–सम्पति बेचकर खेवड़ा गाँव छोड़ चुके हैं। दादा महाशय का मातुलालय तथा श्री श्री माँ के जन्मस्थान पर एक मुसलमान ने अपना भवन बना लिया है। खेवड़ा गाँव जाकर ज्योतिष बाबू आदि ने श्री श्री माँ की जन्मभूमि के ऊपर एक बृहद पुआल का ढेर देखा। माँ की जन्मभूमि को खरीदा जा सकता है या नहीं, इस सम्बन्ध में बहुत दिनों से जल्पना चल रही है।[२]

१९ मई, सन् १९३७ इ, बुधवार। श्री श्री माँ चाँदपुर से ढाका वापस आ गयी। माँ का स्वागत करने के लिए केवल भूपति बाबू

१ श्रीयुत गिरिजाप्रसन्न सरकार। आप कृषि विभाग में नोकरी करते हैं और श्री श्री माँ के आदिभक्त हैं।

२ यह स्थान खरीद लिया गया है और खेवड़ा ग्राम में एक आश्रम का निर्माण किया गया है।

नारायणगंज गये थे। मेरी पत्नी अस्वस्थ थी, इसलिए मैं नहीं जा सका था। तीसरे पर ६ बजे आश्रम आने पर देखा कि श्री श्री माँ अनेक औरतों से घिरी मैदान में टहलने के लिए जा रही हैं। आश्रम में आकर बाबा भोलानाथ, ज्योतिष बाबू, स्वामी अखण्डानन्दजी तथा स्वामी शंकरानन्दजी को प्रणाम किया। किसी के साथ विशेष बात नहीं हुई। मेदान मैं आकर माँ की प्रतीक्षा करने लगा। माँ कुछ देर टहलने के बाद आश्रम में आ गयी। उस समय भी माँ के चारों ओर महिलाओं की अपार भीड़ थी। मैं जरा दूर खड़ा माँ का दर्शन करने लगा। अचानक माँ की निगाह मुझ पर पड़ी।

उन्होंने मुझसे पूछा "पिताजी मजे में हो? इस बार कैसे झंझट में फँस गये?"

मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। उत्तर देने पर जोरों से चिल्लाना पड़ता वर्ना माँ सुन नहीं पातीं।

मेरे निकट कुछ भी नया नहीं है

श्रीयुत् मोतीलाल राय सपत्नीक माँ से मिलने के लिए आये हैं। मोती बाबू की पत्नी जीवन में प्रथम बार आयी हैं। मोती बाबू के साथ प्रमथ बाबू भी थे।

मोती बाबू की पत्नी ने ज्योंही माँ को प्रणाम किया त्यों ही प्रमथ बाबू ने माँ से कहा – "माँ, इन्हें (मोती बाबू की पत्नी को) ठीक से देख लो, क्योंकि तुम्हारे निकट नयी हैं।"

यह सुनकर माँ हँसती हुई बौली – "मेरे निकट कुछ भी नया नहीं है, सभी पुरातन है।"

माँ लोगों के साथ दो–चार बातें करने के बाद दूसरी ओर बढ़ गयीं। मैं माँ के पीछे–पीछे जाकर खुकुनी दीदी से बातचीत करने लगा। दीदी की जबानी पता चला कि माँ उत्सव के बाद कैलास जानेवाली

हैं। जिन दिनों माँ अलमोड़ा में थीं, कुछ पहाड़ी लड़कियों से भेंट हुई थी। उन लोगों का निवास कैलास से पाँच मील दूर है। अलमोड़ा में वे सब पढ़ने–लिखने आयी थी। माँके साथ उनका पूर्व परिचय नहीं था। दस मिनिट नाम करने के लिए श्री श्री माँ के चित्र सहित एक सूचना लोगों में वितरित की गयी थी। यह सूचना इनमें से किसी एक लड़की के हाथ लग गयी थी। चूँकि प्रकाशित चित्र से माँ की वर्तमान आकृति से सादृश्य बहुत कम था, फिर भी उन्होंने माँ को गाड़ी में जाते देख पहचान कर गाड़ी रूकवायी और सभी ने प्रणाम किया।

इस प्रथम दर्शन के बाद से वे सब माँ के प्रति गम्भीर रूप से आकर्षित हुई थीं। इसके बाद से वे सब माँ की नाना प्रकार से पूजा करने लगीं। गीत बनाकर, कीर्तन करने माँ के प्रति अकृत्रिम भक्ति का परिचय देने लगीं। इन लड़कियों के सादर अनुरोध को वे टाल नहीं सकी और कैलास–दर्शन करने की स्वीकृति उन्होंने दे दी।

दीदी के साथ और भी तरह–तरह की बातें होती रही। शाम होते देख में घर चला आया। इतनी भीड़ में माँ के साथ बात करने की सुविधा प्राप्त नहीं होगी जानकर जरा देर से आश्रम पहुँचा। वहाँ जाकर देखा कि अभी तक पर्याप्त भीड़ है।

माँ को प्रणाम करके बेठते ही माँ ने पूछा–"माताजी कैसी हैं?"

मैंने कहा – "ठीक हैं।"

गणेश बाबू माँ के पास बैठे स्वरचित कविता पाठ करने लगे। खुकुनी दीदी माँ को खिलाने लगी। दीदी माँ भी पास ही बैठी थीं। माँ का भोजन समाप्त होने पर दीदी माँ ने मुझे प्रसाद का एक बड़ा लड्डू दिया।

इसके बाद माँ घर से बाहर निकलकर नामघर की ओर बढ़ीं। आश्रम के प्रांगण में आकर काफी देर तक लोगों से खड़ी होकर बातें करती रहीं।

माँ ने कहा–"बरेली की लड़कियाँ अन्य स्थानों की लड़कियों से कहीं अधिक स्वाधीन भाव से घूमती फिरती हैं।" माँ ने यह भी बताया कि जब वे गयी थीं तब घर–गृहस्थी का काम निपटा कर माँ के साथ अधिक समय व्यतीत करती थी। एक दिन उन लोगों ने माँ को कृष्ण रूप में श्रृंगार कर, बांसुरी लेकर त्रिभंग रूप में खड़ा करके फोटो खींचा था। खुकुनी दीदी के निकट सुन चुका हूँ कि ये महिलाएँ माँ को श्रीकृष्ण रूप में कल्पना करके अपने को गोपी भाव में समझकर उनके साथ संगत करती रहीं और माँ को संतोष देती रहीं।

श्री श्री माँ और श्रीयुक्ता अपर्णा देवी

बातचीत के सिलसिले में अपर्णा देवी की चर्चा चल पड़ी। अपर्णा देवी के पति जब बीमार पड़े तब स्वप्न में उन्होंने माँ का दर्शन किया। और जब स्वप्न में उन्होंने माँ का दर्शन किया तब समझ गयीं कि वे अच्छे हो जायँगे।

एक बार उनके पति बहुत बीमार हुए। एक रात अपर्णा देवी ने स्वप्न में देखा कि माँ आकर कह रह रही हैं कि उनके (अपर्णा देवी के) बक्से में एक कीमती साड़ी है, अगर उसे पहनकर पति की शय्या के बगल में बैठ जाय तो उनके पति स्वस्थ हो जायेंगे। माँ ने जिस साड़ी का वर्णन किया था, ऐसी साड़ी उनके पास है, यह बात वे भूल चुकी थीं। किन्तु बक्सा खोलकर खोजने के बाद वैसी साड़ी मिल गयी। वे उस साड़ी को पहनकर पति की शय्या के पास जाकर बैठ गयी। रोग यन्त्रणा से क्षिप्त स्वामी पत्नी की इस सज्जा को देखकर मन–ही–मन जल उठे। यह बात पति की आकृति को देखते ही वे समझ गयीं। लेकिन स्वप्न वृत्तान्त बताने के लिए उनका हृदय छटपटाता रहा, पर बता नही पा रही थीं।

इतना कहकर माँ खूब हँसने लगी और हम सब भी उनके साथ हँसने लगे।

माँ जमशेदपुर की चर्चा करती हुई कहने लगी – "इस बार जमशेदपुर में मुझे उपलक्ष्य करते हुए उन लोगों ने काफी साजसरंजाम किया था। फूल–पत्तियों से गेट बनाया था और रंग–विरंगे लट्टुओं की सजावट किया था। शामियाना टांगकर पण्डाल बनाया था। हम लोग चार बजे के लगभग जमशेदपुर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही मैंने कहा – 'आसमान में बादल छा रहे हैं।'

ज्योतिष ने कहा – 'नहीं माँ यह बादल नहीं है। यहाँ के कारखानों के धुएं से आसपास ढका रहता है, इसीलिए ऐसा दिखाई दे रहा है।'

"मैंने फिर कुछ नहीं कहा। हम लोगों को शामियाना के नीचे बैठाया गया। अंधकार बढ़ता जा रहा है देखकर कुछ देर के लिए बत्तियाँ जला दी गयीं। शाम के लगभग जब यह पता चला कि हम लोग अनाहार हैं तब हम लोगों को स्नान तथा आहार करने के लिए ले गये। ज्योंही हमने घर में प्रवेश किया त्योंही प्रबल वेग से आँधी–पानी आया। देखते ही देखते पण्डाल छिन्न–भिन्न हो गया और पानी–कीचड़ से सारा स्थल सराबोर हो गया।"

"बाद में उन लोगों ने अफसोस करते हुए कहा – 'माँ, तुम्हारे लिए इतने भव्य रूप में झालर सजाकर इन्तजाम किया था, यह सब दिखा नहीं सका। सब पण्ड हो गया।"

मैंने उन लोगों से कहा कि तुम लोगों की सजावट थोड़ी देर तक देखती रही।"

खुकुनी दीदी – केवल जमशेदपुर क्यों, तुम जहाँ कहीं भी गयी हो, इस तरह पानी बरसता रहा। जब तुम कलकत्ता आयी तब गर्मी के कारण व्याकुल थे। ज्योंही तुम्हारा पदार्पण कलकत्ता में हुआ त्योंही पानी बरसा और सारा शहर ठण्डा हो गया। खेवड़ा में भी ऐसा ही हुआ था। ढाका में भी पानी बरस रहा है।

माँ–आज सवेरे जब आसमान में बादल छाये हुए थे तब मैं स्टीमरकी रेलिंग पकड़कर खड़ी थी। अखण्डानन्दजी मेरे पास खड़े थे।

अखण्डानन्दजी ने कहा – "माँ, यह बादल हमें नारायणगंज में बरसते मिलेंगे या ढाका में?"

नारायणगंज पहुँचने के पहले ही पानी बरसने लगा। माँ ने कहा – "मेरा बिछौना ठीक कर दो। अगर मैं चादर ओढ़कर सो गयी तो पानी बरसना रुक जायगा।" वास्तव में वही हुआ। हम लोग न तो नारायणगंज में भीगे और न ढाका में।

अब माँ नामघर की ओर गयीं। उनके लिए शय्या बिछायी गयी। वे सो गयी। मैं प्रणाम करने के बाद घर चला आया। उस समय रात के एक बज चुके थे।

२० मई, १९३७ ई, गुरुवार। आज सवेरे जब आश्रम पहुँचा तब दिन के १० बज गये थे। आश्रम में आकर भोलानाथ को प्रणाम किया। यज्ञकुण्ड के ऊपर एक मंदिर बनाने का कार्यक्रम चल रहा था और पंचवटी में एक अन्य यज्ञकुण्ड बन रहा था। भोलानाथ ने मुझे यह सब दिखाया।

श्री श्री माँ का सच्चिदानन्दवाला कौड़ी खेलना

पंचवटी में कुछ देर रुकने के बाद माँ के पास आया। देखा– जमशेदपुर का एक भक्त माँ को भोग दे रहा है। कुछ देर बाद माँ सच्चिदानन्दवाला कौड़ी खेलने लगीं। पहली बाजी श्रीयुत् प्रफुल्ल घोष महाशय की बड़ी लड़की जीत गयी। उसके साथ–साथ और कौन–कौन जीता, इसका निर्णय करने के लिए खुकुनी दीदी बार–बार व्यक्ति की गणना करने लगीं। खेल में विजयी होनेवालों की ओर इशारा करते हुए बताया गया कि ये ही लोग कीर्तन करेंगे।

इस पर खुकुनी दीदी संशय में पड़ गयीं तो माँ ने कहा– खुकुनी, आज तुझे क्या हो गया?"

यह बात सुनकर हम लोग हँस पड़े। माँ की बातों में इतनी ममता और इस मधुर ढंग से उन्होंने अनुयोग किया जो सुनने में भली लगी। इस बार खेल में खुकुनी दीदी हार गयीं। फलतः आंखें बन्द कर वे जप करने लगीं।

जिस समय माँ के कमरे में यह खेल हो रहा था, उस समय एक वैष्णवी मधुर कंठ से कीर्तन कर रही थी।

माँ ने पूछा –"नामघर में कौन गा रहा है? मैं जाकर देख आऊँ।"

पर प्रफुल्ल बाबू ने जाने नहीं दिया। खेल पुनः आरंभ हुआ। खुकुनी दीदी एक बार जीत गयीं। पुनः कीर्तन आरंभ हुआ। माँ खुकुनी दीदी के साथ खेल रही थीं। फलतः माँ ने गाना प्रारंभ किया और उनका साथ सभी देने लगे। माँ हाथों में करताल लेकर देवदुर्लभ कंठ से गाने लगीं–

"जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण
हरे राम हरे हरे।
एनाम बल बदने सुनाओ काने
बिलाओ जीवेर द्वारे द्वारे।"

हम लोग मुग्ध होकर सुन रहे थे । गीत समाप्त होते ही माँ मुझे सच्चिदानन्द कौड़ी वाले खेल का इतिहास बताने लगीं ।

माँ ने कहा–"हम लोग जब कॉक्सबाजार में थे, उन दिनों अनेक बच्चे मेरे पास आया करते थे । उनके साथ क्या बातचीत करती या कब तक करती ? मन लगाकर पढ़ना–लिखना, सच बात कहना, माँ–बाप की आज्ञा मानना आदि बातें कहा करती थी । जब समुद्र

के किनारे घूमने जाती तब वे सब समुद्र के किनारे से कौड़ी बीनकर लाते थे । यह देखकर मैंने उन लोगों से कहा–आओ तुम लोगों को एक नया खेल सिखा दूँ । इसी समय से सच्चिदानन्द–कौड़ी खेलने का नियम[1] तैयार हुआ और बच्चों के

---

१. मेरे स्नेहपात्र आत्मीय श्रीमान् यतीन्द्रचन्द्र मजुमदार एम.एस.सी. इन दिनों माँ से मिलने के लिए काक्सबाजार गये थे । श्री श्री माँ के साथ कौड़ी खेलने का सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ था । उसके पुत्र से मुझे सच्चिदानन्द कौड़ी खेलने के बारे में जानकारी प्राप्त हुई थी । जब खेल के बारे में मेरी जिज्ञासा बढ़ी तो उसने पत्र द्वारा जो कुछ सूचित किया वह यों है–

लगभग दिन भर छोटे–बड़े बच्चों को लेकर माँ कौड़ी खेलती है। माँ के तम्बू के निकट ही स्कूल है । बच्चे अधिक देर तक माँ के पासे रहते हैं । सच्चिदानन्द कौड़ी खेलने के नियम यों है ।

खेल में युग्म संख्यक व्यक्ति होना आवश्यक है । दोनो पार्टियों में समान व्यक्ति रहेंगे । कौड़ी फेंकने के लिए बीच मे जगह छोड़कर लोग गोलाकार रूप में बैठेंगे । पर वे इस तरह बैठेंगे कि एक आदमी एक पार्टी का, उनके बगल में दूसरी पार्टी का रहेगा । इस प्रकार गोल बनाया जायगा ।

खेल में सात कौड़ी होते हैं । कौड़ी ठीक होने चाहिए । कुछ कौड़ियाँ इस प्रकार की होती है कि घूमते–घूमते वे पट हो जाती है । ऐसी कौड़ी निकाल देना चाहिए ।

१–दान में एक कौड़ी चित्त होने पर एक होता है और उसे पुनः दान प्राप्त होता है ।

२–दान में दो चित्त होने पर कुछ नहीं होता और न दान मिलता है ।

३–दान में तीन कौड़ी चित्त होने पर कुछ नहीं होता और न दान मिलता है।

४–दान में चार चित्त होने पर 'सत्'' (सत्य) होता है और पुनः दान प्राप्त होता है ।

५–दान में पाँच चित्त होने पर 'चित्' (चैतन्य) होता है और पुनः दान मिलता है ।

६–दान में छः चित्त होने पर ''आनन्द'' होता है और पुनः दान मिलता है।

७–एक आदमी के जीतने पर पूरे दल की जीत होती है ।

८–पहला सत्य, इसके बाद चैतन्य तब आनन्द करना पड़ता है तब जीत होती है ।

९–एक–एक कर चार दान में चार होने पर 'सत्य' होता है । दूसरी ओर एक दान में चार कौड़ी चित्त हो तो सत्य होता है । चैतन्य और आनन्द के सम्बन्ध में यही नियम है ।

१०–सत्य बनाने के पहले अगर किसी दान में चैतन्य या आनन्द बनता है तो वह खराब हो जाता है, लेकिन दान मिलता है । सत्य पहले करना ही पड़ेगा।

११–चार दान में हो या एक दान में सत्य हो जाने पर चैतन्य होने के पहले एक दान में अगर छः चित्त होकर आनन्द हो जाता है तो दल की जीत हो जाती है । अर्थात् सत्य हो गया है, चैतन्य न होकर आनन्द हो सकता है, पर सत्य के बाद छः दान में एक–एक करके छः होने पर आनन्द नहीं होगा। उस वक्त पाँच पर चैतन्य होकर हाथ में एक रह जाता है । अर्थात् एक–एक करके जोड़कर आनन्द बनाने के लिए सत्य, चैतन्य एवं आनन्द सभी करना होगा । उस वक्त चैतन्य को अलग नहीं किया जा सकता।

१२–अगर हाथ में एक रहे और इसके बाद सातों कौड़ी चित्त हो जाय तब जीत हो जाती है । यहाँ सत्य चैतन्य या आनन्द की आवश्यकता नहीं होती।

१३–सातों चित्त होने पर पुनः दान प्राप्त होता है ।

१४–मगर सातों कौड़ी पट पड़ जायें तो हाथ में जो कुछ रहता है, वह सब बेकार हो जाता है । पर दान पुनः प्राप्त होता है । सत्य या चैतन्य बना लेने पर वह नष्ट नहीं होता । मान ले कि किसी को सत्य या चैतन्य प्राप्त हुआ है । इसके बाद तीन दान में एक–एक करके तीन चित्त हुए। इसके बादवाले दान में सातों कौड़ी पट पड़ गये । इससे सत्य या चैतन्य नष्ट नहीं होता । लेकिन हासिल जो रहेगा, वह नष्ट हो जायगा ।

१५–पार्टी का एक व्यक्ति सत्य, दूसरा चैतन्य और तीसरा आनन्द बनाता है तो जीत नहीं होगी । प्रत्येक को खेलते समय अलग–अलग खेलना होगा।

१६–दान में अगर दो या तीन कौड़ी चित्त होता है तो दान समाप्त हो जाता है तब बगल का खिलाड़ी दान पाता है । इस प्रकार खेल घूमता रहता है। दो या तीन के अलावा कोई भी दान पड़ने पर पुनः दान मिलता है ।

१७–दान में एक–एक करके दो या तीन चित्त हो जाँय तो जो हासिल रहता है, वह रह जाता है, नष्ट नहीं होता । इसके बाद खेल जब घूमकर पुनः अपना दान आता है तब जो दान मिलता है, उसे हासिल में जोड़ लिया जाता है ।

१८–खेल में जो लोग जीतते हैं, उन्हें हरिबोल हरिबोल कहते हुए कीर्तन करना पड़ता है । जो लोग हारेंगे, उनमें से प्रत्येक को १०८ बार इष्टमंत्र जप करना होगा। जिनकी दीक्षा नहीं हुई है, ऐसे लोग "माँ" अथवा कोई भी ईश्वर वाचक नाम जपते रहेंगे। कौड़ी खेलने का नियम यहाँ तक लिख गया । ठीक से समझा सका या नहीं, पता नहीं । खेलते समय अगर कहीं असुविधा ज्ञात हो तो सूचित कीजिएगा ।

कौडी खेलने के बारे में माँ और बाबा भोलानाथ का झगड़ा उल्लेखनीय है। बच्चों के साथ गोल बनाकर माँ कौड़ी खेलने बैठ जाती है । एक ओर माँ और दूसरी और भोलानाथ । साथ में स्वामीजी भी रहते हैं । खेल के बाद कौन कितनी बार जीता है, इस प्रश्न पर माँ और भोलानाथ में झगड़ा होता है । एक दूसरे को 'काँठा' कहते हैं । जो हार जाता है वह किसी और दिन जब वे जीते थे, उन दिन की चर्चा करते हुए अपने पक्ष को बलवान् बनाते हैं । इसके बाद आपस में हँसी होती है।

किसी दान में दो कौड़ी आपस में सटे रहने के कारण चित्त हैं, पर एक को हटाते दूसरा लुढ़ककर पट हो जा सकता है । इन दोनों को लेकर माँ और भोलानाथ में झगड़ा होता है । एक कहता है तीन हुआ है, दूसरा कहता है चार हुआ है ।

किसी समय दान देते समय माँ कहती हैं–'चलो, भगा के (भगवान् के) हाथ छोड़ रही हूँ । देखूँ क्या होता है ।'

किसी समय शायद भोलानाथ की पार्टी के किसी लड़के को लक्ष्य करके माँ कहती हैं–'मुझसे मांग, कहो, माँ, मुझे जिता दो । वर्ना हार जायगा।' भोलानाथ दोनों हाथ हिलाकर ऐसा करने को मना करते हैं । बालक कहता है–'नहीं, मैं मांगूँगा नहीं । तुम हिन्दू हो और मैं ब्राह्म हूँ ।'

माँ कहतीं–'मैं भी ब्राह्म हूँ, फिर भी तू मांग ।'

बालक कहता–'नहीं, मैं मांग नहीं सकता ।'

माँ–'ठीक है तब खेल । अब तू जीत नहीं सकता ।'

खेल चालू रहता है । भोलानाथ हार जाते हैं । माँ तब कहती हैं–'देखा, अब मांग ले । कह, मुझे जिता दीजिए, वर्ना इस बार भी तू हार जायगा।'

भोलानाथ इस बार भी इशारे से मना करते हैं ।

बालक कहता है–'नहीं, तुमसे यह मांग नहीं सकता ।'

इस प्रकार एक के बाद एक करके भोलानाथ छः बार हार जाते हैं । प्रत्येक बार खेल के बाद माँ बालक से कहती है–देखा न, सिर्फ हारता जा रहा है। एक बार माँग कर देख–माँ मुझे जिता दो । देखना तब जीत जायगा। पर लड़का इसे स्वीकार नहीं करता ।

माध्यम से खेल प्रारम्भ किया गया । मुन्सिफ बाबू की पत्नी आदि अनेक औरतें आती थीं । उनके साथ कौड़ी खेला करती थीं । खेल में हार जाने पर उनसे जप करवाती थी वर्ना बच्चे भला जप क्यों

करते ? काक्स बाजार में इस खेल की धूम मच गयी थी । बच्चे पहले से ही करताल और मृदंग लेकर तैयार रहते थे और खेल में विजयी होते ही बाजा बजाते हुए कीर्तन प्रारम्भ कर देते थे । लोग दूर से कीर्तन सुनकर समझ जाते थे कि सच्चिदानन्द खेल आरम्भ हो गया है । किसी बालक ने जो कभी नाम या जाप नहीं किया था, वही एक दिन कौड़ी के खेल में विजयी होकर हजार बार जप करता था ।''

द्वितीय बार खेल समाप्त हुआ तो तृतीय बार खेल प्रारंभ हुआ। तभी माँ ने कहा-''अब मैं नहीं खेलूँगी । मैं इम्पायर बनकर बैठ रही हूँ ।''

माँ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग इधर करने लगी हैं । जैसे साइलेण्ट, अननेससरी, फाइन आदि । कभी-कभी अंग्रेजी में दो-एक भी कहती हैं ।

कुछ देर खेल चलने के बाद माँ नामघर की ओर चल पड़ी। मैं भी पीछे-पीछे चल पड़ा । देखा, माँ वैष्णवी को दर्शन दे, कुछ देर नाम सुनती रहीं । बाद में अपने कमरे में वापस आ गयी । मार्ग में एक व्यक्ति ने माँ के हाथ में दो कमल फूल देकर उन्हें प्रणाम किया। उसका सारा शरीर भीगा हुआ था । शायद तालाब से दो फूल तोड़कर सीधे माँ के पास चला आ रहा है । देर होते देख मैं माँ को प्रणाम कर वापस चला आया ।

तीन बजे के लगभग मूसलाधार पानी बरसने लगा और पाँच बजे तक बरसता रहा । पानी कम होने पर आश्रम आया । यहाँ आकर देखा-माँ नामघर में हैं । महिलाएँ माँ के साथ कीर्तन कर रही हैं। हम लोग खड़े होकर कीर्तन सुनने लगे । कुछ देर बाद माँ को अखण्डानन्दजी के कमरे में बुलाया गया । हम लोग नामघर से बाहर आये । सुना कि श्रीमती Jennings ने अमेरिका वापस जाने के लिए अनुमति की प्रार्थना करने के लिए माँ के निकट एक तार

भेजा है । यह अमेरिकी महिला कलकत्ता में हुए विश्व धर्म सम्मेलन के उपलक्ष्य में आयी और भारत के विभिन्न स्थानों में घूम–घूम कर साधु–संतों से मिलती–जुलती रही । पाण्डेचेरी स्थित अरविन्द आश्रम में आने पर श्री श्री माँ आनन्दमयी का नाम उन्होंने सुना । इसके बाद नैनीताल आकर उन्होंने माँ का दर्शन किया और इनके अतुलनीय व्यक्तित्व के प्रति मुग्ध हो गयीं । हम लोग जब इस प्रकार बातें कर रहे थे तभी एक सज्जन आये और मुझे बताया कि माँ मुझे बुला रही हैं ।

मैं तुरंत स्वामीजी के कमरे में माँ के पास आया । खुकुनी दीदी ने कहा–"आपको तुरंत बुलाकर इन चित्रों को दिखाने के लिए माँ ने आदेश दिया । इसीलिए आपको बुलाया है ।"

मैंने उन चित्रों को देखा । सभी माँ के चित्र थे और सभी सुन्दर थे ।

२१ मई, १९३७ ई. शुक्रवार । आज सवेरे लगभग १० बजे आश्रम में गया तो मोती बाबू, प्रमथ बाबू, शचीन बाबू आदि से मुलाकात हुई । माँ अपने कमरे के बरामदे में बैठी हैं ।

प्रमथ बाबू ने माँ से कहा–"माँ, तुम्हें गठरी की तरह दो बार स्थान परिवर्तन करते देखा, पर इससे क्या लाभ हुआ ? महिलाओं के कारण तुम्हारे निकट हम लोगों को अग्रसर होने का मौका नहीं मिलता।"

माँ हँसने लगी ।

नगेन–यह सब कहने से फायदा । आजकल लड़कियों का जमाना है ।

माँ–(हँसकर) लड़कियाँ ठीक होने पर लड़के भी ठीक होंगे ।

इसी समय खुकुनी दीदी आकर माँ का मुँह धुलाने ले गयीं । जाते–जाते माँ ने प्रमथ बाबू से कहा–"अतृप्त बातें कहकर अतृप्त रह जाओ । जिससे तृप्ति मिले, वही उपाय करना चाहिए ।"

मुँह धोने के पश्चात् माँ आकर यज्ञ मंदिर का प्लान देखने लगी और उसकी स्वीकृति दी । सुना कि सोलेन के राजा ने इस मंदिर के निर्माण का व्यय दिया है ।

मेरी भी कचहरी है

माँ को भोजन कराने के लिए ले जाया गया । प्रमथ बाबू और मोती बाबू माँ के पास जाकर थोड़ा प्रसाद ले अपने-अपने घर चले गये । कुछ देर बाद माँ आकर अपने कमरे के सामने वाले बरामदे पर बैठी । कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रही । अचानक माँ प्रमथ बाबू और मोती बाबू के बारे में पूछने लगी ।

मैं–वे लोग चले गये ।

माँ–क्यों ?

मैं–उन्हें कचहरी जाना था ।

माँ–(हँसकर) मेरी भी कचहरी है । मैं जब चादर ओढ़कर पड़ी रहती हूँ तब कचहरी में रहती हूँ । विभिन्न जगह घूमती रहती हूँ।

सुना कि आज माँ चादर ओढ़कर पड़ी थी । प्रमथ बाबू ने आकर उन्हें उठाया था । माँ स्वयं उठकर बैठ जायें इसकी प्रतीक्षा उन्होंने नहीं की । शायद माँ ने इन घटनाओं को लक्ष्य करके ये बातें कही। जब माँ तन ढाँककर सोती है तब हम लोग कहते हैं कि माँ इस समय घूमने निकली है । आज देखा कि इस बात को माँ ने स्वयं स्वीकार किया ।

इसी समय पुनः श्रीमती Jennings की चर्चा चल पड़ी ।

माँ ने कहा–"संभ्रांत घर की लड़की है न, बड़ी शान्त तथा गंभीर भाव है । हर वक्त वह बाते नहीं करती थी । शान्त भाव से बैठी रहती थी । दूसरों को शान्त रखने की शक्ति उसमें थी ।"

मैं–क्या वे भक्ति-पथ में साधना करती थी ?

माँ–नहीं, पर भक्ति जीवन के लिए साधारण पथ होता है, उसका प्रकाश सभी पर थोड़ा पड़ता है । जब वह आत्मस्थ होने का प्रयत्न करती तब उसकी अजानकारी में कभी–कभी उसकी आँखों से पानी निकलता था ।

इतना कहकर माँ हँसने लगीं ।

एक भक्त–उनके साथ आप कैलास जानेवाली थीं ?

माँ–हाँ, उसने मुझसे पूछा था कि कैलास जाने पर उसकी कोई आध्यात्मिक उन्नति होगी या नहीं तथा मैं उसे जाने को कहूँ या नहीं, अर्थात् अगर मैं जाने को कहूँ तो वह जायगी । तुम लोग तो मेरा रंग–ढंग जानते ही हो । मैंने उससे कहा कि कैलास जाने पर आध्यात्मिक उन्नति होती है, पर वह संस्कार के अनुसार ही होता है, अर्थात् जो लोग कैलास को किसी विशेष देवता का विशेष स्थान समझते हैं, वे लोग वहाँ जाकर इन भावों के द्वारा भावित होते हैं, लेकिन जिनमें यह भाव नहीं होता, उनके लिए स्थान दर्शन मात्र होता है ।

श्री श्री माँ के सम्बन्ध में ज्योतिष बाबू की अभिज्ञता

२२ मई, १९३७ ई., शनिवार । आज आश्रम आते–आते दस बज गये । आते ही सुना कि माँ अभी तक शयन कर रही है । श्रीयुत् ज्योतिष बाबू को पंचवटी में बातें करते देख उनके पास जाकर बैठ गया । प्रमथ बाबू भी मेरे साथ गये । चारु बाबू भी वहीं मौजूद थे।

ज्योतिष बाबू श्री श्री माँ के बारे में बातें कह रहे थे । मैंने ज्योतिष बाबू से कहा–"सुना है कि आपने एक बार श्री श्री माँ का देवी मूर्त्ति के रूप में दर्शन किया था । कृपया उस घटना के बारे में बताइये ।"

ज्योतिष बाबू कहने लगे–"उन दिनों माँ शाहबाग में रहती थी। एक दिन भोर के वक्त माँ से मिलने के लिए गया तो नाचघर में बैठा। माँ, भोलानाथ, मटुरी पिसीमां (बुआ) उस समय सो रही थी। अचानक देखा कि श्री श्री माँ के कमरे का दरवाजा खुल गया और दरवाजे के समीप एक ज्योतिर्मयी देवी मूर्त्ति प्रकट हुई । उसे देखकर मैं बहुत चकित रह गया। सोचा, दिन के वक्त जाग्रत् अवस्था में यह क्या देख रहा हूँ । दृष्टि भ्रम मालूम नहीं हुआ । मेरे देखते ही देखते वह देवी मूर्त्ति अन्तर्हित हो गयी और उस कमरे से हम लोगो की माँ निकली। सहज, सरल, मंथर गति से वे हमारी ओर आ रही थीं । विचार–बुद्धि से मैं कभी भावुकतावश छोटा नहीं देखता । फलतः मन ही मन एक तिकड़म सोचा चण्डी से मन ही मन एक देवी स्तोत्र पाठ करने लगा । मैंने सोचा कि अगर ये वास्तव में देवी होगी तो निश्चित रूप से इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर पुरस्कारस्वरूप मुझे कुछ देंगी । श्री श्री माँ धीर गति से अपने शयन कक्ष से चलकर नाचघर आते वक्त जमीन से कुछ घास के फूलों को तोडती हुई माँ जब मेरे सम्मुख आयी तब ज्यों ही मैंने उन्हें प्रणाम किया त्योंही उन्होंने उन फूलों को मेरे मस्तक पर आशीर्वाद के रूप में फेंक दिया ।"

ज्योतिष बाबू ने आगे कहा–"इन दिनों मुझे बराबर यह जानने की इच्छा बनी रही थी कि ये कौन है ? इसीलिए मैं अक्सर माँ से प्रश्न किया करता था–'माँ तुम कौन हो ?' एक दिन उन्होंने कहा–'यह बाद में जान सकोगे ?' एक और दिन बोली–अहं ज्ञान रहने पर यही नहीं बताया जा सकता कि मैं कौन हूँ ? मुझमें अहं ज्ञान बिलकुल नहीं है । फलतः तुम लोग जो कहते हो, मैं वही हूँ ।"

इसके बाद थोड़ा गंभीर होकर बोली–"तुम और क्या जानना चाहते हो ?"

इस प्रकार के स्वर में इतने असाधारण आकृति से माँ ने इन बातों को कहा कि उसे देख और सुनकर मेरी आत्मा कांप उठी । मैं और कुछ नहीं कह सका । इसके बाद से मैंने कभी कोई प्रश्न नहीं किया ।

समय काफी हो जाने के कारण मैं घर चला आया । आते समय देखा कि माँ सोकर उठ गयी है ।

लगभग ३-३० बजे आश्रम जाने पर ज्ञात हुआ कि माँ शाहबाग में घूमने गयी है । इस बार नैनीताल से वापस आते समय गोदावरी नामक एक पहाड़ी लड़की को साथ ले आयी है । शायद उसे शाहबाग दिखाने के लिए ले गयी है । मैं भी शाहबाग गया ।

मुझे देखते ही माँ ने कहा-"यहाँ जितने पेड़ लगा गयी थी, अब वे बड़े हो गये हैं ।"

खुकुनी दीदी ने मुझसे पूछा-"इसके पहले आप शाहबाग देख चुके हैं या नहीं ?"

माँ ने उत्तर दिया-"पिताजी देख चुके हैं और इसके लिए इनसे मुझे अनुयोग सुनना पड़ा है ।"

मुझे लेकर माँ जिस दिन शाहबाग में आयी थी, उस दिन घूमते समय शाहबाग के सुरक्षा अधिकारी ने माँ से शिकायत करते हुए कहा था कि इस बाग में प्रवेश निषिद्ध है, क्योंकि अक्सर नवाब साहब की बेगमें यहां घूमने आती है ।

माँ ने कहा-"उसके बाद से यहां घूमने के लिए कभी नहीं आयी । आज पहली बार आ रही हूँ; कारण वे लोग (नवाब साहब की बेगमात) यहां इन दिनों नहीं हैं ।"

इतना कहकर माँ हँसने लगी ।

शाहबाग से माँ गोदावरी तथा ३-४ अन्य महिलाओं को साथ लेकर सिद्धेश्वरी चली गयी । हम लोग आश्रम लौट आये ।

सिद्धेश्वरी से माँ शाम को वापस आयी और नामघर में आकर बैठ गयी । कुछ देर बाद मंदिर में आरती आरंभ हुई । हम लोग चुपचाप आरती देखने लगे ।

आरती के बाद भूपति बाबू आये । उन्होंने माँ के पास आकर कहा–"माँ, हम लोगों को एक गीत सुनाओ । तुम महिलाओं को बहुत गीत सुनाती हो । हम लोगों को भी एक सुनाओ ।"

पहले माँ राजी नहीं हुई । बाद में स्वयं ही अपनी इच्छा से दो गीत गाकर सुनाये । एक हिन्दी और एक बंगला । मधुर कण्ठ से तन्मय होकर वे गाती रही । इन गीतों को सुन कर सभी के अन्तर पसीज गये ।

इसके बाद भूदेव बाबू ने अनुरोध किया कि वे माँ से हिन्दी में बातें सुनना चाहते है । माँ ने कहा–"तुम लोग प्रश्न करो । मैं हिन्दी में उत्तर दूँगी ।"

आत्म–परिचय देने में माँ की असहमति

भूदेव बाबू–लोग तुम्हें साक्षात् भगवती कहते हैं अर्थात् उनका कहना है कि भगवती ने ही पुनर्जन्म लिया है । क्या तुम्हारे दर्शन और स्पर्श से हम मुक्त नहीं हो सकते ?

माँ पहले हिन्दी में, बाद में बंगला में प्रश्न का उत्तर देती हुई बोलीं–"दर्शन–स्पर्शन ठीक होने पर ही हुआ जाता है, पर दर्शन–स्पर्शन होता कहां है ? तुम लोग जो 'भगवती' कहते हो या 'अन्नपूर्णा' कहते हो, वह सब मुंह की बात है । विग्रहादि में सचमुच तुम लोगों का भगवद् ज्ञान कहां है ? अनेक बातें तुम लोग विश्वास के आधार पर कहते हो । विश्वास को मैं अंध कहती हूँ । कारण अनुभूति के साथ उसका कोई योग नहीं है । शास्त्र में देवी–देवताओं की बातें है। शास्त्रों को पढ़कर तुम लोग ऐसी बातें कह सकते हो, किन्तु शास्त्रों

को मैं टाइम टेबुल कहती हूँ । टाइम टेबुलों में विभिन्न स्थानों के नाम हैं, पर उस टाइम टेबुल को पढ़कर जिस प्रकार उन सभी स्थानों के बारे में धारणा नहीं बनायी जा सकती, उसी प्रकार शास्त्रों में जिन विभिन्न देवी–देवताओं की बातें हैं, उसे केवल शास्त्रों में पढ़कर धारणा नहीं बना लेनी चाहिए। ऐसी धारणा बनाने के पहले कर्म की आवश्यकता है । कर्म करते–करते विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं, तब समझ में आती है । यह जरूर कह सकते हो कि आग का कार्य दाह करना है, ज्ञात ढंग से हो या सकते हो या अज्ञात रूप में हो, आग को स्पर्श करने पर हाथ जलेगा ही । इसी प्रकार भगवती को बिना जाने स्पर्श करने पर तुम लोग फल क्यों नहीं पाओगे? इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि अगर कोई वस्तु बरफ की तरह ठण्डा हो तो वह आग के स्पर्श मात्र से जल नहीं जाती । संभव है कि उस स्थान पर दाग लग जाय । उसी प्रकार भगवती जानकर किसी का दर्शन या स्पर्श करने पर तुम लोगों के मन में अच्छे संस्कार की छाप पड़ जायगी। कुछ भी वृथा नहीं है ।''

भूदेव बाबू–यह तो समझ गया । अब प्रश्न यह है कि तुम भगवती हो या नहीं ?

माँ–इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे पा रही हूँ ।

भूदेव बाबू–क्यों नहीं दे पा रही हो ? मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है, इसके उदाहरण हैं । श्री रामकृष्ण परमहंस देव से उनके स्वरूप के बारे में जब प्रश्न किया गया तब उन्होंने उसे प्रकट किया था ।

माँ–मैं अपनी इच्छा से कुछ बोलने या करने नहीं पाती । जो होता है, वह अपने आप हो जाता है । मैं कौन हूँ, यह बात कभी अचानक मेरे मुँह से निकल जायेगी । इस समय नहीं निकल रही है।

भगवत् उद्देश्य के कर्म से मुक्ति

परेश बाबू[1]–यह सच है कि केवल टाइम टेबुल पढ़कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं जाया जा सकता । काम करना आवश्यक है । लेकिन बिना कर्म किये भी तो उच्च अवस्था प्राप्त हो सकती है। चुम्बक जिस प्रकार लोहा को आकर्षित कहता है, भगवान् भी उसी प्रकार हमें धर्म मार्ग में खींच ले जा सकते है ।

माँ–आकर्षण तो है ही । पर हम उसे समझ नहीं पाते । लोगों में धर्म मार्ग पर चलने की जो इच्छा होती है, वह इसी आकर्षण के कारण वर्ना इच्छा नहीं जगती । मुक्त होना, भगवान् को प्राप्त करना मनुष्य का स्वभाव है । कोई भी बद्ध रहना पसन्द नहीं करता । किसी में धर्मभाव बचपन से होता है । इसे सौभाग्य कह सकते हो । सुकृति भी कह सकते हो । दूसरी ओर कोई धर्म जीवन प्राप्त करने का प्रयत्न भी करता है, पर अग्रसर नहीं हो पा रहा है । हताश होकर सोचता है कि उसका कुछ नहीं हुआ । पर यह 'कुछ नहीं हुआ' रूप में धारणा जो है, यही प्रमाणित कर रहा है कि कुछ हुआ है । कम–से–कम क्षण भर के लिए भगवान् की ओर उसका लक्ष्य पड़ा है ।

परेश–वे सब करा भी तो सकते हैं ।

माँ–वे ही तो सब कराते हैं । पर यह बात जबानी कहने से कुछ नहीं होता, उसे अनुभव करना चाहिए । हम लोग घर–गृहस्थी के तमाम कार्य करते हैं, केवल धर्म के मामले में उनके ऊपर निर्भर रहते हैं, यह मिथ्याचार है । बच्चों को जिस प्रकार जबरदस्ती पढ़ाया–लिखाया जाता है, उसी प्रकार जबरन नाम करना चाहिए ।

यही एक लक्ष्य होने का उपाय है । तब सब करते–करते समझ में आता है कि यह सब चुम्बक की तरह मनुष्य को भगवान् की ओर

---

१. डो. श्रीयुत् परेशचन्द्र चक्रवर्ती । आप श्रीयुत् नरेशचन्द्र चक्रवर्ती महाशय के भाई हैं । दोनो भाई भक्तिमान हैं ।

आकर्षित करता है । तुम लोग जिस प्रकार गृहस्थी के तमाम काम करते हो, उसी प्रकार उनका काम भी कुछ–कुछ करो । इस संसार में जो कुछ कर रहे हो, सब उन्हीं के काम हैं, पर उसे समझने के लिए भगवान् को यहां खींचना पड़ेगा । परिवारवर्ग का भगवान् मानकर सेवा और पालन करना होगा । गृहस्थी के कार्य को अपना कार्य सोचने पर सिर्फ बंधन की सृष्टि होती है । लेकिन इसी को अगर भगवान् का कार्य समझा जाय तो मुक्ति मिल जाती है । सभी कार्यों में उन्हें लाना पड़ेगा । उनके बिना कोई उपाय नहीं है ।

सम्पूर्ण रूप में आत्म–समर्पण ही वास्तविक नमस्कार

ठीक इसी समय कुछ औरतें माँ को नमस्कार करने आयी । माँ की बाते बन्द हो गयी । उन लोगों के जाने के बाद माँ आगे कहने लगी–"सुनो, क्या हम लोग ठीक से नमस्कार कर लेते हैं ? नमस्कार कैसा ? जैसे लौटे से पानी गिराना । देखा होगा, लोटे को जब उलट दिया जाता है तब उसके भीतर का सारा जल गिर जाता है । उसी प्रकार नमस्य के चरणों में समस्त भाव उँड़ेल देना ही है वास्तविक नमस्कार । तुम लोग ही कहते हो कि हमारा मस्तिष्क समस्त भाव और चिन्ताओं का आधार है । नमस्कार करते वक्त जब उसे झुकाते है तब उसमें से कुछ भी नहीं गिरता । यह तो जैसे पावडर के डिब्बे को उलटने की तरह हुआ । पावडर का डिब्बा उलटने पर उसके छोटे–छोटे छेदों से सामान्य रूप से पावडर गिरता है, सब पावडर नहीं गिरता ।"

इस प्रसंग में माँ ने आगे कहा–"घट जब तक खाली नहीं होता तब तक भगवान उसे भरते नहीं ।"

फिर भी तुम्हारे हाथ आये

नरेश बाबू प्रणाम की इस व्याख्या को सुनकर बोले–'माँ, अगर इस तरह तुम्हें प्रणाम किया जायगा तो तुम्हारा रंग काला हो जायगा।'

माँ–ठीक है । तुम लोगों के पास जो है, वही भगवान् को दो। कहो–'भगवान्, मेरे पास सिर्फ पाप ही है, वही मैं तुम्हें दे रहा हूँ।' देने का भाव तो कम से कम आये । इस बारे में एक कहानी है। एक भिखारी एक कंजूस के घर भीख मांगने गया था । कृपण कुछ देना नहीं चाहता था और भिखारी बिना कुछ लिए हटना नहीं चाहता था । अन्त में कंजूस नाराज होकर एक मुट्ठी धूल देते हुए कहा–'ले अपनी भिक्षा ।' भिखारी उसी को ग्रहण करते हुए कहा–'फिर भी तुम्हारे हाथ तो आये ।'

यह सुनकर सभी हँस पड़े ।

आगे माँ ने कहा–'बात सत्य है । कृपण ने क्रोधवश धूल दिया जरूर, पर जब उसका क्रोध शान्त हो जायगा तब यह सोचेगा कि एक आदमी को भोजन देने के बदले धूल दिया है और अफसोस करेगा। बाद में जब कोई भिखारी आयेगा तब धूल के बदले अधेला या पैसा देकर सहायता करेगा । तुम लोगों से भी कह रही हूँ कि तुम लोगों के पास जो है, उसे दो । आज अगर अधेला देने का सामर्थ्य है तो वही दो । बाद में पैसा, रुपया, सोना भी दे सकते हो ।'

२३ मई, १९३७ ई., रविवार । आज सवेरे माँ आश्रम में नहीं थी । भिन्न-भिन्न लोगों के घर माँ को ले जाया जा रहा है । फलतः आज सवेरे आश्रम में नहीं गया ।

मैं सृष्टि, स्थिति, लय के पूर्व में भी हूँ

तीसरे प्रहर ६ बजे आश्रम गया । लोगों की बेहद भीड़ में माँ का दर्शन करना कठिन ज्ञात हुआ । शाम के बाद माँ मैदान में आकर बैठी । लेकिन महिलाओं की भीड़ इतनी थी कि पास पहुँचना कठिन था । सुना कि माधवी माता[1] माँ का दर्शन करने आयी है और माँ उनको लेकर विनोद कर रही है ।

रात कुछ अधिक होने पर माँ जहां बैठी थी, वहां मैं आकर खड़ा हो गया । इसी समय प्रमथ बाबू ने आकर पूछा-"माँ, आज रात को बूढ़े लोग कीर्तन करेंगे ?"

माँ-यह बात भोलानाथ से पूछो । तुम लोग आज भोलानाथ को लेकर कीर्तन करो ।

प्रमथ बाबू-तुम शायद मौजूद नहीं रहोगी ? आज अगर तुम मौजूद नहीं रहोगी तो कल जब २० वर्ष से कम वय वाले लड़कों को लेकर कीर्तन होगा तब तुम्हें इस कीर्तन में उपस्थित रहने नहीं दूँगा ।

माँ-(हंसकर) मैं बीस वर्ष वालों के साथ भी हूँ, पचास वर्ष वालों के साथ भी हूँ, सौ वर्ष वालों के साथ भी हूँ और सृष्टि, स्थिति, लय के पूर्व में भी हूँ ।

आज रात को बुजुर्ग काकाओं का कीर्तन होगा सुनकर मैं भोजन करने के लिए घर चला आया । भोजन के पश्चात् पुनः आश्रम आया। जाकर देखा कि माँ नामघर में बैठी है । और लोग बाबा भोलानाथ के साथ कीर्तन कर रहे है । एक घण्टा कीर्तन हुआ । बाबा भोलानाथ भावावेश में नृत्य करने लगे । कीर्तन समाप्त होने पर भोलानाथजी चले गये । इसी बीच माँ भी नामघर में चली गयी थी । हमलोग नामघर में कीर्तन करने लगे ।

---

१. आप एक वैष्णवी साधिका है। ढाका स्थित तेजगाँव में इनका आश्रम है।

कुण्डलिनी जागरण में शरीर की अवस्था

कुछ देर बाद देखा कि अन्नपूर्णा मन्दिर के बरामदे पर कुछ लोग एकत्रित है । यह देखकर सोचा कि शायद माँ वहीं है । जाकर देखा, मेरा अनुमान सत्य निकला । माँ मन्दिर के बरामदे पर सो रही हैं और विश्वविद्यालय के कुछ छात्र मां के निकट बैठे हैं । ये सभी मेरे छात्र हैं। मैं भी एक कोने में बैठ गया । 'साधन–समर' आश्रम के श्रीयुत् अतुल ब्रह्मचारी और श्रीयुत् नरेश बाबू माँ के साथ बातें कर रहे थे । एक तो नामघर में उच्च स्वर से नाम चल रहा था। दूसर मैं माँ से कुछ दूर बैठा था, इसलिए बातचीत किस विषय पर हो रही थी, सुन नहीं सका । अपने छात्र प्रफुल्ल चक्रवर्ती को ध्यानस्थ देखा । माँ ने उससे पूछा–"तुम कहाँ से आये हो ?"

उसने कोई जवाब नहीं दिया । यहाँ तक कि जब उसके मित्रों ने उसे धक्का दिया तब भी वह कुछ नहीं बोला । यह देखकर मैं चकित रह गया ।

इसी समय माँ ने कहा–"देखो तो, प्रमथ बाबू नामधर में कीर्तन कर रहे है या नहीं ।"

एक व्यक्ति ने कहा–"हाँ, वे नामघर में कीर्तन कर रहे है ।"

माँ ने कहा–"मैं जहाँ नामघर से होती आऊँ ।"

मैं भी माँ के साथ चल पड़ा । सभी छात्र बैठे रहे ।

कुछ देर बाद आकर देखा कि आश्रम के आंगन में छात्रों की काफी भीड़ है । एक दौड़ा हुआ आया और नामघर से एक पंखा ले गया । कोई दुर्घटना हो गयी है समझकर खुकुनी दीदी और मैं जल्दी से छात्रों के पास गये । जाकर देखा कि प्रफुल्ल चक्रवर्ती जमीन पर छटपटा रहा है ।

मैंने अपने एक छात्र विजय से पूछा – "क्या बात है ?"

उसने बताया कि प्रफुल्ल अपनी माँ की मौत के बाद से प्रायः मां को स्वप्न में देखता है । आज यहाँ अस्थिर होकर सो गया है।

यह सुनकर मैंने सोचा कि ऐसे मौके पर माँ को बुला लाना उचित होगा । नामघर से माँ को बुला लाया । बालक को जमीन पर इस प्रकार लोटते–पोटते देख मां ने कहा–"इस तरह जमीन पर पड़े रहना ठीक नहीं है । ठंढ लग सकती है । इसे मंदिर के बरामदे पर लिटा दो ।"

मैंने लड़कों से यही कहा । उन लोगों ने प्रफुल्ल को उठकर बैठने को कहा, पर वह उसी प्रकार पड़ा रहा । मैंने देखा कि उसका ज्ञान बिलकुल लुप्त नहीं हुआ हैं, पर अस्थिरता अधिक हैं। माँ ने दो–तीन बार उसे उठाने को कहा तो लड़के ने उसे पकड़कर मन्दिर के बरामदे पर ले आये और सीमेण्ट की फर्श पर उसे लिटा दिया । मां ने कम्बल के ऊपर लिटाने को कहा था, इस ओर किसी का ध्यान नहीं था । मां ने बालक के मेरुदण्ड पर हाथ फेरने की आज्ञा दी। नरेश बाबू पास ही थे, वे हाथ फेरने लगे ।

मैंने देखा कि ठीक से हाथ नहीं फेरा जा रहा है । लेकिन भीड़ इतनी है कि बालक के पास तक पहुँचना कठिन है।

तभी माँ ने कहा – "इसके भौहों के मध्य से सिर के दोनों ओर रगड़ दो।"

इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया तो मैं जबरन बालक के पास पहुँचा । उसे एक चादर पर लिटाकर भौहों से कपाल तक धीरे–धीरे उँगली फेरने लगा । कुछ देर तक ऐसा करने के बाद प्रफुल्ल नामघर में हो रहे कीर्तन के साथ–साथ स्वयं भी नाम करने लगा।

रह–रहकर कहने लगा – "मैं इतना कमजोर क्यों हो गया हूँ?"

जब मां से इस बात की चर्चा की गयी तो उन्होंने कहा– "कमजोरी अनुभव तो करेगा ही । कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने से शरीर पर एक धक्का लगता है और जब उसका वेग नहीं सम्हालने में आता तब लोग इस तरह पड़ जाते हैं। इससे पूछो तो क्या बीच–बीच में ऐसा होता है ?"

मैंने उससे पूछकर मां से कहा कि इसके पहले ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी । यह पहला मौका है ।

लड़के की इस स्थिति को देखकर मुझे निर्मला मां को ओर सेवादासी की घटना याद आ गई। मैंने मां से पूछा – "मां, क्या यह निर्मला की तरह की कोई स्थिति है ?"

मां–हां, वही। यह मत सोच लेना कि वह अपनी इच्छा से कर रहा है। एक लक्ष्य होने पर शरीर पर इस प्रकार के भावों का वेग आ जाता है और इस वजह से देह का पतन होता है । बीच–बीच में अगर इस प्रकार की अवस्था होती है तो मान लेना चाहिए कि यह अच्छी अवस्था प्राप्त कर रहा है । लेकिन ऐसा भी हो सकता हे कि एक बार ऐसी अवस्था हो गयी, फिर जीवन में ऐसी अवस्था नहीं आयी ।

मैं–धार्मिक विषयों के अलावा अन्य किसी विषय को लेकर एक लक्ष्य होने पर क्या इस तरह के भावों का आक्रमण होता है ?

मां–नहीं ।

मैं–यह लड़का तो केवल अपनी माँ को स्वप्न में देखकर चिन्ता करने लगा, ऐसी हालत में इस पर भाव का आक्रमण क्यों हुआ ?

माँ–पिता–माता देवतुल्य ।

मैं–अगर कोई मृत बालक की चिन्ता करते हुए एक लक्ष्य हो जाय तो क्या उसकी स्थिति ऐसी होगी?

मां–यह भी हो सकता है, पर उस हालत में उसके साथ भगवद् भाव युक्त रहेगा। अर्थात् अगर वह चिन्ता करता रहे कि भगवान् उसके बालक को ले गये तभी ऐसा हो सकता है ।

भावाविष्ट व्यक्ति को सचेतन करने के लिए नाम क्यों सुनाना चाहिए

प्रफुल्ल जब मंदिर के बरामदे पर पड़ा था तब माँने उसके कान के पास भगवान् का नाम करने की आज्ञा दी थीं । मैंने माँ से पूछा– "माँ, नाम करते–करते या सुनते–सुनते लोग जब संज्ञाशून्य हो जाते हैं तब उसे सचेतन करने के लिए नाम क्यों सुनाया जाता हैं? यह तो प्रकृति के विरुद्ध लगता है ।"

माँ–क्यों ?

मैं–आग के ताप से हम पानी गरम करते हैं, पर गरम पानी को ठंढा करने के लिए पुनः ताप नहीं देते ।

माँ–यह वैसा नहीं है। यह आखिर है कैसा, जिस पथ से जाना, उसी पथ से लौट आना। यह भी स्वाभाविक है ।

समाधि की अवस्था

मैं–मैं खुकुनी दीदी की डायरी में पढ़ चुका हूँ कि तुमने समाधि को चार भागों में विभक्त किया है । जड़ समाधि, सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि और चैतन्य समाधि। निर्विकल्प समाधि में चैतन्य नहीं रहता क्या जो पुनः चैतन्य समाधि कहती हो ?

माँ–निर्विकल्प समाधि में क्या रहता है या क्या नहीं रहता हैं, यह कहा नहीं जा सकता । इस वक्त यह सब बातें नहीं ।

मैं–समाधि में क्या हाथ–पैर सख्त हो जाते हैं ?

माँ–केवल शरीर के लक्षणों को देखकर समाधि है या नहीं, कहा नहीं जा सकता। शरीर के लक्षणों के अलावा भाव, बातें आदि मिलाकर ही कहा जा सकता है कि समाधि है या नहीं । समाधि में हाथ–पैर सख्त हो सकते हैं, पर वे इस प्रकार सख्त होंगे जैसे मुर्दों का होता है। पैर पकड़कर हिलाने से सारा शरीर हिलने लगेगा। (अपने को दिखाती हुई) इस शरीर पर से न जाने कितनी अवस्थाएँ गुजर गयी हैं। अक्सर हाथ–पैर सख्त हो जाते थे । इतने सख्त होते थे कि खूब जोर से भींजने पर भी मुझे कुछ पता नहीं चलता था । लेकिन यह स्थिति समाधि की नहीं है। यह सब भाव के आवेग में होते थे । इन अवस्थाओं को कौन समझता है, कौन पहचानता है ? तुम लोगों ने नवद्वीप में सेवादासी की स्थिति को देखा है। चूँकि तुमने देखा है, इसलिए कह रही हूँ। अक्सर देखा गया है कि भावावेश के समय बहुत लोग मुट्ठी बांधे रहते हैं। अगर कोई सामान पकड़ लेते हैं तो उसे छोड़ना नहीं चाहते। जहां इस प्रकार दृश्य देखना, वहां समझ लेना कि भावावेश के साथ इच्छाशक्ति मिल गयी है। लेकिन समाधि में यह सब नहीं होता। समाधि में अगर हाथ कड़ा हो जाता है तो उसे जिस तरह रखना चाहोगे, उसी प्रकार रहेगा। समाधि में मुट्ठी बँधे रहने पर भी ज्यों ही उँगलियों को खींचोगे त्योंही खुल जायँगी, फिर ज्योंही छोड़ दोगे, तुरत मुट्ठी बँध जायगी। तुम लोगों ने शायद देखा होगा कि कोई एक आदमी खड़ा है, अचानक उस पर बिजली गिरी, इससे वह मर गया । मर जाने पर भी वह जीवित व्यक्ति ही तरह खड़ा रहता है । ज्योंही उसे धक्का दोगे, वह गिर जायगा। समाधि की अवस्था लगभग ऐसी होती है। यहां इच्छा–शक्ति के अभाव में शरीर को जिस प्रकार रखना चाहते हो, उसी प्रकार रख सकते हो। अगर यह देखो कि शरीर के हाथ–पैर को इच्छानुसार नहीं रख पा रहे हो, उसमें बाधा देने का कोई लक्षण प्रकट नहीं हो रहा है तो समझ लेना कि वह समाधि नहीं है।

मैं–जड़ समाधि किसे कहते हैं?

मां–इसमें शरीर जड़ की तरह पड़ा रहता है। मन भी जड़ की तरह हो जाता है। जब यह भाव दूर हो जाता है तब लोग देख पाते हैं कि जगत् ने नया आकार ग्रहण किया है । जगत् के प्रति उसकी दृष्टि बदल गयी है ।

मैं–नवद्वीप में तुमने कहा था कि जड़ समाधि उस अवस्था को कहते हैं जब जागतिक विषयों के साथ सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। लेकिन आध्यात्मिक जगत् के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ है। ऐसी हालत में जिसे जड़–समाधि प्राप्त हुई है, उसकी जागतिक स्थिति कैसे बदल जायगी? जबकि कोई भी आध्यात्मिक उसके निकट प्रकट नहीं हुआ है।

मां – तुम्हें जिस अवस्था की बातें बतलायी थी, वह जड़–समाधि की प्रथम अवस्था है। उस अवस्था में आध्यात्मिक ज्ञान अवश्य नहीं होता, पर उस ज्ञान का बीज भीतर रह सकता है जो आगे चलकर थोड़ा–थोड़ा प्रकट होता है। जैसे अपने को अत्यन्त दीन समझना। हम लोग भद्रता और शिष्टाचार दिखाने के लिए अपने को दीन–हीन कहा करते हैं। लेकिन दीन भाव जब हृदय के अन्तःस्थल से प्रकट होता है तब लोगों से काफी अपमानित होने पर भी उसे क्रोध नहीं आता। कारण उस वक्त दीनता मौखिक बात नहीं होती। उसकी समस्त सत्ता के भीतर उसकी अनुभूति होती है। क्षमा–धैर्य आदि गुणों का विकास इसी प्रकार होता है। जिन लोगों को केवल भावावेश होता है, उनमें यह सब ज्ञान नहीं रहता । कारण भावावस्था में लोगों को सेवा ग्रहण करते देखा गया है। लेकिन जिनके भीतर खण्ड–खण्ड ज्ञान प्रस्फुटित होता है, उनके लिए अन्य लोगों का प्रणाम या सेवा ग्रहण करना संभव नहीं होता । भाव, समाधि ये सब कितने प्रकार के हो सकते हैं, उसे बताकर समाप्त नहीं किया जा सकता । हम लोगों का स्वभाव ऐसा है कि अगर किसी में किंचित् असाधारणत्व देखते हैं तो उसका वर्णन करते समय काफी बढा–चढ़ाकर कहते हैं।

सभी लोग हँस पड़े।

रात के २-३० बज चुके थे, देखकर माँ को प्रणाम करने के बाद नामघर में चला आया। वहाँ बैठकर नाम करने लगा । रात ४-३० पर माँ नामघर में आयी। उस वक्त हम लोग काफी तेजी से कीर्तन कर रहे थे । इस समय जो लोग नामघर में सो रहे थे, उसके कान के पास करताल बजाती हुई माँ जगाने लगीं। माँ का यह कौतुक अच्छा लग रहा था। करताल की आवाज से भक्तगण चौंक रहे थे। सामने माँ को देखकर हर्ष और विस्मय से उनके चरणों में प्रणाम करते रहे।

२७ मई, १९३७ ई. गुरुवार। पिछली रात को बालक और वृद्धों का सम्मिलित कीर्तन हुआ था । ज्योतिष बाबू ने नियम बनाया था कि कीर्तन खड़े-खड़े करना होगा। कीर्तन-स्थल पर कोई बैठ नहीं सकता। उसी नियमानुसार कीर्तन हो रहा था और काफी अच्छे ढंग से हो रहा था ।

माँ एक बार थोड़ी देर के लिए नामघर में आयी थीं। सवेरे हम लोग अपने-अपने घर चले आये।

श्री श्री माँ का ढाका-हाल में गमन

आज साढ़े दस बजे माँ ढाका-हाल में गयीं। ननी चक्रवर्ती, श्रीकंठ आदि छात्र आकर माँ को ले गये। साथ में मुझे भी ले गये। माँ के साथ भोलानाथ, खुकुनी दीदी, बेबी दीदी आदि भी गयीं। लिटन-हाल में सभी लोगों के लिए बैठने की जगह ठीक की गयी थी। छात्र माँ से प्रश्न करने के लिए मुझसे अनुरोध करने लगे ।

मैंने बच्चों की ओर इशारा करते हुए माँ से कहा – "माँ, यह सब बच्चे मेरे छात्र हैं। तुम इन लोगों को कुछ ऐसी बातें बताओ ताकि इनका उपकार हो ।"

माँ-(हँसकर) ये सब तुम्हारे ही छात्र हैं। तुम किसके छात्र हो?

मैं-तुम्हारा।

माँ हँसकर चुप रह गई। बाद में बोलीं-"बात मेरे पास नहीं आ रही हैं। तुम लोग प्रश्न करो, बात पर बात होती रहेगी ।"

प्रफुल्ल–धर्म की क्या आवश्यकता है? हम लोग धर्म–कर्म क्यों करें?

माँ–तुम लोग क्या करना चाहते हो?

प्रफुल्ल–पढ़ लिखकर ज्ञान अर्जित करूँगा। अर्थ उपार्जित करूँगा, लोगों की सेवा करूँगा ।

माँ–तुम लोग जो ज्ञान उपार्जन कर रहे हो, वह जागतिक ज्ञान हैं। उसे वास्तविक ज्ञान नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उस ज्ञान से 'मैं कौन हूँ,' 'कहाँ से आया', 'कहाँ जाऊँगा' इन सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते । इसके अलावा एक घण्टा, यहाँ तक कि एक मिनट बाद हम लोगों का क्या होगा, यह भी नहीं जान पाते। बिना धर्म वास्तविक ज्ञान नहीं होता। धर्म का अर्थ है जिसे जगत् ने धारण कर रखा है। एक मात्र धर्म के द्वारा ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। पर यह जागतिक ज्ञान तुम्हें आध्यात्मिक ज्ञान की ओर ले जा सकता है, यदि उसी रूप में जागतिक ज्ञान प्राप्त कर सको।

आगे माँ ने कहा–''इसके अलावा तुम लोगों का कहना है कि जनसेवा करूँगा, यह कैसे सम्भव है? इस वक्त तो सोच रहे हो कि अर्थ उपार्जित कर दस लोगों का उपकार करूँगा। बाद में ऐसा भी हो सकता है कि अपने परिवार का भरण–पोषण नहीं कर पाओगे। तब दूसरों की क्या सेवा करोगे ? तुम लोगों ने यह भी देखा होगा कि जो लोग अधिक अर्थ उपार्जन करते हैं, वे दूसरों की सहायता न कर संचय की ओर अधिक ध्यान देते हैं। अगर गौर करोगे तो ज्ञात होगा कि व्यक्ति की जो इच्छा होती है, प्रायः वह उसे नहीं कर पाता। अपनी इच्छाशक्ति और महाशक्ति के बीच यह द्वन्द्व चिरकाल से चला आ रहा है। दूसरों की सेवा करने की इच्छा हुई, पर देखा गया कि अपनी सेवा करने का अवसर नहीं मिला। दूसरों की सेवा करना दूर की बात है। इसीलिए कहती हूँ भगवान् को बिना जाने, उनसे शक्ति न पाने पर किसमें इतना साहस है कि वह दूसरों की सेवा करे।''

कुछ देर बाद माँ ने आगे कहा–एक बात और है। पशु--पक्षी से लेकर मनुष्य तक सभी आनन्द चाहते हैं। यही उनका स्वभाव हैं, क्योंकि सभी में उस आनन्द का आस्वादन है। अन्यथा उसे मांग न पाते। दूसरी ओर मनुष्य खण्ड–आनन्द पाकर संतुष्ट नहीं होता। उसे अखण्ड आनन्द चाहिए जिसे आनन्द का अन्त नहीं होता। जागतिक वस्तुओं से हमे जो आनन्द मिलता है, वह खण्ड आनन्द होता है, वह हमलोगों को तृप्ति नहीं दे पाता। जागतिक वस्तुएँ हम लोगों में अभाव बनाये रखती है। जिसे अर्थ की आकांक्षा होती है, जब उसे अर्थ मिलता है तब वह और चाहता है अथवा अन्य कुछ चाहता है। किसी प्रकार से उसे शान्ति नहीं मिलती । केवल भगवान् को प्राप्त कर लेने पर लोग शान्ति और आनन्द पा सकते हैं । पर प्राप्त कैसे कर सकते हो ? सब कुछ उसके भीतर है । देखा होगा, सत्य सभी चाहते हैं । मिथ्या कोई नहीं चाहता । लोगों के भीतर सत्य है, इसलिए वह उसे चाहता है, वर्ना उसे न माँग पाता । यही रूप चैतन्य का है, उन दिन देखा नहीं, तुम लोगों में से एक छात्र बेहोश होकर पड़ा रहा और तुम लोग परेशान हो गये । यह अचेतन भाव तुम लोगों को पसन्द नहीं आता, इसलिए उस बालक को चेतन करने का प्रयत्न करने लगे । दूसरी ओर तुम लोगों में चैतन्य–ज्ञान है, इसलिए तुम लोग उसकी आकांक्षा करने लगे। आनन्द का यही रूप है । इसलिए कहती हूँ कि तुम लोगों में सत्य, चैतन्य, आनन्द, शान्ति सब कुछ है । केवल तुम लोग उसे अनुभव नहीं कर पाते।

एक छात्र–धर्म प्राप्त करने के लिए बहिरंग साधना अर्थात् पूजा आदि की आवश्यकता होती है ?

माँ–(हँसकर) अब तक तुम लोग धर्म की जरूरत क्या है, इस विषय पर बातें करते रहे । अब कह रहे हो कि धर्म के बहिरंग की क्या जरूरत है ? धर्म से धर्म के बहिरंग में चले आये । इसीलिए मैं कह रही थी कि धर्म की आवश्यकता है । आवश्यकता है, इसीलिए

तुम लोग यह प्रश्न पूछ रहे हो ? रहा बहिरंग साधना का प्रश्न, सो जान लो कि वह सभी के लिए समान नहीं है । जगत् में धर्म केवल एक है और उसे प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न भाव से प्रयत्न करते हैं, क्योंकि उसके अलावा शान्ति और आनन्द नहीं है । पूजा-अर्चना कहो, नाम करना कहो, ध्यान करना कहो, ये सब धर्म प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग हैं । किसी को पूजा करना अच्छा लगता है, किसी को ध्यान करना अच्छा लगता है । यह सब व्यक्तिगत संस्कार पर निर्भर करता है । इस बारे में सर्व साधारण कोई नियम नहीं हैं । इस दिशा में तुम लोग अपनी रुचि के अनुसार कार्य कर सकते हो । कहने का मतलब जो कुछ करो, वह भगवान् के उद्देश्य से करो, बस । यही देखो, तुम लोग यहाँ विभिन्न कमरों में रहते हो, पर जब स्नान करने जाते हो तब एक ही तालाब[१] में जाते हो । तालाब एक ही है और वहाँ तक पहुँचने के लिए मार्ग से जाना पड़ता है, वही भी एक है । चूँकि तुम सब भिन्न-भिन्न कमरों में हो, इसलिए मार्ग भिन्न-भिन्न समझते हो । उसी प्रकार धर्म एक है और धर्म प्राप्त करने की साधना भी एक है, पर लोगों के भिन्न-भिन्न संस्कार हैं, इसलिए साधना भी भिन्न-भिन्न लगती है । कोई नाम करके धर्म प्राप्त करता है, कोई पूजा करके धर्म प्राप्त करता है, कोई ध्यान के माध्यम से धर्म प्राप्त करता है । इसी प्रकार से इनमें प्रत्येक साधना है । इसीलिए मैं कहती हूँ कि साधना एक है । पूजा-जप अक्सर बच्चों के माता-पिता मुझसे यह शिकायत करते हैं कि उनके बच्चों में धर्मभाव नहीं है । वे लोग संध्या आह्निक आदि पारमार्थिक कार्य नहीं करते । सभी विषयों पर अविश्वास करते हैं । यहाँ तक कि ब्राह्मण सन्तान होकर गले में जनेऊ नहीं रखता । यह सब बातें सुनकर मैं उनसे कहती हूँ कि इस दिशा में बच्चों के माँ-बाप ही अधिक दोषी हैं, क्योंकि वे लोग अपने बच्चों को अर्थकरी

१. ढाका हाल में एक तालाब है । माँ को यह बात कैसे मालूम हो गयी, यह सोचकर मैं चकित रह गया । आदि प्रत्येक की आवश्यकता है ।

विद्या की शिक्षा दिलवाते हैं, धार्मिक शिक्षा नहीं देते। धार्मिक–शिक्षा के अभाव में अगर लड़के नास्तिक या उच्छृंखल होते हैं तो माँ–बाप को शिकायत करने का अधिकार नहीं हैं, क्योंकि यह सब उनका कर्मफल है । इसीलिए मेरा कहना है कि बचपन से ही बच्चों को जागतिक शिक्षा के साथ–साथ धार्मिक शिक्षा देनी चाहिए । बचपन से धार्मिक शिक्षा देने पर उसका परिणाम अच्छा होता है ।

विजय–जनेऊ धारणा करने की सार्थकता क्या है ? हम लोगों का विचार है कि जातिभेद के कारण हमारी अवनति हुई है । अन्य देशों में जिस प्रकार जातिभेद नहीं है, उसी प्रकार हमारे यहाँ से जातिभेद मिटाकर देश का सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न हम क्यों न करें?

माँ–पेड़ की जड़ काटकर पत्ते और फलों की ओर देखने से कोई लाभ होगा ? पहले वृक्ष की रक्षा करने की आवश्यकता है । इसके बाद फल–पत्ते की । तुम लोग ब्राह्मण–मेहतर एक करना चाहते हो? लेकिन तुम लोगों में कौन मेहतर का कार्य करने को तैयार है। रेलगाड़ी पर यात्रा करते समय कुली की सहायता लेते हो, पर अपना बोझ स्वयं नहीं उठाते । तुम सब एक होना चाहते हों, पर एक दूसरे की वृत्ति नहीं लेना चाहते । यह ठीक है कि सभी के प्रति भ्रातृभाव पोषण करना अच्छी बात है । जाति कहने पर मैं एक जाति समझती हूँ । सामाजिक शृंखला के लिए प्राचीन काल से जातिभेद की परम्परा है। प्रस्तुत जातिभेद भगवान् की इच्छा से हुआ है । अगर कभी मिट गया तो वह भी भगवान् की कृपा से मिटेगा । जबतक है तबतक मानकर चलना ठीक होगा ।

विजय–जनेऊ पहन लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता । जनेऊ धारण करने का उद्देश्य क्या है और संध्या–आह्निक करने से क्या लाभ होता है ?

माँ ने विजय का नाम पूछा और जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वह ब्राह्मण है तब उन्होंने पूछा–"तुमने शायद जनेऊ फेंक दिया है ?"

विजय ने इसे स्वीकार किया । माँ हँस पड़ी ।

बाद में माँ कहने लगीं–"उपवीत ब्राह्मणत्व का चिह्न है, निशान। तुम लोग भले ही विश्वास करो या न करो, पर मैं कहूँगी कि उपवीत धारण करना और संध्या–आह्निक की आवश्यकता है । तुम लोग जिस प्रकार माँ–बाप के दस–बीस आदेशों का पालन करते हो, उसी प्रकार संध्या–आह्निक करते जाओ । इसकी सार्थकता अभी नहीं समझ रहे हो, फिर भी माँ–बाप के आदेश को मानते चलो ।"

एक छात्र–जो लोग इस जन्म में मनुष्य हैं, क्या वे अगले जन्म में भी मनुष्य होंगे ?

माँ–जन्मान्तर कर्म के अनुसार होता है । यदि मनुष्य–जन्म प्राप्त कर पशु की तरह कार्य किया जाय तो मनुष्य–जन्म नहीं होता । इसके अलावा मृत्युकाल में लोग जैसी चिन्ता करते हैं, उसी के अनुसार परवर्ती जन्म होता है । जैसे राजा भरत हिरण की चिन्ता करते रहे तो हिरण हुए थे ।

एक छात्र–पशु–पक्षी के बारे में क्या बात होती है ?

माँ–"पशु–पक्षी के बारे में भी यही बात लागू होती है । पर पशु–पक्षी और मानव में जरा प्रभेद है । पशु–पक्षी मृत्यु के समय जो चिन्ता करेंगे, वह पहले से ही तय है । किसी एक पशु का जन्म होगा, कौन सा जन्म होगा, यह पहले से ही स्तर पर स्तर से ठीक–ठाक है । पशु–पक्षी के कर्म द्वारा उसमें व्यतिक्रम होने की सम्भावना नहीं है । लेकिन मनुष्य अपने कर्म के द्वारा अपना परवर्ती जन्म नियन्त्रित कर सकता है । इसीलिए जिन्हें होश आ गया है, उन्हें मैं मनुष्य कहती हूँ । लेकिन यह मत समझ लेना कि जीवन भर स्वेच्छाचारी बने रहें और अन्तकाल में सुचिन्ता द्वारा सद्‌गति प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि लोगों की मृत्यु के समय एक ऐसी अवस्था आती है जब वह अपनी इच्छानुसार चिन्ता नहीं कर पाता । उसके जीवन के समस्त कर्मों से ही अन्तकालीन चिन्ता निर्धारित होती है और उसी चिन्ता के अनुसार उसका जन्म होता है। इसीलिए सत्कर्म करने की आवश्यकता होती है ।

एक छात्र–क्या भगवान् को देखा जा सकता है ?

माँ–(हँसकर) हाँ, देखा जा सकता है । मैं तुम लोगों को जिस रूप में देख रही हूँ और तुम लोगों से बातें कर रही हूँ, ठीक उसी प्रकार भगवान् को देखा जा सकता है और उनसे बातें की जा सकती हैं ।

पूर्व छात्र–भगवान् देखने में कैसे हैं ? उनके रूप का जरा वर्णन कीजिये ।

माँ–(हँसकर उपस्थित छात्रों को दिखाती हुई) ये सभी भगवान् के रूप हैं ।

सभी अट्टहास कर उठे ।

अब विदा लेने का समय आ गया । माँ सभी लोगों से कहने लगीं–"पिताजी, मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ । मेरे एक अनुरोध को मानना पड़ेगा । बोलो, तुम सब इसे मानोगे ?"

छात्रों ने कहा कि हम लोग यथाशक्ति आपके अनुरोध की रक्षा करेंगे ।

माँ ने कहा–"मैं जानती हूँ कि तुम लोग मेरी बात मानोगे, फिर भी मैं तुम लोगों से वायदा चाहती हूँ । तुम लोग सभी कर्म जिस प्रकार करते जा रहे हो, उसी प्रकार उनके कार्य में कुछ समय दो। एक घण्टा, आधा घण्टा, कम से कम दस मिनट का समय उनके कार्य में देना । दिन के २४ घण्टों में से कम से कम दस मिनट भगवान् के कार्य में देना कोई बड़ी बात नहीं है । तुम लोगों को स्थान–अस्थान विचार करने के लिए नहीं कहती, किसी निर्दिष्ट आसन को करने को नहीं कह रही हूँ । तुम लोग किसी भी स्थिति में भले ही रहो, कम से कम दस मिनट उनका नाम लेते रहना । यही मेरा अनुरोध है। मैं अधिकतर लोगों से दस मिनट समय की भीख माँगती हूँ । भीख शब्द मुझे अच्छा नहीं लगता । वह इसलिए कि अपने लोगों से क्या कोई भीख माँगता है ?"

माँ हँसमुख भाव से इन बातों को व्यक्त करती रहीं जिसे सुनकर सभी गद्गद हो गये । छात्रों ने सानन्द जवाब दिया कि वे लोग नित्य कुछ समय भगवान् के उद्देश्य से देंगे ।

प्रफुल्ल–आप बीच–बीच में आकर हम लोगों को उत्साह देती रहें ।

माँ–तुम लोग मुझे ले आना ।

प्रफुल्ल–औरतों के कारण हम लोग आपके पास तक पहुँच नहीं पाते । एक बात और हम लोगों ने यह देखा कि आपमें स्वजाति प्रीति कुछ अधिक है ।

यह सुनकर सभी हँस पड़े ।

माँ–(हँसकर) तुमने ठीक कहा है । महिलाओं के प्रति मेरा आकर्षण अधिक है । लेकिन संसार में सभी महिलाएँ हैं, सभी प्रकृति हैं । एकमात्र पुरुष भगवान् है । जगत् के सभी परमपति को चाहते हैं । प्रकृति का स्वभाव है–माँगना । पुरुष कभी कुछ नहीं चाहता । इस दृष्टि से हम लोग प्रकृति अर्थात् महिला हैं । इस दृष्टि से तुम लोगों के प्रति मेरा आकर्षण है ।

सभी लोग हँस पड़े ।

प्रफुल्ल–महिलाएँ आपके ऊपर जो अत्याचार करती हैं, उसे देखकर हम लोगों को बड़ा कष्ट होता है । आप उन लोगों को मना क्यों नहीं करती ?

माँ–मैं मना नहीं कर पाती । अगर मुझमें शरीर–रक्षा करने की कोई वासना होती तो मैं मना कर सकती थी । यह शरीर रहें या जाय, इस सम्बन्ध में मेरी कोई इच्छा नहीं हैं । फलतः मैं बाधा नहीं दे पाती । अगर तुम लोग इस शरीर की रक्षा करना चाहो तो यह शरीर रहेगा । अगर तुम लोग नहीं चाहोगे तो नहीं रहेगा । तुम लोगों ने देखा होगा कि महिलाएँ मुझे सिन्दूर लगाते वक्त मेरी क्या गति बना डालती हैं । वे सब मेरे सिर, कपोल, आँख आदि में सिन्दूर पोत देती हैं ।

सिन्दूर से मेरे तमाम कपड़ें, कुर्ता लाल हो जाता है। मुँह और बाल धोते समय नाली में से रक्त गंगा प्रवाहित होने लगती है, फिर भी मैं उन्हें सिन्दूर लगाने से मना नहीं कर पाती । शरीर रक्षा का कोई भाव मुझमें नहीं रहता । सभी लोग इसे समझ नहीं पाते। मैं अपने हाथ से खा नहीं पाती, यह देखकर कुछ लोग चकित रह जाते हैं । वे लोग देखते हैं कि मैं हाथ से सभी कार्य करती हूँ जबकि खाना नहीं खाती। इस बारे में मुझसे प्रश्न भी किया गया है । मैंने उन लोगों को बताया कि लोग आाहार करते हैं जीवन–रक्षा के लिए, पर मुझमें जीवन–रक्षा करने की कोई इच्छा नहीं है, ऐसी हालत में यह कार्य मैं करने जाऊँ ? कुछ दिनों तक अपने हाथ से खाती रही, पर भोजन अपने मुँह में न डालकर दूसरों के मुँह में डालती रही । यह देखकर लोगों ने फिर मुझे अपने हाथ से खाने नहीं दिया ।

प्रफुल्ल–आप प्रणाम ग्रहण क्यों करती हो ?

माँ–एक समय ऐसा भी था जब मैं प्रणाम ग्रहण नहीं कर पाती थी । जब कोई मुझे प्रणाम करता था तब जबतक मैं उसका पैर छूकर प्रणाम नहीं कर लेती थी तब तक मन बेचैन रहता था । कोई मुझे प्रणाम करे, मेरा प्रणाम बिना लिये जा नहीं सकता । कभी ऐसा भी हुआ है कि कोई दूर रहकर पीछे से प्रणाम करता तो मेरा सिर अपने आप जमीन में झुक जाता था । आजकल जब लोग प्रणाम करते हैं तब मैं बाधा नहीं देती, क्योंकि अब यह सोचती हूँ कि मुझे उपलक्ष करके लोग भगवान् को प्रणाम करते हैं ।

इतना कहने के बाद माँ ने बिदा माँगी । मैं भी घर चला आया।

तीसरे पहर आश्रम में आकर देखा कि माँ आश्रम के मैदान में एक पेड़ के नीचे सोयी हुई हैं । चारों ओर से औरतों ने इस कदर घेर रखा है कि हवा तक नहीं पहुँच पा रही है । कोई प्रणाम कर रही है तो कोई सिन्दूर लगा रही है । माँ का चेहरा सिन्दूर से लाल हो गया है । पता नहीं किसने माँ के ऊपर नीलाम्बर एक बनारसी

साड़ी रख दिया है । नाक में नथ पहनायी गयी है । माँ का मुँह गम्भीर था । माँ पर इस प्रकार अत्याचार होते देख मैं वहाँ से हट आया । मैंने सोचा कि अगर ये महिलाएँ माँ से श्रद्धा करतीं तो उन पर ऐसा अत्याचार नहीं करती ।

कुछ देर बाद मैंने देखा कि माँ उक्त नीलाम्बर साड़ी पहने, नाक में नथ लटकाये, आश्रम की ओर चली आ रही हैं । उन्हें चारों ओर से घेरकर लोग शोरगुल मचाते हुए आ रहे हैं । माँ का चेहरा हँसमुख है, पर वह सहज और सरल नहीं लगा । मुझे बड़ा कष्ट हुआ । जो लोग माँ को इस प्रकार बहुरूपी बनाकर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं, उनकी भक्ति या रुचि की प्रशंसा नहीं कर सका । माँ मुझे देखकर मुस्करायीं, पर मेरे मुँह पर विरक्ति की छाप देखकर तुरत दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

आश्रम में प्रवेश करने के साथ ही सभी को अपना विचित्र वेषभूषा दिखाने लगी । मेरी बड़ी लड़की को देखकर माँ ने कहा–"तुम लोग यहाँ क्या देखने आते हो ? साधु कहीं इस तरह की साजसज्जा करते हैं ?"

बाबा भोलानाथ माँ की इस वेशभूषा को देखकर नाराज हो गये । जो लोग माँ को लेकर शोरगुल मचा रहे थे, वे भोलानाथ को नाराज होते देख सन्न रह गये और फिर धीरे–धीरे सब खिसक गये । माँ ने अन्नपूर्णा के मन्दिर में जाकर अपना बहुरूपी साज को खोल दिया और अपनी धोती पहनकर मैदान में टहलने निकल गयीं ।

३० मई, १९३७ ई., रविवार । आज महोत्सव का आखिरी दिन है । इस महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रति वर्ष आश्रम में तीन–चार हजार व्यक्ति आते हैं और सभी प्रसाद ग्रहण करते हैं । कल रात को महिलाओं ने कीर्तन किया था । आज सबेरे माँ लड़के और लड़कियों को लेकर सिद्धेश्वरी रवाना हो गयी । सिद्धेश्वरी के तालाब में महिलाओं को लेकर

पहले माँ ने स्नान किया । हम लोग मन्दिर के पास खड़े रहें । महिलाओं के स्नान करने के बाद हम लोगों ने स्नान किया। सभी आनन्दमग्न थे । माँ को लावा, दही, मीठा आदि से भोग दिया गया । हम लोग प्रसाद ग्रहण करने के बाद ९ बजे घर वापस आ गये ।

दोपहर से मूसलाधार पानी बरसने लगा । महोत्सव में आज अधिक लोग नहीं आ पायेंगे, ऐसा सोचा । बरसात के कारण मैं स्वयं आश्रम नहीं जा सका । शाम होने के कुछ देर पहले आश्रम गया। यहाँ आने पर सुना कि आज तीसरे पहर आश्रम में खूब आनन्द हुआ था । वर्षा के समय आश्रम के आंगन में माँ और बाबा भोलानाथ भक्तों के साथ कीर्तन करते रहे । माँ ने अपने नृत्य से सभी का मन मोह लिया था । इस कीर्तन के कारण अनेक लोगों को भावावेश हुआ था । कीर्तन समाप्त होने पर माँ ने अपने हाथ से सभी को खिचड़ी–प्रसाद वितरण किया था । गरम प्रसाद हाथ पर लेना कठिन था, इसलिए माँ ने सभी को कपड़े में लेकर खाने को कहा । बाद में सभी को लेकर रमना स्थित कालीबाड़ी के तालाब में स्नान करने गयी । पानी–कीचड़ में कीर्तन करने के कारण सभी के कपड़े गन्दे हो गये थे । माँ ने सभी से कहा था कि इन कपड़ों को धोबी के यहाँ न भेजकर स्वयं अपने हाथ से, साबुन लगाकर धोयें ताकि स्मृति चिह्न की रक्षा हो सके ।

उत्सव के अन्त में श्री श्री माँ का ढाका से गमन

३१ मई, १९३७ ई., सोमवार । आज माँ कलकत्ता चली जाएगी । सबेरे सामान्य जलपान करने के बाद आश्रम चला आया । यहाँ आकर सुना कि माँ हम लोगों के घर थोड़ी–थोड़ी देर के लिए गयी थीं और अब विनय बाबू[१] के यहाँ गयी हैं ।

---

१. श्रीयुत् विनयभूषण बंद्योपाध्याय । आप कृषि विभाग में नौकरी करते हैं। श्री श्री माँ के पुराने भक्त हैं ।

बाद में पत्नी की जबानी सुना कि माँ मेरे घर आकर मेरी पत्नी से बोली–

"पिताजी घर में नहीं हैं ? पिताजी तो बाहर ही बाहर रहते हैं । एक आदमी घर पर रहे तो ठीक है । (घर का बगीचा देखकर) कितना सुन्दर बाग है, पर कभी तुम लोगों ने मुझे यह देखने के लिए नहीं कहा ।"

इस प्रकार की और बातें कहने के बाद माँ मोटर पर सवार हो गयी ।

इधर मैं माँ के वापस आने की प्रतीक्षा करता रहा । लगभग आधा घंटा बाद माँ आश्रम में आयी । आश्रम में आते ही माँ अपने कमरे में चली गयीं । सुना की आज भूदेव बाबू सपरिवार बाबा भोलानाथ से दीक्षा लेंगे ।

८–३० बजे तक माँ अपने कमरे में थीं । जब बाहर आयीं तब चारों ओर से स्त्री–पुरुष माँ को प्रणाम करने लगे । भीड़ से बचने के लिए माँ परेश बाबू की मोटर से आश्रम से निकल गयीं और कालीबाड़ी आकर मोटर पर बैठी रह गयीं ।

मैं कुछ देर तक आश्रम में रहने के बाद मैदान में चला आया। दूर से देखा कि माँ की गाड़ी को लोगों ने घेर रखा है । यह दृश्य देखकर मिजाज खराब हो गया । पर उपाय क्या है ?

ठीक उसी समय दीदी माँ ने आकर कहा—माँ का भोजन तैयार है । मैं जाकर माँ को बुला लाऊँ । चूंकि मेरा मिजाज ठीक नहीं था इसलिए यह सन्देशा माणिक नामक एक बालक से कहा ।

माणिक ने उत्तर दिया कि माँ आज आश्रम में प्रवेश नहीं करेंगी। जो कुछ खाना है, वह गाड़ी में बैठकर ही खायेंगी । जब यह समाचार दीदीमां को दिया गया तो दुःख के कारण उनकी आँखें छलछला आयीं। दीदीमाँ का दुःख मुझसे देखा नहीं गया । चूँकि मिजाज पहले से ही गरम था, इसलिए माँ के प्रति अप्रसन्न हो गया ।

ठीक इसी समय देखा कि श्रीयुत् पूर्ण सरकार महाशय और श्रीयुत् योगेश बनर्जी महाशय गुस्से में बाबा भोलानाथ से शिकायत करने गये। सुना कि पूर्ण महाशय जब प्रणाम करने गये तो किसी ने उन्हें धक्का देकर हटा दिया । बूढ़ें आदमी उस धक्कें को सह्य नहीं कर सके और गिर पड़े । यह बात सुनकर मैं क्षिप्त हो उठा और आवश्यकता से अधिक क्रोधित हो उठा ? मैं दौड़कर माँ के पास गया और क्रोधित भाव में माँ को भला–बुरा कहा ।

प्रत्युत्तर में माँ ने क्या कहा, यह सुन नहीं सका । मैंने स्वयं क्या कहा था, वह भी याद नहीं हैं । इतना याद है कि माँ के प्रति बहुत नाराज हो गया था । बहरहाल जबर्दस्ती करके माँ को आश्रम में ले आया । मंदिर के भीतर माँ आहार करने लगीं ।

आहार करते समय माँ ने खुकुनी दीदी से कहा–"अमूल्य पिताजी के साथ कोई बात नहीं हुई, उल्टे उसे दो बार गालियां दीं ।"

दीदी ने जब यह बात कही तो मैंने माँ से कहा–"माँ, तुमने मुझे कब गाली दी ? अभी–अभी तो मैं तुम्हें गाली देकर आया ।"

माँ ने हँसकर कहा – "सच ? मैं सोच रही थी कि मैंने तुम्हें गाली दी ।"

स्नेहमयी माँ का यह रूप कोमल भाव से मेरी कुकीर्तियों को स्मरण दिलाने लगा ।

भोजन के बाद पुनः माँ ने मुझसे कहा–"पिताजी, अब लोगों से मुलाकात करने का प्रबंध करो ।"

हम लोगों ने श्री श्री मां को बरामदे पर खड़ा किया । भक्तों में से एक–एक कर बरामदा के पश्चिम वाली सीढ़ी से आते गये और माँ को प्रणाम करने के बाद पूर्ववाली सीढ़ी से नीचे वापस जाते गये। इस प्रकार की व्यवस्था की गयी ।

लेकिन महिलाएँ माँ को सिन्दूर लगाने में काफी वक्त लेने लगीं। यह देखकर माँ ने मुझसे कहा–"अगर इस तरह चलता रहा तो ३–४ घण्टे लग जायेंगे ।"

मैंने कहा–"तब चलो, तुम्हें मोटर पर बैठा दूँ । वहीं लोग तुम्हें प्रणाम करेंगे ।"

बहरहाल माँ ने इस बार स्वयं ही प्रबन्ध किया । उन्होंने एक व्यक्ति से कहा कि समय होने पर भोलानाथ उन्हें मंदिर में अवश्य ले जांय । मैंने भी समझ लिया कि यही सबसे सुन्दर प्रबंध है ।

महिलाओं के सिन्दूर लगाने का ढंग देखकर माँ ने कहा–"ये लोग सिन्दूर लगाती नहीं, मेरे सिर पर उड़ेल देती हैं ।"

कुछ देर बाद बाबा भोलानाथ आये और माँ को लेकर मोटर पर सवार हुए । हम लोग भी स्टेशन रवाना हुए । नारायणगंज के पास चासरा स्टेशन पर उतरकर माँ भोलानाथ के साथ एक रिश्तेदार के यहां गयी । हम लोग नारायणगंज पहुँचकर माँ का इन्तजार करने लगे ।

स्टीमर छूटने के आधा घण्टा पहले माँ स्टेशन पर आ गई । हम लोग उनके साथ जहाज पर सवार हुए ।

चारुबाबू ने हाथ जोड़ते हुए माँ से कहा–"माँ, कम–से–कम हम लोगों को एक बात कहती जाँय ।"

माँ–कैसी बात ?

चारु बाबू–जो आपकी खुशी हो, वही कहिये ।

माँ–यहाँ कहने को कुछ नहीं है । बहुत बातें हो गयी हैं । तुम लोग अपना नित्य कर्म और बढ़ा दो । दिन गुजरता जा रहा है । जितना हो सके, उतना समय उनके कार्य में लगाओ ।

स्टीमर चल पड़ा और हम सब दुःख भार से लदे ढाका वापस आ गये ।